Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

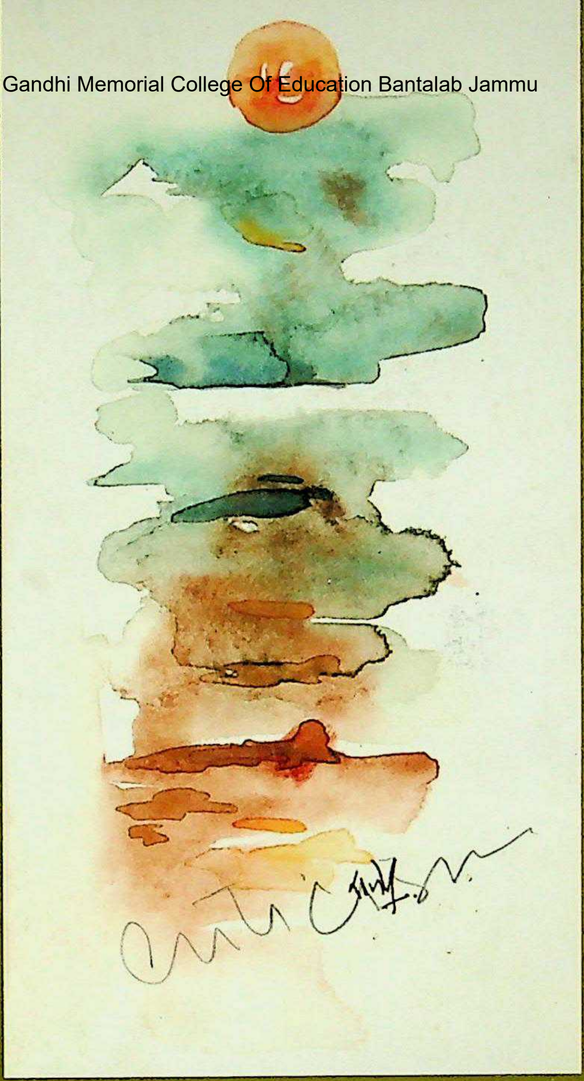

तेरह : जुलाई-सितम्बर, 2010

अक्सर

मानव संघर्ष की रचनात्मक अभिव्यक्ति

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विदा गीत

मेरी कामना है,
मेरे प्यार ! बांटते रहो सदा प्यार
अनिर्वच सुख-क्षणों की वर्षा होती रहे
अनवरत तुम्हारे जीवन में,
तुम्हारी चमकीली आँखें और मधुर मुस्कान
बहुत याद आयेगी।

तुम्हारी जीवन अवधि दीर्घ हो
धरती पर ताकि
तुम सीख सको विजय-पराजय
को चखना पूरे आनंद के साथ।

तुम दीर्घजीवी हो-
सह सको जीवन के उतार-चढ़ाव
भराव और रिक्तता के पड़ाव
देती रहे तुम्हारी जिजीविषा
सत्य पालन को पोषण
और संघर्ष करने की ताकत।

मेरी कामना है
तुम सीख सको
ग्रहण और त्याग में निर्विकार रहने का कौशल
तुम महसूस कर सको
सब कुछ तुम्हारे 'स्व' में ही होता है
जान सको इसे पूरे आवेग से
ताकि तुम पहुँच सको
परमतत्व के पास
मेरी कामना है।

-जेफ़ नेबेल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अक्सर

मानव-संघर्ष की रचनात्मक अभिव्यक्ति

तेरह : जुलाई-सितम्बर, 2010

अग्निशेखर और क्षमा कौल
द्वारा यह
पुस्तक सप्रेम भेंट

प्रधान सम्पादक

हेतु भारद्वाज

सम्पादक

गोविन्द माथुर

रमेश रावत

लक्ष्मी शर्मा

मुद्रण

तरु ऑफसेट, सांगानेर, जयपुर

दूरभाष : 2503989, 98290-18087

मूल्य

एक प्रति : 25 रुपये मात्र

वार्षिक : 100 रुपये मात्र (व्यक्तिगत)

500 रुपये मात्र संस्थाओं के लिए

G.M. College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu.
Acc No. 93.26
Dated. 14.12.2023

आजीवन सदस्य

1000 रुपये मात्र

संपादकीय कार्यालय

ए-243, त्रिवेणी नगर, गोपालपुरा बाईपास,

जयपुर-302 018 (राजस्थान)

दूरभाष : 0141-2760160, 94147-52039

09828885028 (गोविन्द माथुर) 09319009866 (रमेश रावत)

0141-2761245 (लक्ष्मी शर्मा)

ई-मेल : aksar.tramasik@gmail.com

आवरण : राजेन्द्र पी. शर्मा

रेखाकंन : सुभाष केकरे

'अक्सर' में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों से सम्पादक तथा प्रकाशक की वैचारिक सहमति आवश्यक नहीं है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस अंक में

सम्पादकीय

जोइ छिनरा वोई डोली के संग 3

जन्म-शताब्दी

वे मुझे प्रिय क्यों? — नरेश चंद्रकर 9

गरिमा पुंज

अपने-अपने अनहदनाद — रामशरण जोशी 16

दस्तावेज

निराशा के कर्त्तव्य : डॉ. मनोहर लोहिया — नंद चतुर्वेदी 22

यात्रा-वृत्तांत

स्टुटगार्ट एंगेल्स को नहीं जानता — कर्मेन्दु शिशिर 33

कविताएँ

तीन कविताएँ — सवाईसिंह शेखावत 47

तीन कविताएँ — केशव तिवारी 49

दो कविताएँ — रंजना जायसवाल 51

दो कविताएँ — सुरेन्द्र दीप 52

दो कविताएँ — नरेन्द्र पुण्डरीक 54

तीन कविताएँ — गोपाल प्रभाकर 56

संवाद

बढ़िया संगीत की लम्बी उम्र होती है : सुमन चौरसिया — लक्ष्मी शर्मा 57

विमर्श

मातृसत्ता और भारतीय स्त्री-विमर्श — विनोद शाही 65

मीडिया एवं राजनीतिक खबरों की राजनीति... — दीपेन्द्रसिंह जाड़ेजा 71

लोकप्रिय नैतिकता : प्रश्नों के दायरे में — उर्मिला मिश्रा 78

कहानी

पुरानी कमीजें — अरुण कुमार 'असफल' 83

अनन्तरजात (उपन्यास अंश) — श्याम जाँगिड़ 94

'सरस्वती' में राजस्थान का लेखन (शोध) — भवानीलाल भारतीय 103

आकलन

भाषा से मुक्त होती कविता का नया स्वर : भगवत रावत — माधवेन्द्र 111

इधर की कविताओं को लेकर टिप्पणी जैसा कुछ — दुर्गाप्रसाद अग्रवाल 121

मरुधर मृदुल का कवि-कर्म — रमाकांत शर्मा 126

एक मुख्यमंत्री की प्रशंसा में बयान (कथोपकथन) — गोविन्द माथुर 130

पुस्तक समीक्षा

असहमतियों के जोखिम से जूझती कविता की लयकारी — रमेश खत्री

जटिल संरचना और विशिष्ट भावबोध की कहानियाँ — प्रेम शशांक 136

नूरानी बाग से गुजरते हुए — क्षितिज 140

पत्र-संवाद 142-144

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सम्पादकीय

जोइ छिनरा वोई डोली के संग

शीर्षक में जिस लोकोक्ति का उल्लेख है, उसकी व्याख्या करने की इस समय कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि लगभग समूचा हिन्दी-साहित्य जगत 'छिनाल' शब्द के चक्रवात में घूम रहा है पूरी तरह दिशाहीन होकर।

ऐसे वक्त में हम जरा अपने देश के हालात पर नजर डालें, पूरा कश्मीर जल रहा है और वहाँ ध्वंस और हिंसा का दौर जारी है, हमारी संसद महँगाई के मुद्दे पर व्याकुलता से बहस कर रही है, कॉमनवेल्थ खेलों की तैयारी में हो रहे घोटालों का रोज खुलासा हो रहा है, जिनके कारण अधिकारियों को हटाया जा रहा है। (इससे पूरे देश की किरकिरी हो रही है।) लेह में बादल के फटने से जन और धन की जो हानि हुई है, उसका अंदाजा नहीं लगाया जा सका है, देश के अनेक हिस्सों में बाढ़ ने तबाही मचा रखी है, दन्तेवाड़ा में हिंसा का दौर थम नहीं पा रहा है। और भी कितनी ही हृदय द्रावक घटनाएँ हमारे चारों ओर घट रही हैं, किंतु हमारा सबसे संवेदनशील वर्ग, जो स्वयं को मूलत: व्यवस्था और सत्ता विरोधी मानता है और मानव मूल्यों की रक्षा का दावा करता है, आम आदमी का सबसे बड़ा पक्षधर वह अपने को ही मानता है और अपनी घोषणाओं में अपने को प्रतिरोधी शक्तियों का समुच्चय बताता है, मशाल बनकर समाज को रास्ता दिखाने का दावा करता है, वह वर्ग इस कठिन समय में एक शब्द से उपजी पीड़ा में गोते खा रहा है। इसमें संदेह नहीं कि एक केन्द्रीय विश्वविद्यालय के कुलपति ने, जो संयोग से लेखक और सम्पादक भी हैं, इस शब्द का नाहक प्रयोग कर नारी-गरिमा को ही नहीं अपने पद की गरिमा को भी कलंकित किया है। अगर विवाद के उठते ही वे क्षमा माँग लेते तो शायद यह विवाद इतना उग्र नहीं होता, किंतु पहले तो उन्होंने अपने बयान को सही ठहराने का प्रयास किया फिर वे केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री से मिलने गये और शायद मंत्री महोदय के निर्देश पर उन्होंने माफी माँग ली, लेकिन तब तक जंगल में आग फैल चुकी थी और समाचार पत्रों और ब्लॉगों पर विरोधी शहीदों की सूचियाँ छप गयी थीं। इतना ही नहीं जिन लोगों (जाहिर है महत्वपूर्ण) ने विरोध नहीं किया था, उन्हें धिक्कारा जाने लगा था। लगा कि कुलपति द्वारा प्रयुक्त 'छिनाल' शब्द एक भयानक राष्ट्रीय आपदा का रूप ले चुका था, जिसके गहरे कुहासे में और आपदाएँ छिप गयी थीं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ऐसा भी पढ़ने को मिला कि इस शब्द के बहाने लोग अपने हिसाब चुकाने में लग गये। भारतीय ज्ञानपीठ ने विभूतिनारायण राय को अपनी प्रवर समिति से हटाकर उनकी जगह नामवर सिंह को रख दिया, जो उस विश्वविद्यालय के कुलाधिपति भी हैं। उन्होंने न तो राय के बयान पर कोई प्रतिक्रिया की न प्रवर समिति की सदस्यता को अस्वीकार कर इस व्यापारिक संस्थान के प्रति अपनी नाराजगी जाहिर की। (सुना है उन्होंने प्रवर समिति की सदस्यता अस्वीकार कर दी है।) यह भी अजीब लगा कि जब उन्होंने लिखने की जगह बोलने का विकल्प खड़ा कर लिया है और वे वाचिक परम्परा के प्रवर्तक भी बन चुके हैं (जबकि भारत में वाचिक परम्परा का इतिहास बहुत प्राचीन है।) तो उन्होंने इस मुद्दे पर मौन से काम क्यों चलाया। मुझे पता नहीं कि किसने किसके साथ अपना हिसाब चुकता किया पर मुझे इससे पीड़ा जरूर हुई कि हिन्दी का रचना संसार जीवन के जरूरी मुद्दों के प्रति पूरी तरह उदासीन रहकर एक घटिया प्रहसन का हिस्सा बन गया। इस विरोध भरे महौल में कुछ चिंतकों को हिन्दी लेखकों की एकता भी दिखायी दी। तथापि इस प्रसंग में भी शायद असली मुद्दे अनदेखे ही रह गये।

असल में इस सारे घटनाचक्र से हमें पूरे प्रसंग के गम्भीर पहलुओं पर विचार करना चाहिए। विभूतिनारायण राय महात्मा गाँधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा के कुलपति हैं। इस विश्वविद्यालय के नाम में दो बातें गौर करने लायक हैं- महात्मा गाँधी और हिन्दी। इस विश्वविद्यालय के अब तक जितने भी कुलपति हुए हैं कोई भी इस विश्वविद्यालय के नाम के अनुकूल नहीं था। पहले कुलपति अशोक वाजपेयी (माना वे कवि और आलोचक के रूप में प्रसिद्ध हैं) मूलत: नौकरशाह हैं तथा अपने प्रभाव से उन्होंने उस विश्वविद्यालय को दिल्ली में बैठकर चलाया। उनकी कार्यप्रणाली गाँधीजी से तो मेल खा ही नहीं सकती। उनमें न गाँधीजी जैसी सादगी है न विनम्रता, इसलिए उन्होंने मनमाने तरीके से विश्वविद्यालय को अपने चहेतों के लिए लाभ-केन्द्र बना दिया। गाँधीजी के नाम से जानी जाने वाली संस्था से 'बहुवचन' जैसी चाकचक्य पत्रिका का औचित्य सिद्ध करना असंभव है। उनके बाद अज्ञातकुलशील डॉ. गोपीनाथन को इस विश्वविद्यालय का कुलपति बनाया गया और वे अपने पूरे कार्यकाल में विवादों में फँसे रहे। उनके ऊपर जनवादी और प्रगतिशील लोगों का पूरा दबाव रहा और वे शायद एक भी सही निर्णय नहीं ले पाये। प्रगतिशीलों और जनवादियों के भरसक विरोध के बावजूद वे अपना कार्यकाल पूरा करने के बाद ही हटे। अब विभूतिनारायण राय जो निश्चय ही अपनी योग्यताओं के कारण तो कुलपति नहीं ही बने होंगे। वे पुलिस में बहुत ऊँचे पद पर थे, किंतु पुलिस-प्रशासन और शिक्षा-प्रशासन में आधारभूत अंतर है। पुलिस का प्रशासन डंडे से चलता है, जबकि शिक्षा के केन्द्र में है मनुष्य। मैंने तो एक बहुत प्रभावशाली आई.ए.एस. के समक्ष यह चुनौती रखी थी कि वे राजस्थान का कोई भी कॉलेज चुन लें और उसमें तीन माह प्रिंसिपल बनकर कॉलेज चलायें, उन्हें पता चल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जाएगा कि प्रशासन क्या होता है। मैं नहीं कहता कि विभूतिनारायण राय कुशल कुलपति नहीं होंगे, पर जैसी खबरें आती रहती हैं, वे बहुत उत्साहवर्धक तो नहीं ही हैं। इसी विवाद के बीच मुझे एक ब्लॉग पर राय साहब के काल में नियुक्त एक प्रोफेसर (जो कभी मेरे आत्मीय मित्र रहे हैं और मेरे मन में उनके प्रति अभी भी अनुराग है।) के विषय में जो कुछ पढ़ने को मिला, उससे मुझे बहुत दुख हुआ। हो सकता है वह सब झूठ हो किंतु वर्धा का वातावरण बहुत अकादमिक तो नहीं ही है। जो लोग वहाँ की यात्रा का तरल सुख भोगकर लौटे, उन्होंने वहाँ की तारीफ तो नहीं ही की। दलित छात्रों की शिकायतें भी कम नहीं हैं। इस सबके लिए कुलपति राय पूरी तरह जिम्मेदार हैं। उन्हें इन सारी स्थितियों पर आत्मालोचन करना चाहिए और अगर उन्हें लगता है कि वे गाँधीजी और हिन्दी दोनों के प्रति न्याय नहीं कर पा रहे हैं तो उन्हें अपने पद से मुक्त हो जाना चाहिए (यद्यपि हमारे समुदाय में यह परम्परा नहीं है।) अथवा अपनी कर्मठता और प्रशासनिक क्षमता से विश्वविद्यालय को एक नया रूप देकर अपने आलोचकों को उत्तर देना चाहिए। उनके तथा उनके वि.वि. प्रशासन के बारे में इन दिनों जो कुछ कहा गया है, उससे उन्हें भी शर्मिंदगी महसूस हुई होगी।

जो लोग यह माँग कर रहे हैं कि राय को कुलपति पद से हटाया जाना चाहिए उन्हें यह भी माँग करनी चाहिए कि इस विश्वविद्यालय का कुलपति ऐसा व्यक्ति हो जो अपने आचरण में कुछ प्रतिशत तो गाँधीवादी हो और हिन्दी के व्यापक प्रचार-प्रसार के प्रति पूरी तरह सजग हो। होता यह है कि जब कोई व्यक्ति किसी पद को पा जाता है तो उसके लग्गू-भग्गू यही प्रचारित करते हैं कि वह इस पद के सर्वथा योग्य है और वह इस पद पर रहकर संस्था या विभाग की कायापलट कर देगा, लेकिन कायापलट तो उसकी खुद की हो जाती है या उसके अनुयायियों की, इस बहस से भी यह बात स्पष्ट रूप से सामने आ गयी है। म गां अं हि विश्वविद्यालय, वर्धा जैसी संस्थाएँ राष्ट्र का गौरव तभी बन सकती हैं जब उनका संचालन निष्ठावान लोगों के हाथों में हो। क्या हमें इस घटना से कोई सबक नहीं लेना चाहिए कि विभूतिनारायण राय को कभी युगपरिवर्तक उपन्यासकार तथा क्रांतिकारी संपादक माने जाने के बाद अब दो कौड़ी का लेखक और सम्पादक बताया जा रहा है। इस ओर स्वयं राय साहब को भी ध्यान देना चाहिए, क्योंकि रचनाकर्म में श्रेष्ठता पाने का कोई छोटा मार्ग नहीं है।

विभूतिनारायण राय के बाद हम इस प्रसंग के अन्य पक्ष पर विचार करें जिसका संबंध 'नया ज्ञानोदय' के सम्पादक रवीन्द्र कालिया से है। मैं भारतीय ज्ञानपीठ को इस प्रसंग में नहीं घसीटना चाहता, क्योंकि यह संस्था एक व्यापारिक संस्थान है और वह प्रकाशन व्यवसाय से धनार्जन कर रहा है। उससे किसी प्रकार की नैतिकता की अपेक्षा करना व्यर्थ है और अब शांति साहू तथा रमा जैन का जमाना भी नहीं है। संस्थान इन दिनों उसी तरह काम कर रहा है, जिस तरह अन्य व्यावसायिक संस्थान कर रहे हैं। कोई फर्क

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नहीं पड़ता कि वे कब और क्यों प्रभाकर श्रोत्रिय को निकालकर रवीन्द्र कालिया को 'नया ज्ञानोदय' का सम्पादन सौंप देते हैं। यदि रवीन्द्र कालिया के कार्यकाल में इस संस्थान को अधिक मुनाफा हुआ है तो निश्चय ही भारतीय ज्ञानपीठ के लिए कालिया अधिक ग्राह्य हैं। वैसे भी इस प्रसंग पर लेखकों में जो एकता हमें दिखायी दे रही है वह बहुत क्षणजीवी है। अगर भारतीय ज्ञानपीठ रवीन्द्र कालिया को हटा देती है तो उस पद को पाने के लिए हिन्दी के विद्वान जोड़-तोड़ नहीं करेंगे, इस बात की क्या गारंटी है? क्या रवीन्द्र कालिया ने और विभूतिनारायण राय ने अपनी-अपनी कुर्सियां बिना तिकड़म के प्राप्त की थीं? हमलोग कितने तिकड़मी और लोलुप हैं, यह तो इस तथ्य से ही स्पष्ट हो गया कि केन्द्रीय साहित्य अकादमी की पत्रिका 'समकालीन भारतीय साहित्य' के अतिथि सम्पादक पद पर प्रभाकर श्रोत्रिय को बिठा दिया गया। यह भी हमारी दरिद्रता और जोड़-तोड़ की नीति का उदाहरण है।

चर्चित प्रसंग में जितना अपराध राय साहब का है उतना ही रवीन्द्र कालिया का है। राय-कालिया गठबंधन का खुलासा तो इस बात से ही हो जाता है कि 'नया ज्ञानोदय' के 'बेवफाई महा विशेषांक-2' में राय साहब का ही साक्षात्कार छपा है शायद इसलिए कि कालिया की नज़र में राय ही बेवफाई विशेषज्ञ हैं, किंतु असल चर्चा तो कालिया के सम्पादन-कौशल पर होनी चाहिए। इस बात को तो सभी जानते हैं कि आपात काल के दौरान कालिया संजय ब्रिगेड के सक्रिय सदस्य थे, जिससे यह जाहिर हो जाता है कि कालिया किन प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। हो सकता है उनके सम्पादन काल में 'नया ज्ञानोदय' की बिक्री बढ़ी हो, किंतु अगर यह एक साहित्यिक मासिक है तो इसकी गुणवत्ता परखने के लिए बिक्री कोई मानदण्ड नहीं बनता। हम जरा गौर करें कि उन्होंने प्रेम विशेषांकों की लम्बी शृंखला निकाली किंतु इस शृंखला ने प्रेम के बाबत क्या नया विचार दिया? अधिकांशत: तो उन्होंने छपी-छपाई रचनाओं का संकलन कर दिया। इसी तरह बेवफाई अंकों की शृखंला में अनेक बार छपी हुई रचनाएँ पाठकों के सामने आ रही हैं। पाठक किस रचना को कितनी बार पढ़े? कितने अंकों में कितनी बार के तहत एकत्र की गई रचनाओं के भरने को हम सम्पादन-कला के किस स्तर पर रखेंगे? सम्पादन और संकलन में क्या कोई अंतर ही नहीं है? पर जिसके पास लाभान्वित करने के लिए मंच है, उसमें हमें गुण ही गुण दिखायी देते हैं। बहुत अधिक प्रशंसा हुई है कालिया कृत 'गालिब छुटी शराब' के गद्य की। सभी ने उनके खिलंदड़ गद्य की तारीफ में कसीदे काढ़े पर इस ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया कि उसमें वे परोस क्या रहे हैं? एक मदारी अथवा गाड़ी में अपना मंजन बेचने वाला हमारे लेखकों से कहीं प्रभावी गद्य बोलता है, इस सीमा तक कि वह श्रोताओं को अपने वाग्जाल में बांध लेता है, पर उन बेचारों के गद्य की कोई तारीफ नहीं करता, क्योंकि वे अपने गद्य का प्रयोग अपनी आजीविका कमाने के लिए कर रहे हैं, जबकि कालिया ऐयाशी को परोसने के लिए अपने गद्य को नया रूप दे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रहे हैं। क्या यह नहीं देखा जाना चाहिए कि कोई लेखक अपने गद्य में क्या परोस रहा है? हिन्दी में हम ऐसी अमूर्त प्रशंसाएँ करते हैं, जिनकी व्याख्या करना ही कठिन हो जाता है। पिछले दिनों मुझे पढ़ने को मिला कि अमुकजी की कहानियाँ 'शुद्ध गद्य' का आदर्श नमूना हैं। एक लेखक ने अपने चहेते व्यक्ति के गद्य की प्रशंसा 'किसान गद्य' कहकर की थी। हो सकता है आगे 'बनिया गद्य' की ईजाद भी हो। राजस्थान में एक व्यक्ति को जब एक विश्वविद्यालय का कुलपति बनाया गया तो उन्होंने अपनी श्लाघा यह कहकर की कि सरकार ने एक किसान को कुलपति बनाया है। मैं यहाँ रेखांकित यही करना चाहता हूँ कि कालिया इस तरह की प्रवृत्तियों के प्रतिनिधि हैं, पर क्योंकि वे हिन्दी की एक सेलिब्रिटी हैं इसलिए वे महान हैं और मैंने तो उन्हें विद्वानों की सभा में अज्ञान बघारते हुए भी सुना है और श्रोताओं को तालियाँ पीटते, पर यह तो उनकी अदा बन जाती है।

इस प्रसंग से आक्रोशित लेखक 'नया ज्ञानोदय' तथा भारतीय ज्ञानपीठ के बहिष्कार करने का सुझाव भी दे रहे हैं। कुछ लेखकों ने भारतीय ज्ञानपीठ से अपनी पुस्तकें वापस ले ली हैं। यह एक प्रशंसनीय कदम है। भूतकाल में भी लेखकों ने सेठाश्रित पत्रिकाओं में न छपने का संकल्प लिया था जो काफी दिनों चला भी, लेकिन जब यह संकल्प टूटा तो लेखकों ने पुराना एरियर भी उठा लिया। अभी तो भारतीय ज्ञानपीठ ने रवीन्द्र कालिया को हटाने के कोई संकेत नहीं दिये हैं, किंतु अगर यह दुर्घटना घट ही गयी तो कितने लेखक ऐसे होंगे, जो 'नया ज्ञानोदय' का सम्पादक पद पाने की तिकड़म नहीं करेंगे। रवीन्द्र कालिया के हटने से न भारतीय ज्ञानपीठ पवित्र हो जाएगी न 'नया ज्ञानोदय' पाक हो जाएगा। हमारी असल पीड़ा तो यही है कि कालिया की जगह 'मैं क्यों नहीं हूँ'। मुँहदेखी बात करने में हमने महारत हासिल कर रखी है।

राय-कालिया गठजोड़ से जुड़ा एक पहलू और है, जिसकी चर्चा अब तक किसी ने नहीं की है- कल्पना कीजिए भारत सरकार विभूतिनारायण राय को म गां अं हि विश्वविद्यालय, वर्धा के पद से हटाने के आदेश प्रसारित कर देती है। राय अपनी रक्षा में उस आदेश के खिलाफ अदालत में चले जाते हैं और अदालत उन्हें स्टे दे देती है। जब यह वाद अदालत में होगा तो निश्चय ही 'छिनाल' शब्द की व्याख्याएँ होंगी, यह भी पता करने का प्रयास होगा कि राय साहब ने किन रचनाओं के आधार पर यह वक्तव्य दिया तो जाहिर है कुछ आत्मकथाओं का अदालत में पारायण भी होगा। यह भी सम्भव है कि अदालत अपने फैसले में 'छिनाल' शब्द को आपत्तिजनक माने ही नहीं या राय साहब की माफी को देखते हुए सरकार के आदेश को खारिज कर दे या राय साहब को चेतावनी देकर पद पर बहाल कर दे। यह भी हो सकता है कि अदालत सरकार के आदेश को ही पुष्ट कर दे और राय साहब को इस पद से मुक्त होने का आदेश दे दे, पर राय को ऊपरी अदालत में जाने का अधिकार तो रहेगा ही। कहने का तात्पर्य केवल इतना सा है कि इस काल्पनिक स्थिति में जो बहस होगी वह मजेदार तो होगी ही। इससे सारे पक्षों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

को लोकप्रियता मिलेगी, पर बहस किस तरफ जाएगी, इसकी कल्पना हम कर सकते हैं और किसकी फजीहत होगी इसकी भी। यह भी जाहिर हो जाएगा कि डोली किसकी है और छिनरा कौन है।

इन सारे सवालों से परे जाकर हमें यह भी तो विचार करना चाहिए कि हमारे समक्ष असल चुनौतियाँ और समस्याएँ क्या हैं। जिन मुद्दों का हमारे जीवन में बहुत अधिक महत्व नहीं है उन पर हम पिले पड़ते हैं, क्योंकि उन पर बहस करने में किसी प्रकार का जोखिम नहीं है। यह तो विभूतिनारायण राय की चिन्ता का विषय होना चाहिए कि कुलपति के रूप में इस विश्वविद्यालय को नयी दिशा दे सकते हैं, जिससे यह संदेश जाए कि इस पद उनकी नियुक्ति, चाहे वह तिकड़मों से ही हुई हो, सरकार का एक सही निर्णय था। अगर वे भी अपने विश्वविद्यालय को अन्य विश्वविद्यालयों की तरह ही चलाना चाहते हैं, जैसा कि लग रहा है कि उनके पास कोई दृष्टि नहीं है तो उनके इस पद पर बने रहने की कोई उपादेयता नहीं है। वे पुलिस विभाग में उच्चतम पद पर रह चुके हैं और पूर्व कुलपति लिखने का अधिकार उन्हें मिल ही जाएगा, फिर वे क्यों अपनी मिट्टी पलीद कराते हैं और क्यों एक संस्था को बरबाद करने का पुण्य कमाते हैं। हमारे विश्वविद्यालयों में हिन्दी विभागों की जो हालत है उससे सब वाकिफ हैं। यदि यह विश्वविद्यालय भी उसी ढर्रे पर चलता है तो इसकी जरूरत भी क्या रह जाती है। यह एक सार्वजनिक संस्था है और गाँधीजी का नाम इससे जुड़ा है, इसलिए हमें इसके बारे में कहने का पूरा हक है। रह जाती है रवीन्द्र कालिया की बात तो वो जानें और भारतीय ज्ञानपीठ जाने पर उनकी कारगुजारियों को रचना संसार यों ही दरगुजर नहीं सकता।

पिछले दिनों मुनीन्द्र जी का निधन हो गया। मुनीन्द्र जी बहुत लम्बे अरसे तक 'कल्पना' के सम्पादन से जुड़े रहे। आज की पीढ़ी तो उनका नाम भी शायद न जानती हो, पर स्वातंत्र्योत्तर साहित्यिक पत्रकारिता में 'कल्पना' का वही स्थान रहा, जो 'सरस्वती' का है। निश्चय ही मुनीन्द्र जी का नाम भी 'कल्पना' से जुड़ा है। 'अक्सर' परिवार मुनीन्द्रजी के प्रति हार्दिक आदरांजलि अर्पित करता है।

हेतु भारद्वाज

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वे मुझे प्रिय क्यों?

● **नरेश चंद्रकर**

शमशेर को अतियथार्थवाद से कितना प्रेम था? उनकी कविता और चित्रकारी के गुण-दोष क्या थे? अपनी रचनाओं में वे कहाँ चित्रकार को अपदस्थ करते थे और कहाँ कवि को समर्थन देते थे? शमशेर का लगाव-झुकाव, विरोध, समर्थन, सहमति, असहमति कितनी किसके साथ थी? उनका स्वच्छंदतावाद या उनकी काव्य-शैली आदि अनादि विश्लेषणों को परे रखकर भी शमशेर के भीतर एक शमशेर है। मुझे उसे देखना है। शमशेर की कविता की किस्म हमारी जातीय कविता में कितनी अलग है, इसे आंकना है।

कई बार मैंने सुना है, शमशेर की कविता सहज और सरल प्रतीत नहीं होती है। मुझे यह समझ नहीं आया कि शमशेर की कविता के बारे में यह आयाम बना कैसे है। यह उनके काव्यलोक को देखकर बना है? या आधे-अधूरे ढँग से देखा आयाम है? जैसे कौवे की आँख से देखी दुनिया होती है।

एकांगी दृष्टिकोण के कारण ही हमारे समय की कविता के कई दुर्लभ गुण अब अप्राप्त और कोयले की खान में दबे हैं। मेरे विचार से ऐंद्रिय सौंदर्य के अद्वितीय चितेरे शमशेर के सिवा अन्य कवि कम हैं। उनमें जो ठोसपन है, वह एक बेठोस नीले आईने जैसा है। उनकी कविता को जब भी मैंने पढ़ा, उनके स्वर में निजता की सुरक्षा नजर नहीं आई। उनमें सचेत दृष्टि लगी, परंतु अन्य के प्रति विनम्रता का भाव प्रचुर लगा। वे दूसरे के प्रति लगाव और अपनत्व से लगभग पवित्रता की हद तक भरे नजर आए। उन्होंने वही कविता लिखी, जो उनके इंद्रिय गोचर का साक्ष्य बनी। उनके यहाँ कविता के चयन की समस्या कभी नजर नहीं आई। वे एक रिफाइन्ड हृदय के कवि नजर आए। इसीलिए उनकी अनेक कविताओं का स्वभाव जन-संकुल है। उनके हृदय की सीध में जो प्रसंग आए, उन्होंने उसी पर रचना की। उनकी कविता में 'कवि घंघोल देता है, व्यक्तियों का जल, हिला मिला देता, कई दर्पणों के जल, जिसका दर्शन हमें, शांत कर देता है और गंभीर अंत में'।

उन्होंने उर्दू की प्रसिद्ध कहानीकार रजिया सज्जाद जहीर, बाबा नागार्जुन, भुवनेश्वर, प्रभाकर माचवे, रघुवीर सहाय, नेरूदा, आख्मातोव, नेमीचंद जैन, एक नन्ही लड़की श्रुति

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आदि अनेक पर आत्मकथात्मक कविताएं लिखीं हैं। इसके अलावा नाजिम हिकमत, होमर, सरदार जाफरी, शेक्सपीयर, तुलसी, गालिब, टैगोर, गोर्की, तालस्तॉय, निराला, पाल रॉब्सन, मदर टेरेसा आदि कई चरित्रों के संदर्भ उनकी कविता में हैं।

परंतु ऐसे चरित्र और संदर्भ क्यों हैं? क्या इस तरह की कविताएँ लिखना अपने लिए एक अछूता, ढला हुआ कवि-व्यक्तित्व तैयार करना था? क्या शमशेर आत्ममुग्धता के विरुद्ध बयान देना चाहते थे? क्या शमशेर अपने प्रति कृपण रहना चाहते थे? क्या वे आत्म-सम्मोहन के आरोप का प्रतिकार पहले से तैयार रखना चाहते थे? क्या था उनके इस काव्य-प्रयोजन के पीछे?

मैं नहीं मानता शमशेर ओढ़ी हुई संजीदगी से बने कवि रहे हैं। उन्होंने आसपास की दुनिया से कविताओं के सिरे और सूत्र तलाशने शुरू किये और कविता को लोकतांत्रिकता की ओर झुकाया। उनसे पहले कविता में चरित्रों की उपस्थिति इतनी सघन नहीं थी। यही शमशेर के ऐंद्रिय सौंदर्यबोध का एक ठोस पहलू है।

रजिया सज्जाद जहीर पर लिखी कविता देखें, जो इस प्रतिक्रिया के अंत में मैंने दी है। (संदर्भ कविता-1) संपूर्ण कविता का संदर्भ देने का मकसद यह कहना है कि उस कविता को पढ़कर आप देख सकेंगे कि क्या है शमशेर के ऐंद्रिय सौंदर्य-बोध का ठोसपन? क्या है उनमें निजता के स्वर का प्रतिकार? क्या है उनमें एक अकेले व्यक्ति की निजता से उपेक्षा? और क्या है उनमें दुनियावी संदर्भों का वैभव? इसे आप देखें।

शमशेर की कविताओं में सहज कथन नहीं, तीव्र प्रतिक्रियाएँ हैं। जो जीने, सोचने को मजबूर करती हैं। गंध, रूप, स्पर्श, रस के नए बिंब का निर्माण करती हैं। इसलिए उनकी कविता में कई बार शब्द कैनवास से बाहर चले जाते हैं, फिर भी कविता अर्थ पा जाती है। कविता उन शब्दों से बनती है, जो लिखे हुए नहीं हैं। वे अनलिखे को भी पाठक की चेतना में लिख देना जानते थे। तभी मौन भी शमशेर की कविता में पूरी निष्ठा के साथ व्यक्त हुआ है। उनकी कविता में 'मौन' शब्द कम है, उसकी अनुगूँजें अधिक हैं। (संदर्भ कविता-2)

शमशेर की कविता की बुनियादी संरचना ऐसी है कि उससे प्रतीकात्मक कविता का ढाँचा तैयार हो जाता है। उसमें कई बार सीधे-सीधे चरित्र आ जाते हैं। कभी संदर्भ व घटनाएं और कभी संदर्भों का संहार हो जाता है। स्थान और स्थितियों का लोप हो जाता है। और कविता में बचती है केवल चित्रात्मकता और संगीतात्मकता।

संगीतात्मकता और चित्रात्मकता के साथ-साथ शमशेर भाव और संवेगों के सूत्र कभी ढीले नहीं होने देते। इस कारण शमशेर की कविता के पास जाते हुए बहुतों को डर लगता है। कुछ दिक्कतें पेश आती हैं। शमशेर जैसे सौंदर्य के अनूठे चित्रों के स्रष्टा हिंदी में अन्य कम हैं। (संदर्भ कविता-3)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शमशेर की कविता में जो कस-बल है वह उनके शिल्प की बारीकियों के अलावा उनके वाम-चिंतन और रोमानी बिंबवादी छवि होने में है। उनकी चेतना में दोनों का असर है। एक सह-अस्तित्व है। (संदर्भ कविता-4, 5, 6, 7) शमशेर दोनों की तरह पंक्तियाँ अति सहजता से लिख सकते हैं। उनके मुक्त-व्यक्तित्व की विशेषता दोनों पक्षों के पाठकों को खींचती है। शमशेर कविता में अपने दोनों तरह के मूड को बेझिझक और बेतकल्लुफी से व्यक्त कर देते हैं। इसलिए उन्हें हिस्सों में बाँटकर देखना बेमानी है। वे विभाजित व्यक्तित्व के कवि नहीं हैं। इस अछूते तरीके के कारण शमशेर की कविता की किस्म ही भिन्न हो गई है।

शमशेर कविता में रम जाते हैं, इसलिए भी वे मुझे भिन्न और प्रिय लगते हैं। उनकी 'अमन का राग' कविता पढ़ते हुए कभी यह नहीं लगता है कि कवि का प्रयोजन सपनों की बात करना है। जीवन-दृष्टि की बात करना है। ये बातें कविता में स्वत: उजागर होने लगती हैं। इस कविता के शब्द और उनके पीछे छिपे अर्थ दोनों चेतना को जकड़ते हैं।

शमशेर ने जिन तत्वों का प्रयोग किया है, वे काव्य-सृजन में नए नहीं, मगर उन्होंने कुछ का प्रयोग बढ़ाया और कुछ का घटा दिया है। जैसे उनमें मिथकीय और फंतासी के तत्व नहीं हैं। केवल 'अमन का राग' कविता के नीचे उद्धृत अंश में 'हिरण्यकश्यप' शब्द इस एक कविता में है। (संदर्भ कविता-8)

इसी तरह शमशेर में उक्ति-वैचित्र्य का प्रयोग भी कम से कम है। उनकी कविता में बात का वजन कम, तनाव का वजन अधिक है। यह शमशेर का विशेष और अद्वितीय गुण है। इस कारण उनकी कविता देर तक मस्तिष्क में गूँजती है। उनसे पहले और बाद के कवियों ने तत्वों का ऐसा इस्तेमाल लगभग नहीं किया है।

कविता में तनाव की साधना कठिन है। इसी तत्व से कविता का शिल्प मजबूत होता है। कविता का प्रभाव लंबे समय तक बना रह सकता है। शमशेर ने कविता के आंतरिक तनाव को अपनी कविता में रीढ बना दिया है। तनाव स्वत: अनुपम काव्य-सामर्थ्य से भरा होता है। कविता में शमशेर ने तनाव को शब्दों का विकल्प बनाकर प्रस्तुत कर दिया है। यह काव्य-गुण मुझे अनुकरणीय लगता है। इससे कविता में भाषा का कम से कम बोझ बनता है। शमशेर में यही सीखने वाली बात लगती है कि कविता को कैसे अनावश्यक भार से मुक्त रखा जाए। उन्होंने उपमाओं, कल्पनाओं, बिंबों का पर्याप्त प्रयोग कविता में ऐसे किया है जैसे कि रचना में एक सांगतिक संतुलन बना रहे। यह शमशेर की विशेषता है, जिसने मुझे आकर्षित किया। शमशेर ने कविता के तत्वों को ज्यों का त्यों नहीं, अपने हुनर से बदलकर प्रयोग किया है। इससे उनकी रचना काव्य-तत्वों से दबने से बच गई है। यह शमशेर की कविता में सर्वप्रिय और अनूठा तत्व है कविता को भार-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुक्त बनाना। रचना को बहुत स्वतंत्र रखना। इन दो गुणों को सीखने के लिए मुझे और अधिक शमशेर के पास जाना जरूरी लगता है।

वे मन के दायरे तोड़कर कविता में आते हैं। उन्हें भले ही कोई रूमानियत और कलावादी घराने में ले जाकर बिठा दे, मगर उनकी कविता यथार्थ की जमीन पर ही फलती-फूलती है। वहीं का दाना-पानी उसे फबता है। मैंने शमशेर की यथार्थ के चित्रण वाली जितनी भी कविताएँ या पंक्तियाँ पढ़ीं, उनमें उनकी कविता के शिल्प में निखार नजर आया है। वे उन्हीं कविताओं में अधिक सघन हैं। पक्के हैं। उन्हीं कविताओं में अधिक नफासत और चमक से भरे हैं। यथार्थ के चित्रण करते हुए शमशेर मितव्ययिता के धनी नजर आते हैं। उनका काव्य-कौशल उन्हीं कविताओं में अधिक प्रबल है। जिन कविताओं से शमशेर याद किए जाते हैं, उनमें वाम विचार-चिंतन की यथार्थवादी दृष्टि का सबसे उज्ज्वल पक्ष अधिक प्रबल है। जैसे 'हम नहीं बात बोलेगी', 'अमन का राग', 'काल तुझसे होड़ है मेरी' और 'एक आदमी दो पहाड़ों को कुहनियों से ठेलता' इत्यादि कविताएँ शमशेर की कविता के अद्वितीय शिल्प और गुँथी हुई विचारधारा की मिसालें हैं।

शमशेर की कविता में विविध काव्य-कौशल के उदाहरण भी हैं। उन्होंने संगीत के अनोखे और संगीतात्मक संकेतों और वर्णमाला तथा लिपियों से भरी कविताएँ लिखीं हैं। उनका अलग से मूल्य हो सकता है, मगर मुझे वे कविताएँ सूखी लगीं। उनमें उनका काव्य-कौशल प्रदर्शन अधिक है प्रतिभा का खरापन नहीं। मेरे लिए वे कविताएं दस्तावेज के लिए हैं, शिक्षा के लिए नहीं।

कुल मिलाकर शमशेर मेरे लिए एक सुलझे कवि हैं। मैं जब भी उनका ख्याल करता हूँ, हमारे समय की कविता घुड़सवारों से ही नहीं, अच्छे साइसों से भरी है।

संदर्भ कविता-1

रजिया सज्जाद जहीर
कल थीं
आज नहीं हैं।
मगर
उनके अफसानों की तस्वीरें
देखो तो,
सब कहीं हैं...हमारे बीच
कीमती यादों की सूरत
खामोश जागती...एक अजीब-सी
मगर उदास नहीं,
तस्कीन की मूरत : गो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वो
सीधे...सामने बेतकल्लुफ
वो
सीधे...सामने बेतकल्लुफ
मौजूद,
गो नजर न आए सब कहीं
बयकवक्त मस्कवा, लंदन, दिल्ली
लखनऊ, हैदराबाद कि बम्बई...
जहाँ-जहाँ भी
हम उनके अफसाने जिन किसी को भी
पढ़ते-सुनते पाएं
वहाँ-वहाँ उतनी ही...उतनी
रजिया आपाएँ
मुस्काती हुई, बेशक-ओ-बेगुमान : और
हमेशा यों ही मौजूद

मध्यवर्गी पीड़ा के इस हुस्न के अफसाने
पढ़ने-सुनने वाले जब तक कि
इस जहाने फानी में पाए जाएँगे
और यह कीमती सरमाया
दूर-दूर तक जिन्दा है
यह खूबसूरत संजीदा इंसान-दोस्त फनकार

जिंदा-ओ-पायिन्दा।

संदर्भ कविता-2
लौट आ ओ धार
टूट मत ओ साँझ के पत्थर
हृदय पर
(मैं समय की एक लम्बी आह
मौन लम्बी आह)
लौट आ, ओ फूल की पंखड़ी
फिर
फूल में लग जा
चूमता है धूल का फूल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कोई, हाय!
प्रात का नभ या बहुत नीला शंख जैसा
भोर का नभ

राख से लीपा हुआ चौका
(अभी गीला पड़ा है)

बहुत काली सिल जरा-से लाल केसर से
कि जैसे धुल गई हो
स्लेट या लाल खड़िया चाक
मल दी हो किसी ने

नील जल में या किसी की
गौर झिलमिल देह
जैसे हिल रही हो।
और...

जादू टूटता है इस ऊषा का अब
सूर्योदय हो रहा है।

संदर्भ कविता-4
वाम वाम वाम दिशा
समय साम्यवादी

कह सकते हैं तो

संदर्भ कविता-5
तितलियाँ गोया चमन की फिज़ा
में नश्वर लगती हैं
...एक पल है यह समाँ
जागे हुए उस जिस्म का।

संदर्भ कविता-6
धुआँ धुआँ/सुलग रहा
ग्वालियर के मजूर हृदय

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संदर्भ कविता-7

यह तुम्हारा ठोस बदन
अजब तौर से
मेरे अंदर बस गया है।

संदर्भ कविता-8

मुझे अमेरिका का लिबर्टी स्टैच्यू उतना ही प्यारा है
जितना मास्को का लाल तारा
और मेरे दिल में पेइजिंग का स्वर्गीय महल
मक्का मदीना से कम पवित्र नहीं
मैं काशी में उन आर्यों का शंखनाद सुनता हूँ
जो वोल्गा से आए हैं
मेरी देहली में प्रहलाद की तपस्याएँ दोनों दुनियाओं की
चौखट पर
युद्ध के हिरण्यकश्यप को चीर रही हैं।

205, नन्देश्वर फ्लैट्स, सुन्दरवन सोसायटी के पास
न्यू समा रोड, बड़ौदा-390008 (गुजरात)

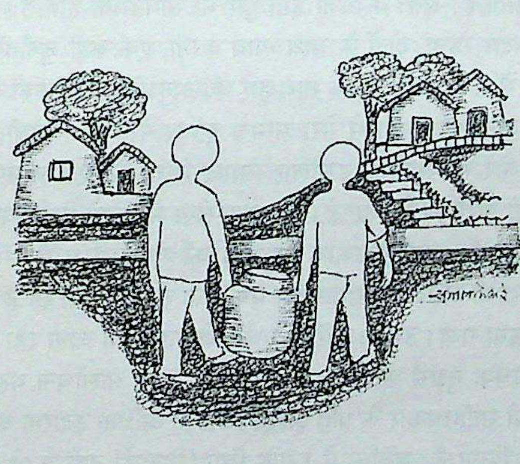

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अपने-अपने अनहदनाद

● रामशरण जोशी

(एक)

क्या व्यक्ति के समग्र को 'सत्य' के रूप में स्वीकार किया जाए, या उसके किसी विशेष 'खण्ड' को? फिर भी 'अंतिम सत्य' क्या है, यह तो अनुत्तरित ही रहेगा। हम अपने मनोगत भावों, अनुभवों, अवलोकनों, प्रभावों और परिणामों के आधार पर समग्र या खण्ड को स्वीकार या अस्वीकार करते हैं। फिर भी हमारे निर्णय कितने सब्जेक्टिव या ऑब्जेक्टिव होते हैं, यह अंत तक विवाद का विषय बना रहता है। निरापद सापेक्षता या तटस्थता, दोनों के संबंध में आश्वस्तता के साथ कहना असंभव नहीं तो दंभभरा दावा तो जरूर कहलाएगा।

हमारे अनुभव पारलौकिक तो होते नहीं हैं। हमारे आस-पास जो संसार होता है, जिस प्रकार के पात्रों के साथ हमारा इंटेरक्शन रहता है- क्षणिक या दीर्घ, उन सभी को समेट कर हम अपनी स्मृति-निधि को जन्म देते हैं। चूंकि हमारे अनुभवों की कोख मूलत: व्यक्तितर समाज होता है, अत: वे निजी होते हुए भी सामाजिक होते हैं। इस संदर्भ में दोनों के प्रति ईमानदार रहना, दोनों के साथ न्याय करना, एक बड़ी चुनौती है व्यक्ति के लिए। पिछले अंक में संपादक अज्ञेय के साथ हुए चंद अनुभवों को पाठकों के साथ शेयर किया था। मिली-जुली प्रतिक्रिया से मेरा सामना हुआ। मेरे घोर विरोधी होते हुए भी अज्ञेय-प्रशंसकों ने मेरे संस्मरण का इसलिए स्वागत किया कि एक वामपंथी ने उनके 'श्रद्धापुंज' को सही परिप्रेक्ष्य में रखा है। संस्मरण-लेख में किसी प्रकार का पूर्वाग्रह या दुराग्रह नहीं झलकता है। एक लेखकीय साफगोई की धारा आरंभ से अंत तक बहती रहती है, वरना वामपंथी अज्ञेय के साथ सदैव संकीर्णता से काम लेते रहे हैं। उनके साथ कभी न्याय नहीं किया गया। उन्हें अमेरिकी एजेंट घोषित किया जाता रहा है।

अज्ञेय-आलोचक मुझसे कतई सहमत नहीं थे। मुख्य आलोचना यह थी कि मैंने एक वामपंथ विरोधी साहित्यकार के प्रति आवश्यकता से अधिक उदारता बरती है। उन्हें 'प्रो लेफ्ट' चित्रित कियां है, जबकि वे इसके लिए 'डिज़र्व' नहीं करते हैं। वे अपने लेखन, चिंतन, व्यवहार में 'रहस्यवादी', 'अभिजातवर्गीय', 'व्यक्तिवादी', 'अमेरिका

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परस्त', 'कम्युनिस्ट विरोधी', 'लोहियावादी-जेपीवादी', 'रॉयवादी' आदि इत्यादि हैं। संभव है 'शेखर एक जीवनी' के लेखक में इन तमाम विशेषणों की पात्रता हो, लेकिन मेरे अनुभव मेरे अपने हैं। ये किसी पूर्वाग्रह या वैचारिक संकीर्णता से नहीं जन्मे हैं। तब किसी कृत्रिमता या विचारधारात्मक मिलीटेंसी को अनुभवों पर क्यों आरोपित किया जाए? अनुभवों का अपना निर्मल यथार्थ होता है। उसे उसी रूप में ही देखा जाना चाहिए। अतः मैंने अपने अनुभवों को उनकी यथार्थता में ही स्वीकार किया है। मैं इससे असहमत हूँ कि अज्ञेयजी के साथ हुए चंद अनुभवों को तंग नजरिये के साथ रखना चाहिए था। यह ठीक है कि अनुभवों का फलक बहुत लघु है और विविधतापूर्ण नहीं है, लेकिन जीवन के चंद लम्हों का भी अपना अस्तित्व होता है बशर्ते कि वे अर्थपूर्ण हों। ऐसे लम्हों की अर्थवत्ता भी निरर्थक विराटता पर भारी पड़ती है।

गौरतलब यह भी है कि मैंने अज्ञेयजी की जीवन-यात्रा और उनके साहित्य पर कोई टिप्पणी नहीं की है, उनके संपूर्ण साहित्य का मैंने अध्ययन किया है, ऐसा भी दावा नहीं है। फिर आलोचना-समालोचना मेरा विषय क्षेत्र नहीं है। उनके साहित्य को किन कसौटियों से परिभाषित किया जाए, यह तय करना डॉ. नामवर सिंह, मैनेजर पाण्डेय, डॉ. निर्मला जैन जैसे आलोचकों का काम है। मैंने स्वयं को सिर्फ 'पत्रकारीय अनुभवों' तक ही सीमित रखा है। अतः मैंने अपने चंद लम्हों के संस्मरणों को न तो अज्ञेय-प्रशंसकों को खुश करने के लिए लिखा है और न ही अज्ञेय-आलोचकों को नाखुश करने के लिये, लेकिन यह भी सच है कि अज्ञेयजी के व्यक्तित्व का एक यह रूप भी इन अनुभवों से बनता है। अन्य व्यक्तित्वों के साथ मेरे जो अनुभव हुए हैं, उनके संबंध में भी मेरी यही सोच है, मैंने अपने अनुभवों-संस्मरणों को सभी खूँटों से मुक्त रखा है। मैं चाहता हूँ कि वैयक्तिकता और सामाजिकता की अन्तर्क्रियाओं से जन्मी अनुभूतियाँ अपनी सहजता एवं स्वाभाविकता के साथ सामने आएँ। वे बनावटीपन व दबावों से मुक्त हों। इस सोच के साथ अपने-अपने क्षेत्र के दो दिग्गजों के साथ हुए अनुभवों को आपके साथ बाँट रहा हूँ, डॉ. रामविलास शर्मा और डॉ. ब्रह्मदेव शर्मा का परिचय देना, शब्दों का अपव्यय होगा। अलबत्ता, जिस प्रकार डॉ. रामविलास शर्मा के बगैर आधुनिक हिन्दी साहित्य और चिंतन अकल्पनीय है, वैसे ही डॉ. ब्रह्मदेव शर्मा और आदिवासी विकास अवधारणा परस्पर पर्याय हैं। दोनों के बीच निजी संपर्क न होते हुए भी, दोनों के कर्मक्षेत्र दोनों के लिए परोक्ष 'संवाद-सेतु' की भूमिका निभाते रहे हैं, लेकिन किस प्रकार? यही अनुभव इस किस्त में रख रहा हूँ।

(दो)

यह वाक़या चौदह-पन्द्रह वर्ष पुराना है। मेरे एक प्रकाशक मित्र हैं डॉ. श्याम बिहारी राय। ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन के कर्ताधर्ता हैं। एक प्रतिबद्ध प्रकाशक होने के नाते डॉ.

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
राय रामविलास शर्मा जी के काफी करीब रहे हैं। उनके लिए संदर्भ सामग्री जुटाने में डॉ. राय सदैव सक्रिय रहे हैं। एक रोज वे मुझसे फोन पर संपर्क करते हैं-

"जोशी जी, क्या कल शाम को फ्री हैं?"

"कोई विशेष काम तो नहीं है। फिर भी बोलिए।"

"डॉ. साहब (रामविलास शर्मा) याद कर रहे थे। कल आपको उनके यहाँ 6 बजे तक पहुँचना है।"

मैं डॉ. राय को अपनी सहमति दे देता हूँ। इससे पहले भी मैं डॉ. राय और डॉ. मैनेजर पाण्डेय के साथ रामविलास जी से चार-पाँच बार मिल चुका था। उनका एक बड़ा वैचारिक साक्षात्कार भी ले चुका था। वे मेरे कार्यों से परिचित थे। इसलिए वे मुझे आवश्यकतानुसार याद कर लिया करते थे। दो-एक बार सीधे भी उनसे संवाद का अवसर मिला। वे समझ के मामले में फौजी हुआ करते थे।

तो मैं और डॉ. राय निर्धारित समय पर डॉ. रामविलास शर्मा के निवास पर पहुँच जाते हैं। उन दिनों वे विकासपुरी (दिल्ली) में रहा करते थे। एक तला मकान था। सादगी से भरा। कभी वे ड्राइंगरूम में मिलते, कभी बाहर आंगन में। समय और मौसम के अनुसार स्थान तय हुआ करता था। आगन्तुक से पहले ही वे तैयार रहा करते थे। वे तनकर कुर्सी पर बैठते। कुर्सी पर कोई मूर्ति जमी हुई है, उनकी बॉडी-भाषा यही अहसास कराती थी। वो कड़क आवाज में बोला करते थे। उनका प्रत्येक वाक्य सुनने व लिखने योग्य हुआ करता था। भाषा अशुद्धि और विचार-भटकाव से मुक्त। अभिव्यक्ति पर उनकी सदैव तानाशाही रही है। आगन्तुक को भी मशक्कत के साथ सचेत रहना पड़ता था। उनके साथ 'लिबर्टी' लेना हवा से चित्र बनाने के समान था।

सामान्य शिष्टाचार के पश्चात् रामविलास जी बोले-

"जोशी जी, आपने तो आदिवासी क्षेत्रों पर काम किया है। क्या आप डॉ. ब्रह्मदेव शर्मा का कुछ साहित्य उपलब्ध करा सकेंगे?"

"क्यों नहीं।" मैंने अपनी सहमति दे दी। इसके पश्चात् उन्होंने आदिवासियों के संबंध में एक-डेढ़ घण्टे तक चर्चा की। मैंने अपने आदिवासी क्षेत्रों (बस्तर, सरगुजा, कालाहाँडी, पलामू, राँची, उदयपुर, बाँसवाड़ा आदि) के अनुभव उन्हें सुनाकर ताजा किये। वे मेरी बहुचर्चित पुस्तक 'आदमी, बैल और सपने' से परिचित थे। उन्हें मेरे और डॉ. बी.डी. शर्मा के संबंधों के बारे में जानकारी थी। वे डॉ. शर्मा के कार्यों और लेखन से भी भलीभांति परिचित थे। वैसे भी डॉ. शर्मा जब बस्तर के जिलाधीश (1970-73) थे तब उनकी जनोन्मुखी प्रशासनिक कार्यशैली देशभर में विख्यात हो चुकी थी। उन्हें सत्ता के गलियारों की भीतर व बाहर आदिवासी समर्थक प्रशासक माना जाता था- एक गाँधीवादी मिशनरी प्रशासक। जाहिर है इस ख्याति ने रामविलास जी के मन में प्रशासक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शर्मा के प्रति जिज्ञासा पैदा की। वे उन्हें गहराई से समझना चाहते थे। इसलिए साहित्यकार शर्मा को पूर्व प्रशासक व सामाजिक एक्टीविस्ट शर्मा की पुस्तक की दरकार हुई।

मैंने दस-पन्द्रह दिन लगाकर डॉ. शर्मा की जरूरी पुस्तकें, पुस्तिकाएँ, प्रचार साहित्य, पर्चे आदि जमा किये और रामविलासजी को सौंप आया। वे इससे खिल उठे। मुझसे कहा- ''जोशीजी, मैं आपको और कष्ट दूँगा। तैयार रहिए।'' ''आपका आदेश मेरा सौभाग्य होगा। आप नि:संकोच मुझे फोन से बुला सकते हैं।'' इस अनुरोध के साथ मैं विकासपुरी से चला आया।

करीब महीना बीतते-बीतते रामविलास जी का डॉ. राय की मार्फत मुझे संदेश मिला। निश्चित समय पर हम दोनों रामविलास जी के यहाँ पहुँच गये। बातचीत का दौर शुरू हुआ तो उन्होंने मुझे अजीब रोल सौंप दिया। वे कहने लगे-

''जोशीजी, आप जो छोड़ गये थे, उसे पढ़ लिया है। शर्मा जी के साहित्य से मुझे आदिवासी समाज के संबंध में काफी समझने को मिला है।''

''जी।''

''अब आपको एक दायित्व दे रहा हूँ। आपके शर्माजी के साथ तो अच्छे संबंध हैं ना?''

''बिलकुल। मैंने भी उनसे काफी कुछ सीखा है। आदिवासी समाज की भीतरी दुनिया से उन्होंने ने ही मेरा परिचय कराया है। आज भी उनके साथ वैसे ही संबंध हैं।''

''फिर तो आपकी बात नहीं टालेंगे।''

''मैं भी यही सोचता हूँ।''

''आपके माध्यम से मैं उनसे एक छोटा-सा अनुरोध करना चाहता हूँ।''

''मैं आपका अनुरोध उन तक पहुँचा दूंगा। आप निश्चिंत रहिए।''

''अनुरोध पहुँचाने के साथ-साथ इसे पूरा करना भी है।'' रामविलास जी अंतिम शब्दों पर जोर दे रहे थे।

''उनसे कहिए कि मैं उनका साक्षात्कार लेना चाहता हूँ। इसके लिए मैं उनके यहाँ जा सकता हूँ या वे मेरे यहाँ आ सकते हैं।''

डॉ. रामविलास शर्मा के इस अनुरोध ने मुझे और डॉ. राय दोनों को ही चौंका दिया। मैं तो बिलकुल अवाक रह गया। मैं तो सोच भी नहीं सकता था कि हिन्दी का शिखर व्यक्तित्व पूर्व प्रशासक में इतनी दिलचस्पी लेगा और साक्षात्कार तक लेने के लिए उद्यत हो जाएगा। डॉ. राय ने पूछ ही लिया।

''डॉ. साहब, क्या आप इंटरव्यू लेंगे?''

''क्यों नहीं? शर्माजी ने काफी काम किया है। कुछ प्रश्न, कुछ शंकाएँ हैं, इंटरव्यू से समाधान हो जाएगा। जोशी जी समय निश्चित करा देंगे तो काम सरल हो जाएगा।'' रामविलास जी ने मेरी ओर देखते हुए कहा।

''जोशी जी लगेंगे तो समय मिल ही जाएगा।'' रायजी ने बेफिक्री से कहा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रामविलास जी को प्रशासक शर्मा से समय लेने के लिए आश्वस्त कर हम दोनों वहाँ से चले आए। घर से बाहर आकर हम दोनों ने इस 'अनुरोध' पर काफी मंथन किया और उम्र के इस पड़ाव पर भी विद्यार्थी सी ललक, ज्ञान की अतृप्त प्यास और अनवरत खोज धर्मिता से हम दोनों ही अचम्भित थे। मुझे यह प्रसन्नता जरूर थी कि रामविलास शर्मा जी जैसे व्यक्ति ने एक गैर साहित्यिक व्यक्ति के काम को इतना महत्व तो दिया। खैर! इस अनुरोध को प्रशासक शर्मा तक पहुँचाना तो है ही।

दो-तीन रोज के अंतराल के पश्चात मैं डॉ. ब्रह्मदेव शर्मा से मिला। उन्होंने दिल्ली के सराय काले खाँ की तंग गलियों में रहना शुरू कर दिया था। उनकी इस बदली जीवन शैली को देखकर मुझे स्वयं पर झेंप आती थी। बेहद तंग गली, स्लम का अहसास, छोटा-सँकरा कमरा, फर्श पर बिछौना, बगैर कमोड का संडास, फर्नीचर के नाम पर दो-एक कुर्सियाँ, कस्बाई चटाई व गद्दा, चंद बर्तन, किताबों व कागजातों से भरी अलमारियाँ और छत से झूलता पंखा। इस दृश्य को देखकर डॉ. शर्मा के विगत जीवन की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। कैसे कोई सोच सकता था कि यह शख़्स केन्द्र और प्रदेश (म.प्र.) के उच्च पदों पर रह चुका है, उत्तर पूर्व नेहरू विश्वविद्यालय का कुलपति रह चुका है, अनुसूचित जाति-जनजाति आयोग का सर्वोच्च संविधानिक पद पर आयुक्त (स्वेच्छापूर्वक व बिना वेतन) रह चुका है। डॉ. शर्मा चाहते तो किसी प्रदेश का राज्यपाल या विश्व बैंक में अधिकारी बन सकते थे। गणित में डॉक्टरेट करने और पिलानी के बिड़ला कॉलेज में पढ़ाने के पश्चात् डॉ. शर्मा 1965 में आई.ए.एस. बने और करीब 25 वर्ष तक सत्ता प्रतिष्ठान में 'प्रतिरोधी प्रशासक' की भूमिका निभाने के बाद 1981 में इस शक्तिशाली व ग्लैमर से भरी सर्विस से इस्तीफा दे दिया। इसके बावजूद भारत सरकार ने उन्हें कुलपति और आयुक्त बनाया। आयुक्त पद से मुक्ति मिलने के पश्चात् डॉ. शर्मा सामाजिक संघर्ष में पूरी तौर पर कूद पड़े। 'भारत जन आंदोलन' की स्थापना की और आदिवासियों के लिए 'हमारा गाँव-हमारा राज' आंदोलन छोड़ दिया। सच्चे अर्थों में कैसे 'डी क्लास्ड' किया जाता है, इसका पाठ ब्रह्मदेव शर्मा से सीखना चाहिए।

डॉ. शर्मा से मेरा परिचय 1971 में बस्तर में हुआ था। वे उन दिनों वहाँ के कलेक्टर हुआ करते थे। मैं साप्ताहिक पत्रिका 'दिनमान' के लिए बस्तर गया हुआ था और 1971 का 'चुनाव कवरेज़' कर रहा था। 1971 से संबंध-यात्रा शुरू हुई तो आज तक जारी है। इसकी एक अलग कहानी है। फिलहाल मैं यहाँ साक्षात्कार की कहानी कहूँगा।

तो मैंने बगैर किसी भूमिका के रामविलासजी का अनुरोध ब्रह्मदेव शर्मा जी के सामने रख दिया। वे यह सुनते ही चौंक पड़े। दुविधा में डूब गये। कुछ क्षण मौन रहने के पश्चात डॉ. शर्मा बोलते हैं- ''मैं स्वयं को इसके योग्य नहीं समझता। वे हिन्दी के बड़े आलोचक हैं, चिंतक हैं। मैं तो सिर्फ प्रशासक हूँ।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''वे तो ऐसा नहीं मानते। मैं भी नहीं मानता। रामविलासजी की दृष्टि में आप आदिवासी समाज के सबसे बड़े चिंतक हैं, उसके हितैषी हैं। भारतीय ढंग से आप सोचते हैं।''

''सो तो ठीक है। वे प्रतिबद्ध मार्क्सवादी चिंतक हैं। उनका विशाल अध्ययन है। मैं तो बहुत सीमित ज्ञान व काम वाला व्यक्ति हूँ।''

''ऐसा नहीं है। उन्होंने आपकी जीवन-यात्रा जानने और आदिवासी साहित्य का अध्ययन करने के बाद ही साक्षात्कार का अनुरोध किया है।''

मैंने हथियार फिर भी नहीं डाले। कुछ देर हम दोनों के बीच चुप्पी पसरी रही। मेरी दिली इच्छा थी कि डॉ. शर्मा इसके लिये तैयार हो जाएँ। यह अपने किस्म का अनूठा प्रयोग होगा और एक ऐतिहासिक साक्षात्कार होगा। चुप्पी तोड़ते हुए वे बोले-

''जोशी! मेरे लिये यह संभव नहीं होगा। तुम मेरी ओर से उनसे माफी माँग लो।''

मैं निराश डॉ. शर्मा के यहाँ से लौट आया और वरिष्ठ डॉ. शर्मा को फोन पर संपूर्ण वृत्तांत सुना दिया। रामविलास जी की प्रतिक्रिया थी-

''ठीक है। वे अपनी जगह सही होंगे। आप एक बार पुन: उनसे अनुराध कर लें और मुझे बतलाएँ। यदि वे सहमति दें तो प्रश्न तैयार कर लिये जाएँ। चर्चा के बिंदु भी कुछ हो सकते हैं।''

डॉ. रामविलास शर्मा का संदेश लेकर मैं पुन: डॉ. शर्मा के पास पहुँचा। वे फिर चिंता में डूब गये। कुछ सोचने के पश्चात् उन्होंने दुविधामुक्त स्वर में कहा- ''देखिए जोशी, मेरे लिए यह कतई संभव नहीं है। वे महान लेखन के लिए समर्पित हैं। मैं इंटरव्यू की स्वीकृति देकर उनका अमूल्य समय बर्बाद नहीं करना चाहता। उनके इंटरव्यू के अनुरोध से ही मैं कृतज्ञ हूँ। इससे ज्यादा कृतज्ञता मैं सहन नहीं कर सकूँगा।''

डॉ. बी.डी. शर्मा के स्वरों में स्पष्टता, दृढ़ता व विनम्रता थी। मैं परास्त था। इसके पश्चात अनुनय के लिए कोई स्पेस शेष नहीं था। दो-तीन दिन रुकने के बाद मैं रामविलास जी से मिला। उन्हें ब्रह्मदेव के वे शब्दों की यथावत रिपोर्टिंग की। रामविलास जी को डॉ. शर्मा की असमर्थता से कुछ आश्चर्य जरूर हुआ। उन्होंने मिश्रित भाव से इतना ही कहा- ''डॉ. शर्मा जी तैयार हो जाते तो कुछ नया निकलता। मेरा और हिन्दी समाज का ज्ञानवर्धन ही होता। ख़ैर!''

स्व. डॉ. रामविलास शर्मा के अनुरोध और डॉ. ब्रह्मदेव शर्मा की असमर्थता में से किसे सही समझूँ, यह प्रश्न अब भी विचलित करता है। इतना अवश्य है, दोनों ही अपने-अपने जगत के 'अनहद नाद' हैं और दोनों ने एक-दूसरे की गूँज को विस्तार ही दिया।

105, समाचार अपार्टमेंट्स
मयूर विहार, फेज-I, नई दिल्ली-110091

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निराशा के कर्त्तव्य : डॉ. राममनोहर लोहिया

● प्र. नंद चतुर्वेदी

'निराशा के कर्त्तव्य' डॉ. राममनोहर लोहिया की तीस पृष्ठों की एक छोटी पुस्तक है। यह किसी 'पुस्तक-योजना' के अन्तर्गत लिखी जाने वाली पुस्तक नहीं है। यह समाजवादी युवजन सभा के सदस्यों से जुड़ा संवाद, भाषण है, जो 23 जून, 1962 को नैनीताल में हुआ या दिया गया था। लगभग पचास वर्ष हुए।

मैं सोचता हूँ अन्यायों और गैर-बराबरी की दुनिया को न्यायप्रिय, समतावादी बनाने वालों के मन प्राय: निराशा-आशा के झूलों में झूलते रहते होंगे। निराशा इस दुनिया, इस व्यवस्था और वर्तमान से जो मिला है और आशा उस भविष्य से जिसकी रचना इस कुरूप वर्तमान को बदलकर संभव है। गहरे अँधेरे और निराशा के बीच की स्थितियों को देखना उस संताप से गुजरना, लेकिन आहत न होना, न हारना ही 'निराशा के कर्त्तव्य' हैं। लोहियाजी इस भाषण में उस निराशा के विश्वव्यापी परिदृश्य को देखते हैं, जहाँ शोषित और शोषक देश हैं और जिन्हें समतावादी व्यवस्था बनाने का काम मिलकर करना है।

लोहियाजी के इस भाषण के बाद वाले पचास वर्ष दुनिया के देशों और हमारे देश की प्राथमिकताओं को उलट-पुलट कर देने वाले हैं। समता, शान्ति और सहिष्णुता की मनोकामना करने वाले, उसके लिए आन्दोलित होने वाले लोगों, संस्थाओं और देशों की संख्या कम हो गयी है। उनकी वाणी और कर्म की तेजस्विता, शक्ति और गति मंद पड़ गयी है। दुनिया एक ध्रुवीय हो गयी है और समतावादियों के लिए निराशा के धुँधलके गहरा गये हैं, लेकिन क्या दुनिया और देश को इस दुखद स्थिति से संघर्ष करने के उत्साहप्रद कर्त्तव्यों के भी अंतिम दिन आ गये हैं? लोहियाजी के इस संवाद-भाषण की प्रासंगिकता इस प्रश्न के साथ और अधिक जरूरी हो गयी है।

लोहियाजी निराशा(ओं) से उबरने के कर्त्तव्यों की बात करने के पहले निराशाओं की तफ़सील से बात करते हैं। वे कहते हैं- ''मुझ को काफी समय से तीन तरह की निराशा है- एक राष्ट्रीय निराशा, दूसरी अन्तरराष्ट्रीय निराशा और तीसरी मानवीय निराशा।''

पहली राष्ट्रीय निराशा के लिए वे इतिहास ढूँढते हैं- पन्द्रह सौ बरस पहले तक के इतिहास में उन्हें किसी भी अन्दरूनी जालिम के खिलाफ जनता के विद्रोह का कोई

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उदाहरण नहीं मिलता। ''एक जो राजा अन्दरूनी बन चुका है, देश का बन चुका है, लेकिन जालिम है, उसके खिलाफ जनता का विद्रोह नहीं हुआ यानी ऐसा विद्रोह जिसमें हजारों, लाखों हिस्सा लेते हैं, बगावत करते हैं, कानून तोड़ते हैं, जालिम को गिरफ्तार करते हैं, फाँसी पर लटका देते हैं?'' इसी का परिणाम वह झुकना होता है, जो न अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने देता है और न सिर। लोहिया कहते हैं- ''इस झुकने को हमारे देश ने बड़ा सुंदर नाम दिया है कि हमारा देश तो बड़ा समन्वयी है।''

ऐसे समन्वय प्रायः समर्पण ही होते हैं। समर्पित ज़िंदगियाँ हर 'जोखिम' से डरती हैं और परिवर्तन की हल्की आहट से असुरक्षित और व्याकुल नजर आती हैं। ''लोग आधे मुर्दा हैं, भूखे और रोगी हैं, लेकिन संतुष्ट हैं। संसार के और देशों में गरीबी के साथ-साथ असंतोष और जलन है। यहाँ थोड़ी-बहुत जलन इधर-उधर हो तो हो, लेकिन खास मात्रा में जलन या असंतोष नहीं है।''

इसका-इस झुकने, टूटने या संतोष का कारण लोहियाजी ढूँढते हैं और वे जाति प्रथा को सबसे बड़ा कारण चिह्नित करते हैं- यह कहने की जरूरत नहीं है कि जाति प्रथा वर्चस्व और दासता की कैसी-कैसी मनोग्रंथियाँ बनाती हैं और किस चतुराई से गैर-बराबरी को 'ईश्वरीय-न्याय' का रूप दे देती है। डॉक्टर साहब कहते हैं कि ''हिन्दुस्तान में एक तरफ आर्थिक गैर-बराबरी और दूसरी तरफ समाज की या तंत्र की गैर-बराबरी ने मिलकर यह अवस्था पैदा कर दी है कि साधारण जनता, बहुसंख्यक जनता के दिमाग में वह उखड़ापन नहीं रह गया है। उसमें संतोष आ गया है और क्रांति की संभावना बहुत कम दिखाई पड़ती है।'' ''यह पिछले पन्द्रह सौ बरस की बात। यह कूड़ा बहुत दिनों का जमा हुआ है या दिमाग पर एक विशेष प्रकार का जंग चढ़ा है और वह भी बड़ा पुराना है, कोई 1500 बरस का। यह कोई मामूली निराशा की चीज़ नहीं हुई।''

लोहियाजी उस सामयिक निराशा की भी चर्चा करते हैं, जो आजादी के बाद शुरू होती है। वह जोखिम, क्रांतिकारी कर्म और तरह-तरह की गैर-बराबरी के विरुद्ध खड़े होने का युग बीत गया है। अब वह युग आ गया है कि जो कुछ मिल गया है, उसे बैठकर भोगो। सब मिलाकर ऐसा लगता है कि यह भोग का युग चल रहा है।

राष्ट्रीय निराशा के प्रसंग में वे राज चलाने वाले शासक वर्ग की भी बात करते हैं, जिन्हें वे दो नम्बर का राजा कहते हैं। इनकी चतुराई का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं- ''ये सब चीजों से मिलाप कर लेते हैं और हिन्दुस्तान हर किसी तूफान के सामने झुक जाता है। यही शासक वर्ग पुश्तैनी गुलाम है।'' अपनी राष्ट्रीय निराशा का समाहार करते हुए लोहियाजी लिखते हैं- ''अजीब हालत है कि जिसको क्रांति चाहिए उसके अन्दर शक्ति है ही नहीं और वह शायद सचेत होकर उसकी चाह रखता ही नहीं है और जिसमें क्रांति कर लेने की शक्ति है उसे क्रांति चाहिए नहीं या तबियत नहीं है। मोटे तौर पर यह राष्ट्रीय निराशा की बात है। साथ में छोटी-छोटी और बातें भी हैं कि हिन्दुस्तानी झूठा होता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है, समय का ख्याल नहीं रखता, बकवासी हो गया है, मेहनत करना नहीं जानता, आलसी हो गया है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस वक्त हिन्दुस्तान, हम लोग, दुनिया में सबसे झूठे, सबसे आलसी और सबसे निकम्मे हो गये हैं।''

अन्तरराष्ट्रीय निराशा की बात करते हुए वे मशीन और युद्ध के हथियारों से पैदा होने वाली निराशा की बात करते हैं। मशीन की वे उस तरह तो भर्त्सना नहीं करते जैसे गाँधी करते हैं, लेकिन हर्बर्ट मारक्यूज़ करते हैं- एक आयामी (यूनीडायमेन्शल वर्ल्ड) बनाने के प्रसंग में। जब वे मशीन की निराशा की बात करते हैं तो फ्रांस के विश्वविद्यालय के प्रोफेसर का नाम तो नहीं लेते, हवाला देते हैं, वह मारक्यूज़ के प्रतिपादित सिद्धांत की तरफ ही जाता है। लोहिया के अनुसार गोरी दुनिया मशीनों के जरिये चीज़ों का उत्पादन बढ़ाए जा रही है, जिसका परिणाम- ''सब चीज़ें एक जैसी हो रही हैं। संगीत एक जैसा, नाचना वगैरह एक जैसा, कपड़े-लत्ते एक जैसे, चेहरे भी करीब-करीब एक जैसे। इस गोरी दुनिया में इतनी सादृश्यता आ रही है, बिल्कुल एक जैसापन आ रहा है कि लोगों का मन ऊबने लगा है और वे सोचते हैं कि इंसान खुद एक मशीन बन जायेगा, उसमें अनोखापन नहीं रहेगा। ...गोरी दुनिया में आज शृंगार की चीज़ें हर एक के लिए संभव हो गयी हैं। नतीजा यह है कि हर औरत का चेहरा खूबसूरत बन रहा है, बहुत एकसापन आ रहा है। ऐसा लगता है कि दो, चार, दस बरस तक उन चेहरों को देखते रहो तो अजीब-सा बेमतलबपन मालूम पड़ेगा। चेहरों की चीनी तो बढ़ती जा रही है, लेकिन नमक घटता जा रहा है।''

अन्तरराष्ट्रीय निराशा का दूसरा कारण हथियारों की प्रतिस्पर्धा है। एक शान्तिकामी समाजवादी की तरह वे चिन्ता करते हैं। रूस और अमेरिका के बीच चलने वाली आयुधों की विनाशकारी प्रतिस्पर्धा के परिणाम भयावह हो सकते हैं। ''आज स्थिति पैदा हो गई है कि अब चाहे कोई नये हथियार बनें या न बनें, रूस और अमेरिका दोनों एक-दूसरे और संसार का नाश कर सकते हैं। इसलिए हथियार न सिर्फ नैतिक दृष्टि से बुरे हैं, भौतिक दृष्टि से भी निकम्मे हो गये हैं, उसमें हार-जीत कहाँ रह गई है?'' लेकिन दुनिया के लोग निरन्तर भय और असुरक्षा की मनोग्रंथियों के बीच जी रहे हैं और युद्ध न भी हो, युद्ध की संभावनाओं ने हथियारों के व्यापार का एक बड़ा बाजार खोल दिया है। हथियारों के बारे में सोचते हुए लोहिया केवल आधुनिक आयुधों के बारे में ही नहीं सोचते, उन पारम्परिक हथियार बन्दूक और लाठी के खात्मे के बारे में सोचते हैं। ''इतनी अच्छी दुनिया कब बन जायेगी कि बन्दूक और लाठी की भी जरूरत न रहे। संसार में क्या कभी ऐसा जमाना आयेगा जब चोरी, धोखाधड़ी और तात्कालिक गुस्सा खत्म हो जायेगा।''

लोहिया यह तलाश करते हैं कि 'हथियार किस कारण निकले या हथियारों ने किस कर्म को पैदा किया।' इसके उत्तर में उन्होंने लिखा- ''असल में हथियार माने अन्याय।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हथियार या तो अन्याय मिटाने का जरिया है या उसे कम करने का जरिया है। हथियार की जरूरत अन्याय के साथ चिपकी हुई है।''

''गैर बराबरी अन्याय का बहुत बड़ा हिस्सा है। कम-से-कम सम्पूर्ण बराबरी नहीं तो सापेक्ष बराबरी कायम करने पर समाज में तुष्टि आयेगी, न्याय की भावना आयेगी और फिर हथियारों को खत्म करने वाली हालत पैदा हो जायेगी। ...बीसवीं सदी बड़ी बेरहम सदी है, बड़ी खराब सदी है, लेकिन उसके साथ-साथ इसमें एक गुण है जो कभी किसी सदी में नहीं रहा और वह यह कि बीसवीं सदी का इंसान अलग-अलग देशों में अलग-अलग अन्यायों के खिलाफ एक साथ लड़ रहा है।'' लेकिन इस तरह अन्यायों का खत्म होना हथियारों का अनावश्यक हो जाना लोहिया की 'खाली दिमाग के सोचने की गुंजाइश' है।

लोहियाजी के पास अन्तरराष्ट्रीय अन्यायों, गैर-बराबरी के संदर्भों और निराशाओं की लम्बी फेहरिस्त है। उनमें सबसे बड़ा अन्याय रूस और अमेरिका के पास 'सारे संसार के हथियारों की मिलकियत है'। उनकी दृष्टि में दूसरा अन्याय 'अन्तरराष्ट्रीय जमींदारी' है। तफसील से बताते हुए वे कहते हैं कि जैसे भूमि की राष्ट्रीय गैर-बराबरी दूर करना अनिवार्यता है तो वही अन्तरराष्ट्रीय अनिवार्यता क्यों नहीं है। आखिर इसकी जड़ कहाँ है? कोई पट्टा कहीं से थोड़े ही लिखाया गया है? यह भी तो आकस्मिक घटना ही है। ...अमेरिका में गोरों ने लाल हिन्दुस्तानियों को खत्म किया तो उन्होंने उनकी जमीनें हड़प लीं। रूस में जो कोई भी शुरू में आए, उन लोगों ने जमीनें अपने कब्जे में कर लीं। यह एक तरह की अन्तरराष्ट्रीय जमींदारी चली।

इसी तरह पैदावार की अन्तर्राष्ट्रीय गैर-बराबरी है, जिसके चलते ''अमेरिका व रूस जैसे देश तो 8 हजार से 14 हजार रुपया हर साल आदमी के हिसाब से पैदावार कर रहे हैं और हमारे जैसा देश 400 रुपए पर पड़ा हुआ है। एक और अन्याय दिमागी साम्राज्यशाही है। जैसे हमारे यहाँ शूद्र पर द्विज की साम्राज्यशाही है। गोरा आज दुनिया के सामान को जिस खूबी और अक्ल के साथ इस्तेमाल कर सकता है समझता है और हेर-फेर कर सकता है, उसको रंगीन नहीं जानता। यह भी बिल्कुल साफ बात है। गोरा इस दिमागी साम्राज्यशाही के रहस्य को, रंगीन को देता भी नहीं है।''

अन्यायों की इस शृंखला में हथियारों की और दामों की साम्राज्यशाही शामिल है। दामों की जबरदस्त साम्राज्यशाही और परिणामस्वरूप लूट का आँकड़ा बताते हुए लोहिया ने लिखा है- ''शायद 20, 25 या 30 अरब रुपये की लूट होती है। आजकल रूस या अमेरिका या सम्पन्न देश दान या कर्जे के रूप में गरीब देशों को देते हैं, उससे कहीं ज्यादा रुपया इस समय ये सम्पन्न देश और गैर-सम्पन्न देशों से दामों की लूट से ले लिय। करते हैं। सम्पन्न देशों की यह ठगी-गैर-सम्पन्न देशों से कच्चा माल लेकर उन्हें पक्का माल और पक्के में पक्की मशीनें देकर सुरक्षित रखी जाती है।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'निराशा के कर्त्तव्य' में तीसरे प्रकार की निराशा 'मानवीय निराशा' के रूप में उल्लेखित है। इस प्रसंग की निराशा को वे सत्ता और आदर्शवाद (पैगम्बरी) के बीच निरन्तर चलने वाली तकरार की तरह चिह्नित करते हैं। इसे स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं- ''समाजवादी दल की राजनीति में एक तरफ तो है सत्ता प्राप्ति और दूसरी तरफ है पैगम्बरी। ...अगर मकसद खाली राजनीति होता, सत्ता प्राप्ति होता, नेतागीरी होता तो शायद गद्दी के मामले में सफलता थोड़ी बहुत ज्यादा मिलती, लेकिन मुश्किल यह है कि उसके साथ पैगम्बरी भी जुड़ी हुई है, समाज-परिवर्तन भी जुड़ा हुआ है। ज्यादातर दुनिया को मोड़ देने वाले वही व्यक्ति हुए हैं, जिनमें राजनीति के मुकाबले में पैगम्बरी वाला हिस्सा कुछ ज्यादा रहा। यीशु-मसीह राजनीति के हिसाब से तो बड़े असफल रहे। 300 बरस तक असफल रहे। उनमें राजनीति वाला हिस्सा बहुत ही कमजोर था और पैगम्बरी वाला हिस्सा बड़ा मजबूत था। शायद मोहम्मद एक ऐसे नेता हुए कि जिनमें नेतागीरी और पैगम्बरी के हिस्से ठीक-ठाक मिले हुए थे कि एक तो उनकी पैगम्बरी कामयाब हो गयी और दूसरी तरफ उनकी नेतागीरी भी उतनी ही कामयाब हो गई। अपने जीवनकाल में ही दोनों सफलतायें उनको मिल गयीं। महात्मा गाँधी के लिए यह कहना बड़ा मुश्किल है कि उनमें पैगम्बरी का हिस्सा भी उतना ही था जितना राजनीति का, नेतागीरी का। मुझे लगता है, उनमें शायद राजनीति का हिस्सा कुछ थोड़ा-सा ज्यादा था।''

देखने की बात है कि सत्ता की राजनीति और आदर्शवाद (पैगम्बरी) लोहिया-सैद्धान्तिकी के दिलचस्प और महत्त्वपूर्ण केन्द्र हैं। यहाँ भी वह है। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं- ''इन सब बातों को समझकर, इस राजनीति को पकड़ कर पैगम्बरी और राजनीति भी, सत्ता प्राप्ति और समाज परिवर्तन भी, नया भविष्य और उसके साथ-साथ आज की दुनिया में गद्दी पर बैठने की अभिलाषा या न्याय के लिए माँग, इन सिद्धांतों को लेकर कोई दल चलेगा तो सम्भवत: एक बात होकर रहेगी और अगर वह दल ज्यादा सच्चा है तो उसमें पैगम्बरी का हिस्सा ज्यादा रहेगा ही।''

सत्ताभिलाषा और पैगम्बरी के बीच चलती वैचारिक जद्दोजहद को लोहिया बीसवीं सदी की चरित्र-व्याख्या के काम में लाते हैं। उनका यह विश्लेषण बीसवीं सदी को समझने की कोशिश करते अनेक विद्वानों ने उद्धृत किया है। उन्होंने लिखा है- ''मैं फिर से याद दिला दूँ बीसवीं सदी बेरहम है, लेकिन उसके साथ-साथ उसमें एक बीज है, एक संभावना है कि मनुष्य इसी सदी के खत्म होने तक गैर-बराबरी और नाइंसाफी से मुक्त हो जाये।'' इस लोकप्रिय उद्धरण के साथ संवाद का एक चरण समाप्त होता है- निराशा के कारणों का।

दूसरे चरण में कर्त्तव्यों की थोड़ी जानी-पहचानी-सी फेहरिस्त है। यह दरअसल उन समाजवादी युवाओं के लिए है, जो सामाजिक बदलाव के लिए प्रतिबद्ध हैं। लोहिया की दृष्टि केवल बदलाव के कर्म-कांड पर नहीं है, जिनका चरित्र कागजी और राजनीतिक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुनाफों पर केन्द्रित होता है और जिनका परिणाम सत्ता हासिल करने में मदद करता है। वे दरअसल कुछ दूर तक जाना चाहते हैं। यह यात्रा उस निराशा के गहन कारणों की जाँच करने के लिए उकसाती है, जिसके अभाव में युवकों को कोई सार्थक और क्रांतिकारी विचार और कर्म की प्रेरणा नहीं मिलती। इसी प्रसंग में वे यह सवाल करते हैं कि क्या बात है कि 10, 12, 15 बरस में कोई चीज कर ही नहीं पाये? अब हम सवाल करें कि 40, 50 या 60 सालों में कुछ कर ही नहीं पाये?

लोहिया ने उस समय जो कारण तलाश किया वह यह है ''कांग्रेसी सरकार इस बात में सफल हो गई कि उसने इस भोग युग में लड़कों का ध्यान सांस्कृतिक कार्यक्रमों की तरफ इस खूबी से बढ़ा दिया कि बुद्धि वाले या दिमागी कार्यक्रम, विचार और सिद्धांतों के कार्यक्रम ओझल हो गए, पिछड़ गए। सांस्कृतिक कार्यक्रम, नाच, गाना, संगीत वगैरह बड़ी अच्छी चीज़ हैं बशर्ते कि वह नम्बर दो पर हों। पहले नम्बर पर दिमागी बहस, सिद्धांत, विचारों की उथल-पुथल, उधेड़बुन यह सब होना चाहिए, लेकिन विद्यार्थियों का दिमाग इस चीज़ से हटाया गया है।'' क्रांति का सबसे बड़ा शस्त्र बुद्धि की तीव्रता और बदलाव की बेचैन आकांक्षा है। बुद्धि की इस तीक्ष्ण धार को कुंठित न होने देना निराशा के कर्त्तव्यों में पहले नम्बर पर है।

निराशा के कर्त्तव्यों की गणना करते हुए लोहिया निरन्तर अंग्रेजी हटाने की बात करते हैं। 'हिन्द स्वराज्य' पढ़ते हुए मैंने 'स्वभाषाओं और हिन्दों' के लिए ऐसी ही जरूरत के साथ आग्रह करते गाँधीजी को पढ़ा। गाँधी और लोहिया, अंग्रेजी को ज्ञान की भाषा मानते हैं, लेकिन उसके वर्चस्व का निषेध करते हैं। शिक्षा के एक बुनियादी और महत्त्वपूर्ण सिद्धांत का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है- ''हमारी पढ़ाई केवल उस माध्यम से हो, जिसमें कि हम सचमुच पढ़ाई सीख सकते हैं, क्योंकि अंग्रेजी के शब्दजाल में फँसे-फँसे हमारे दिमाग का भुर्ता बन गया। गोरे लोगों की दिमागी साम्राज्यशाही जो चल गयी है, उसका बड़ा कारण यह है कि वे विद्या अपनी भाषा के जरिये सीखते हैं। हमारे लिए उनकी विद्या पहले ही नकली है और दूसरे उसे उनकी भाषा में सीखते हैं, इसलिए वह कोई काम की नहीं रह जाती।''

हम यह विश्वास के साथ कह सकते हैं कि डॉ. राममनोहर लोहिया अंग्रेजी हटाओ आंदोलन के भावुक प्रवक्ता नहीं हैं, वे उसके गंभीर, निपुण और क्रांतिकारी व्याख्याकार हैं। अंग्रेजी के दुष्प्रभावों का उन्होंने गहन अध्ययन किया है। उन्होंने बताया है कि अंग्रेजी पढ़े-लिखों के मुनाफे का अर्थशास्त्र भारतीय भाषाओं के योग्य छात्रों के हितों को किस तरह रौंदता है। उनकी दृष्टि में युद्ध की हार-जीत का गणित भी भाषा से जुड़ा है। 'अंग्रेजी हटाओ' आंदोलन के सिलसिले में एक जगह उन्होंने लिखा है- ''हम से कई लोग कहा करते हैं कि विद्यार्थी का मन तो जब तक कोई बड़ी-चौड़ी चीज नहीं होती तब तक उछला नहीं करता है तो सीमा की सुरक्षा पर ही उछलो? सीमा की सुरक्षा कोई

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हँसी-मजाक की बात नहीं है। अंग्रेजी हटाने वाली भी इतनी ही मुख्य है और सीमा की सुरक्षा के साथ जुड़ी हुई है। चीनी अपनी भाषा में सब सीख रहा है, इसलिए ज्यादा ताकतवर बनता चला जा रहा है और हम हिन्दुस्तानी अपनी भाषा में चीज़ें नहीं सीख रहे हैं, इसलिए उसके मुकाबले में कमजोर बनते चले जा रहे हैं।''

लोहिया भारत में वर्ग-निर्मित में सम्पत्ति के साथ-साथ भाषा और जाति को भी शामिल करते हैं। हमारे देश का अभिजन सम्पदा के कारण वर्चस्ववादी वर्ग में सम्मिलित नहीं होता, अंग्रेजी और उच्च जाति के कारण भी होता है। वर्ग-विहीन समाज-रचना के लिए लोहिया इसलिए अंग्रेजी के प्रभुत्व के विरुद्ध उग्र आंदोलनवादी रवैया अपनाते हैं। यहाँ तक 'गुरिल्ला युद्ध' की रणनीति भी वाजिब मानते हैं। निराशा के कर्त्तव्य में युवजन सभा के सदस्यों को वे कहते हैं कि ''यह फैसला कर लो कि विद्यार्थियों की टोलियाँ रहेंगी जो अपने शहर में एक भी अंग्रेजी नामपट नहीं रहने देंगी। यह लड़ाई लगातार चलती रहेगी, क्योंकि सरकार की तरफ से जिद हो सकती है कि अंग्रेजी में वह फिर से लिखें। आप मिटायेंगे तो दोनों तरफ से जिद होगी, एक झूला-सा चलता रहे। उनकी तरफ से अंग्रेजी की लिखावट, आपकी तरफ से अंग्रेजी की मिटावट।''

भारतेन्दु ने कभी भाषा के गुणानुवाद में यह दोहा लिखा था-

''निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटै न हिये को शूल।''

इस दोहे में प्राय: यह भी देखा गया कि वह उग्र राष्ट्र प्रेम और भावुकता का प्रतीक है, लेकिन लोहिया इसे 'सब प्रकार की उन्नतियों' का मूल मानते हैं। आर्थिक, भौतिक, मानसिक, सांस्कृतिक दासता और हीनता की सारी स्थितियों से मुक्ति पाने का। उन्होंने नाराज होकर भारतीय भाषाओं की उपेक्षा सहते देश को 'कटी जुबान का देश' कहा है।

उल्लेखनीय यह भी है कि अंग्रेजी भाषा आभिजात्यवादियों का घमंड तोड़ने के लिए वे बाकायदा आंदोलन, सत्याग्रह, जेलें भरने का आग्रह करते हैं। यह भारतीय भाषाओं और हिन्दी के लिए प्रतिवर्ष 14 सितम्बर के 'हिन्दी दिवस' पर लिखे जाने वाले लेखों के वाक्-छल को प्रकट करता है, जो स्व-भाषा के लिए एक दिन तड़प कर वर्ष के शेष दिनों अंग्रेजी का झंडा उठाये फिरते हैं।

उपनिवेशों के शासन में मालिकों की भाषा ने शोषण और वर्चस्व के जो आधार तैयार किये, वे शस्त्रों से भी ज्यादा घातक थे। उन्होंने शासित देशों के लोगों में जो हीनता की भावनायें पैदा कीं उनमें से एक यह थी और है कि अंग्रेजी विश्व-भाषा है और उसे जानने वाला विश्व को जानता है। लोहिया के लिए अंग्रेजी का यह मोहक प्रपंच निराशा और गैर-बराबरी का मुख्य कारण था। यह विडम्बना ही है कि लोहिया के बाद भारतीय भाषाओं की गरिमापूर्ण वापसी के लिए कोई प्रचंड आंदोलन नहीं हुआ और यह भी कि उनकी मृत्यु के बाद समाजवादी पार्टी ही टूट गयी और लोहिया के सपने आधे-अधूरे रह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गये। अब सैम पित्रोदा की अध्यक्षता में बनी समिति कक्षा एक से अंग्रेजी पढ़ाने का दबाव बनाये हुए है। अंग्रेजी के अच्छे दिन आ गए हैं।

निराशा के कर्त्तव्यों में जात-पाँत को तोड़ना एक अनिवार्य आवश्यक कर्त्तव्य है, लेकिन कैसे तोड़ें? इस पर लोहियाजी ने विस्तार से बात की है। उनकी दृष्टि में जात तोड़ने के लिए चार प्रकार के हमले किये जाने चाहिए। उनमें पहला हमला धार्मिक है। धर्म-सूत्रों में जाति कायम रखने और उखाड़ने की लम्बी बहस है, लेकिन लोहिया कहते हैं कि ''बहस चलती रहेगी। मुझे एक खतरे से आगाह कर देना है कि आम तौर से जाति तोड़क कितने लोग हैं वे अपनी बहस को धार्मिक और पौराणिक ही रख दिया करते हैं, जबकि इस बहस में 100 मिनट में से मुश्किल से 10 मिनट ही लगना चाहिए।''

'जात तोड़ो' सिलसिले का दूसरा हमला आर्थिक है। लोहिया मानते हैं कि आर्थिक गरीबी और छोटी जातियों का अजीब मैत्री-संयोग है। इसे तोड़ने के लिए लोहिया प्रस्तावित करते हैं ''साढ़े छह बीघे की खेती से, अलाभकर जोत से लगान खत्म करना। ज्यादातर छोटी जाति के हैं, जो सचमुच बहुत ही छोटी जाति वाले लोग हैं, वे इसमें आते हैं। उनको आर्थिक मामलों में कुछ ऊँचा उठाओ और उनकी अपनी आँखों में खुद की इज्जत बढ़े, आत्म सम्मान जगे। साढ़े छह एकड़ वाली बात या खेतिहर मजदूर की मजदूरी बढ़ाने वाली बात या ऊँची से ऊँची आमदनी या नीचे से नीची आमदनी के बीच एक मर्यादा बाँधने वाली बात।''

जाति-तोड़ो कार्यक्रम का तीसरा हमला सामाजिक है, जो सहभोज से प्रारम्भ होता है। वह सरल-सा कार्यक्रम जितना लगता है उतना और वैसा होता नहीं है। प्राय: लोग, पच्चीस या तीस इकट्ठे होकर खा लिया करते हैं, लेकिन जब यह काम सारे समाज के लिए होता है, तब लोहिया कहते हैं- ''इसका जबरदस्त असर पड़ता है। एक बार हैदराबाद में हम लोगों ने यह काम किया। वही 30-35 आदमी जो हमेशा इकट्ठे साथ खायें तो कोई असर पड़ेगा नहीं, लेकिन 4 हजार, 10 हजार, 15 हजार आदमी विभिन्न जातियों के इकट्ठे होते हैं और अपने-अपने घर से चावल-दाल ले जाते हैं। एक हंडिया में वह पका दिया जाता है। वहीं सब लोग बैठकर खाते हैं तो तहलका मच जायेगा।''

सामाजिक हमले के सिलसिले में ही वे अन्तर्जातीय विवाह के बारे में भी सोचते हैं। वे कल्पना करते हैं कि ''कुछ ऐसा हो सकता है कि गद्दी मिल जाने पर एक ऐसा कानून बना सकते हो कि जितने भी सरकारी नौकर होंगे, उनकी नियुक्ति में इस बात का ध्यान रखा जायेगा कि पहले नौकरी उसी को देनी है, जिसने अन्तर्जातीय विवाह किया है। अन्तर्जातीय मतलब द्विज में आपस में नहीं बल्कि द्विज-अद्विज।''

जात-पाँत तोड़ने की दिशा में चौथा हमला है राजकीय। लोहिया मानते हैं कि जैसे-जैसे यह बालिग मताधिकार चलता रहेगा, चुनाव चलते रहेंगे वैसे-वैसे जाति का ढीलापन बढ़ता रहेगा। यहीं वे इस बात पर जोर देते हैं कि हमें जो चीज पकड़कर रखती

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है वह है विशेष अवसर बनाम समान अवसर। इस विषय का खुलासा करते हुए वे कहते हैं कि समान अवसर का मतलब हमारे लिए क्रांतिकारी नहीं होता जैसा कि रूस या अमेरीका में होता है, क्योंकि वहाँ जात-पाँत नहीं है। हमारे लिए क्रांतिकारी विचार है विशेष अवसर। लोहिया मानते हैं कि जो राजनीतिक दल विशेष अवसर के सिद्धांत को लेकर आगे बढ़ेगा वह जोखिम उठाने को तैयार रहेगा। वह साफ कहेगा योग्य अथवा अयोग्य की बहस में हम को नहीं पड़ना है, हमें तो इन दबे हुए लोगों के दबे हुए संस्कार को सुधारने के लिए ऊँची जगह बैठाना है। हो सकता है 100 को बैठायेंगे तो उनमें से 60-70 निकम्मे निकलेंगे लेकिन जो 30 अच्छे निकलेंगे वे सारे समाज में इतनी जबरदस्त हलचल पैदा करेंगे जैसे आटे में खमीर मिलाते हैं वैसे सारे समाज को पुनर्जीवित कर देंगे।

युवकों के साथ लोहिया की बातचीत यहीं खत्म होती है, जिसके बाद प्रश्नोत्तर हैं, जिनका आकलन मैं विस्तार भय से नहीं कर रहा हूँ, लेकिन इन्हें मूल्यवान जानकारियों के लिए पढ़ा जाना चाहिए। संवाद में कुछ भटकाव और अन्तरराष्ट्रीय हक़ीक़तें हैं, जो महत्त्वपूर्ण हैं, लेकिन मुझसे छूट गई हैं। लोहिया ने अपनी ये निराशायें और कर्त्तव्यों की बात बार-बार की है। इनको मिलाकर एक और दस्तावेज 'सप्त क्रांति' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। दरअसल 'निराशा के कर्त्तव्य' और 'सप्त क्रांति' दोनों को एक साथ पढ़कर ही राष्ट्र और विश्वव्यापी गैर-बराबरी का मिजाज और चरित्र समझा जा सकता है।

किस तरह की वैचारिकी?

लोहिया के इस युव-जन संवाद को आधी सदी, पचास साल हो गये हैं और वे युवा जब बूढ़े हो चले होंगे तब बीस साल या एक-दो साल आगे-पीछे के रहे होंगे, लेकिन राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय दबाव की गति इतनी तेज और विस्मयकारी है कि हम न केवल पिछला बाजार ही भूल गये हैं, बल्कि वे वस्तुएँ भी भूल गये हैं जो खरीद कर लाते थे या 'लून तेल लकड़ी' जितने में लाते थे और वे आकांक्षायें, जिनसे हमने भविष्य बनाया था। अब केवल याद करने की कठिनाई के साथ बचे हैं, पुराने किस्से या उसूल या कि जीवन का संगीत। इस समय की बीते समय से तुलना करना जटिल, भयावह और अविश्वसनीय जैसा हो गया है।

यह ध्यान से देखने जैसी बात है कि लोहिया की निराशा और उसे तोड़ने के लिए कर्त्तव्य गैर-बराबरी, शोषण, पूँजीवादी-व्यवस्था, धर्म और संकीर्णता की तमाम अवधारणाओं से जूझने के सिलसिले में ही है। वे ऊल-जलूल वायवी, अमूर्त, कल्पना से रचे अध्यात्म या व्यक्ति हित की कामना के लिए नहीं है। ऐसे ही अन्तरराष्ट्रीय सम्बंधों को नये रूपाकार देने की बात है। गैर-बराबरी के आधार पर टुकड़ों-टुकड़ों में बँटी दुनिया में प्रगति और शांति, सहिष्णुता और सुख की बात सोचना एक भोला-सा सपना ही है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आज का सवाल क्या वही नहीं है? दुनिया, समाज, समय-व्यवस्था आदि के बदलाव का, रोटी और सम्मानपूर्ण ज़िंदगी की बहाली का? समाजवादी व्यवस्था पर बहस करने का, उसकी विफलताओं के कारण ढूँढने का, मानवीय निराशाओं को नये आशावाद से चमकाने का और विश्व-शान्ति के लिए गोरे देशों के वर्चस्ववादी इरादों के बरक्स रंगीन देशों की सामूहिक-मेधा और ज्ञान को प्रज्वलित करने का? अब शायद सवाल इस तरह का नहीं है। पचास साल पहले लोहिया समाजवाद को अनुत्पादक सामंती, पूँजीवादी व्यवस्था और संस्कृति के खिलाफ आक्रामक विचार मानते थे। वे ही नहीं देश के संविधान में भी समाजवाद के सिद्धांत को आदरास्पद स्थान हासिल है।

लेकिन विचार-जगत में समाजवाद एक कमजोर शब्द पड़ गया है और उसकी जगह वैश्वीकरण, नव-उदारवाद और निजीकरण जैसे चालक शब्दों ने ले ली है। समाज, समय, मनुष्य और प्रगति इन्हीं शब्दों के प्रसंग से व्याख्यायित होते हैं। ये शब्द और विचार गोरों की कार्यशाला में ढलते हैं और रंगीन देशों के विचारकों, विज्ञापन एजेन्सियों, स्कूलों, यूनिवर्सिटियों, बाजार-प्रबंधकों, गोरे देशों से दान बटोरने वाली स्वैच्छिक संस्थाओं को भेज दिये जाते हैं।

गोरे लोगों के बोरे में लोहियाजी ने कहा- ''एक बात शायद मैंने नहीं कही उसे जोड़ लेना कि जो गोरे लोग हैं असल में वे ही आज की दुनिया में फैसला करते हैं। हम जो कुछ सोचते हैं, उसका तो असर बहुत कम पड़ता है और अगर पड़ता है तो बहुत मामूली और बहुत देर बाद। गोरे के काम का असर बहुत जल्दी और जबरदस्त पड़ता है। यहाँ तक कि रंगीन दुनिया के दिमाग को भी गोरे ही बना रहे हैं। जब गोरे चिल्लाना शुरू करते हैं कि अणुबम को खत्म करो, एकतरफा नि:शस्त्रीकरण करो तो रंगीन दुनिया भी चिल्लाने लगती है।''

समाजवाद का यही दुखान्त है। गोरी दुनिया ने अपने हित में उसे अवमूल्यित कर दिया है। उन्हीं लोगों ने 'बाजार' को प्रतिष्ठित किया है और रंगीन दुनिया के मन और मौलिकता पर अधिकार कर लिया है।

लेकिन यह वास्तविक ज़िंदगी का भ्रमात्मक और अनुल्लेखनीय, निराशाजनक हिस्सा है। विश्व-आबादी के एक बड़े हिस्से में अन्याय, असहिष्णुता, गैर-बराबरी की लम्बी छायायें पसरी हैं और यही अवास्तविक और वास्तविक दुनिया के बीच निरंतर चलने वाली क्रूरतम तकरार है।

बहरहाल भारतीय समाजवाद या समाजवादी पार्टी का अच्छा-बुरा अंत हुआ हो न हुआ हो लेकिन निराशा का कुआ कुछ अधिक ऊँडा हुआ है। लोहिया वाले दिनों में अघाये हुए समाज और लोगों को सफलताओं के दागदार और अनैतिक होने का अपयश चहुँ ओर फैल जाने का डर था। सरकार अपने लालची कुकृत्यों के खुलासों से काँप जाती थी। संसद में जब लोहिया ने आमदनी के बीच अन्तर का आँकड़ा बताया था तब नेहरू

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सरकार विचलित हुई थी। अब कोई जानता तक नहीं है कि देश के प्रधानमंत्री और सामान्यजन के बीच गैर-बराबरी का आँकड़ा क्या है? थोड़े दिन पहले प्रभाष जोशी के किसी आलेख में गरीब और अमीर के बीच आमदनी का अन्तर 934 गुना पढ़ा था।

दरअसल यह सवाल किसी पार्टी से जुड़ा नहीं है कि अन्यायों और तरह-तरह की गैर-बराबरियों के विरुद्ध कौन संघर्ष करता है। यह पूरा मानवीय और नैतिक सवाल है। एक तरह से सार्वकालिक और सार्वभौमिक और इस तरह देखने पर यह घमंड टूटता है कि बदलाव या क्रान्ति सिर्फ अमुक-अमुक स्थान और अमुक-अमुक काल में हुए या हुई। लगभग सब देशों और सब समय अन्यायों और गैर-बराबरियों के खिलाफ संघर्ष हुए हैं। कभी जीतते हुए कभी हारते हुए।

निःसंदेह लोहिया के समय की दुनिया और भारत उसकी राजनीति, नेतृत्व, सामाजिक रचना-संस्कृति और अर्थ-नीति सब बदल गये हैं। पश्चिम के दबाव का निर्द्वंद्व प्रदर्शन करते हुए हम उनके जैसे हो जाने के उत्साह में हैं। हमारी भूषा, हमारी भाषा, हमारे भवन और हमारा भोजन अन्तरराष्ट्रीय प्रतिमानों की होड़ में लगे हैं। यह एक खुशनुमा आनंद नगर है, कुछ खुश-खुश मध्यवर्गीय, बेहद खुश सौ-पचास करोड़-अरबपति लेकिन कर्ज़ में डूबे आत्महत्या करते हजारों किसान हैं, अपने जल, जमीन, जंगल से खदेड़े गये लाचार लाखों लोग हैं, शहरों में खानाबदोशों जैसी ज़िंदगी गुजारते जवान लड़के-लड़कियाँ हैं, सैकड़ों की तादाद में कचरा बीनते, भीख माँगते बालक हैं, गैर-बराबरी से चौपट हुई निराश ज़िंदगियाँ हैं।

'निराशा के कर्त्तव्य' के इस वर्ग से लाचार भारत के लिए कुछ रोशनी और देशवासियों की बुद्धि और मौलिकता बचे- इस आशा के साथ।

30, अहिंसापुरी, उदयपुर (राज.)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यात्रा-वृत्तांत

स्टुटगार्ट एंगेल्स को नहीं जानता

● कर्मेन्दु शिशिर

हम हाइडेलबर्ग से स्टुटगार्ट के लिए स्टेशन आ गये। स्टेशन जैसी सार्वजनिक जगह भी इतनी साफ-सुथरी कि कोई भी भारतीय आश्चर्य से भर उठे। तभी अचानक एक नौजवान साइकिल चलाते हुए स्टेशन के अंदर आ गया। मैं अजीब पशोपेश में था, मुझे लगा अब यह लड़का गया, लेकिन उसने इतमीनान से साइकिल ट्रेन में चढ़ा दी। बाद में मुझे पूरी यूरोप यात्रा में ऐसे दृश्य कई बार दिखे। वहाँ वैसे भी स्कूटर, मोटरसाइकिल काफी कम दिखाई पड़ते हैं। किस्म-किस्म की कार, तरह-तरह के कामों के लिए भिन्न-भिन्न शक्लों वाली लारियां और बेशुमार साइकिलें। साइकिल हो या कुत्ता अथवा बेबी कैरी करने वाली गाड़ी लोग बेहिचक ट्राम, मेट्रो या ट्रेन में लिये-दिये चढ़ जाते हैं। पेरिस यात्रा में तो डिब्बों में साइकिलें लगाने के इंतजाम में भी थे। यह जर्मनी में हम लोगों की पहली रेल यात्रा थी-बेहद मोहक। ट्रेन हो या टैक्सी-जब आप किसी दूसरे शहर की, या कहिये किसी भी अपरिचित इलाके की यात्रा कर रहे होते हैं तो अंदर से एक तरह की उत्सुकता और रोमांच से आप भरे होते हैं। साथ ही आप उस इलाके के भीतरी संसार को बहुत कौतूहल से निहारते हैं। यह जर्मनी की अंदरूनी धरती थी। पता नहीं क्यों यह बात बार-बार मेरे दिमाग में उठ रही थी कि द्वितीय विश्व युद्ध में क्या इधर से सेनाएँ गुजरी होंगी! तब यह धरती कैसी रही होगी? इसके भीतर कितने गहरे जख्मों के निशान होंगे?

ट्रेन के डिब्बों की बनावट शानदार थी। आप चाहे तो तीन-चार सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपरी हिस्से में बैठ सकते हैं। बैठने वाली सीटें भी आरामदायक थीं। बिलकुल ही भीड़-भाड़ नहीं। आराम से पाँव पसारिये और खिड़की के बाहर का आनंद लीजिए। खिड़की की सीटों के लिए हमारे यहाँ की तरह आपाधापी की जरूरत नहीं। बीच-बीच में आते स्टेशनों पर यदा-कदा ही सवारियाँ चढ़ती-उतरती थीं। हमने उदय प्रकाश की दी गई सुरती होठों के नीचे दाब रखी थी। जाहिर था पीक फेंकने के लिए हमें बाथरूम जाना ही था। हम नीचे उतर कर गये। कमाल का बाथरूम था। मुझे याद आया, हमारे यहाँ तो इतनी भीड़ हो जाती है कि कभी-कभी लोग गंदगी के बावजूद बाथरूम में खड़े-खड़े

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पूरी यात्रा कर लेते हैं। न्यूनतम प्रसाधन के सारे इंतजाम थे। डिब्बे में जो भी थोड़े-से यात्री थे, उनकी मुझमें कोई खास दिलचस्पी नहीं थी, जैसा अमूमन उनके यहाँ होता है। बाहर जर्मनी की धरती। कोई फसल तो न दिखी, मगर सुदूर कारखाने और उनसे उठता धुआँ जो लगातार वायुमंडल में फैलकर प्रदूषण फैला रहा था। मुझे यह देखकर आश्चर्य होता होता था कि कारखानों के बावजूद वहाँ न गंदगी दिख रही थी, न कोई दुर्गंध और न ही भीड़-भाड़। यहाँ अजब अनुशासित नागरिक हैं आखिर यूँ ही यूरोप का सबसे विकसित देश तो नहीं बना है न! आज यात्रा का तीसरा दिन था और मौसम साफ। हम तीनों धुआँधार बातें कर रहे थे, बहस कर रहे थे और एक-दूसरे को भद्रता से सुन भी रहे थे। अमूमन यूरोपीय कम बातें करते हैं। एक ओर जर्मनी के वायुमंडल में हिन्दी ध्वनियों का यह लगातार प्रसार तो दूसरी ओर बेहद खूबसूरत दृश्यावलियाँ। मन अद्‌भुत रोमांच से भरा हुआ था। कभी-कभी यकीन ही नहीं होता था कि हम सचमुच यूरोप रेल के सफर में थे, लेकिन यह वाकई सच था।

स्टुटगार्ट पहुँचते-पहुँचते रात हो गई। हमने स्टेशन से ही ट्राम लिया, पैदल चले। बस पकड़ी और दिव्यराज जी के घर के पास उतर गये। रात जैसे-जैसे चढ़ रही थी, ठंड और थकान भी बढ़ती जा रही थी। हम अटैची लुढ़काते हुए थोड़ी चढ़ाई की ओर जा रहे थे। वैसे भी यूरोप में कहीं मैंने कुली नहीं देखे। अपना सामान पास की ट्रालियों में डालें और बाहर निकलें। अगर टैक्सी से जाना है तो टैक्सी वाला आपका सामान जरूर डिक्की में रख देगा। रात कुछ ज्यादा ही हो गई थी। दिव्यराज जी का मकान शायद तीसरे तल्ले पर था। मुझे सीढ़ियों पर अटैची चढ़ाने में दिक्कत हो रही थी, बाँह में दर्द उपट जाने से मैं पीड़ा में था। दिव्यराज जी ने मुझसे अटैची ले ली। आखिर उनके भीतर भारतीय मन और संस्कार तो थे ही। हमें बड़ी राहत मिली। उनकी पत्नी एलिस हम लोगों की प्रतीक्षा में जगी थीं, बच्चे सो गये थे। वे तुरंत खाने के इंतजाम में लग गईं। हम लोगों को जिस कमरे में रहना था, उसमें हमने सामान रखे। कपड़े बदले और हाथ-मुँह धोकर तरोताजा हो गये। एक तरह का संकोच जरूर मन में था। सुदूर परदेश में दो मेहमानों का इतनी रात धमकना अंततः परेशानी में तो डालता ही है, लेकिन एलिस भले ही जर्मन महिला हों, उनमें आतिथ्यवत्सलता एक आम भारतीय स्त्री की तरह ही थी। न कोई भनभनाहट, न खीझ, न ही माथे पर कोई शिकन। खाना तो यूरोपीय था, जिसमें मैगी मुख्य था और उसमें डालने के लिए ढेर सारे सामान। उन्होंने तरह-तरह की पत्तियों, सब्जियों का जो सलाद बनाया, उसमें इतनी सारी चीजें डालीं, मिलाईं और टेस्ट कर आश्वस्त होने के बाद ही टेबुल पर रखीं और स्वयं भी बैठ गईं। उनके पिता के पास अपना बगीचा था। अंगूर, अखरोट और तरह-तरह की बेरियाँ और उससे बनने वाला अपना वाइन प्लांट भी था। सो, अपने बेटी-दामाद के लिए पूरा कार्टून ही भेज दिया था। उन्होंने दिव्यराज जी से वाइन की बोतल भी मंगवा ली। रेड वाइन को देखते ही मैं चहक उठा। थकान चाहे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जितनी हो, खाना चाहे जैसा हो, कोई चिंता नहीं। मामला कोई होटल का भी नहीं था, सो हम प्रेम से जीमे और जमकर वाइन ली। अगर आप वाइन लें तो कोई भी खाना जायकेदार हो जाता है। एक बात हमने और गौर की। कम से कम जर्मनी में दूध, दही और फलों की भरपूर उपलब्धता है। तभी दिव्यराज जी चावल का एक पैकेट लेकर आये, उस पर लिखा था- पटना राइस! पल भर को मैं रोमांचित हो उठा। मैं उसी जनपद से आता हूँ, जिसे बिहार में 'धान का कटोरा' कहा जाता है, पुराने शाहाबाद का अंचल बक्सर, आरा, सासाराम वाला इलाका। उन्होंने बताया-ब्रिटिश काल से ही चावल का निर्यात, वहीं से होता था, आज भले ऐसा न हो, मगर यह ब्रांड आज भी जिंदा है। कितनी विचित्र बात है। बिहार के भाग्यविधाताओं को यह बात क्यों नहीं सूझती कि गाँवों के उत्पादन-निर्यात की ऐसी संभावनाएँ आज भी पुनर्जीवित की जा सकती हैं। असल बात जज्बे और नीयत की है, वरना विकास की तो नित नई राहें फूटती ही रहती हैं।

सुबह हम जल्दी उठ गये थे। वैसे भी देर रात जगने के कारण नींद मर जाती है और खासकर कई जगहों पर तो मैं बिल्कुल ही नहीं सो पाता। हमारे विभास जी का कहना ही क्या? स्वभाव में व्यक्तित्व का ऐसा संतुलन कि ईर्ष्या हुई। आज भी मौसम शानदार था। ठंड तो खैर रहनी ही रहनी थी, जो कमरों में तो बिलकुल महसूस ही नहीं होती। घर के कमरे हों या बाहर दुकानों, दफ्तरों में, हर जगह बिजली से कमरे गर्म रखने की व्यवस्था होती है। मगर बालकनी में तो पर्याप्त ठंड थी। हम तीसरे तल्ले से बाहर देख रहे थे। यूरोप का भवन शिल्प, जितना मैं देख पाया एक ही तरह का था। मकानों को बर्फ से बचने के लिए ऊपरी छत ढलान वाली होती है और जहाँ भी, जितनी भी ऐतिहासिक इमारतें दिखीं, विशाल, भव्य और कुछ-कुछ दिल्ली की ब्रिटिश काल में बनी विभिन्न मंत्रालयों की इमारतों जैसी। बालकनी से सामने जो झाड़ियाँ दिख रही थीं, दरअसल वे सड़कों के किनारे थीं। वह ऊँची दिखती सड़क जैसा दिव्यराज जी ने बताया स्विट्जरलैंड जाती है, ज्यूरिख। महज सौ किलो मीटर दूरी पर विश्व की खूबसूरत जगहों में एक। मात्र पटना से बक्सर की दूरी। मैं रोमांचित हो उठा, लेकिन हम वहाँ नहीं जा सकते थे। पलभर में सारा रोमांच बुझ गया। फ्रांस की सीमा तो स्टुटगार्ट के बिल्कुल पास थी। थोड़ा लेकर भी पाँव-पैदल निकल जाता। अंदर से मन कसमसा कर रह गया। हम बालकनी से भीतर आ गये। बहुत सारे अफसोस से बचने का एक ही रास्ता है, आप उसे जानें ही नहीं।

अंदर दिव्यराज जी के तीनों बच्चे मिलने का इंतजार कर रहे थे। हम जर्मन में उनसे बात नहीं कर सकते थे। हम उनके अभिवादन पर मुस्करा सकते थे, माथा या गाल थपथपा सकते थे। उनके केश काले जरूर थे, मगर तीनों रंग से भूरे जर्मन थे। ये भारतीय रक्त से मिले आधुनिक यूरोप के तीन पुष्प थे। हम जो उपहार लाये थे, सभी को खूब पसंद आये। खास तौर से प्रभाष जी का लाया वह शॉल, एलिस को बहुत पसंद आया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कृतज्ञता प्रकट करने की भद्रता तो कोई यूरोपियनों से सीखे। नाश्ते की व्यवस्था शानदार थी। दूध, दही और फल! कार्नफ्लैक्स में मिलाने के लिए बादाम, चिरौंजी और न जाने किन-किन चीजों को कूटकर बनाया डिब्बाबंद पदार्थ था। इसमें कौन-कौन से मिनरल, कितनी-कितनी कैलरीज हैं- ये बातें दिव्यराज जी बताते रहे और हम चुपचाप सुनते रहे। एक ठेठ देशज की तरह इतनी-सी बात तय थी कि नाश्ता बेहद पौष्टिक था और उसमें स्वाद भी था। दही और फल मेरे गले के लिए संकट हैं, इसलिए इस मौसम में यूरोप यात्रा के बीच मैं कोई रिस्क ले नहीं सकता था। बेशक यूरोप में शराब जरूर पी जाती होगी, मगर बीयर और वाइन ही वहाँ आम चलन में है। अंगूर, अखरोट, बादाम और तरह-तरह की बेरियों के वाइन, जिसमें अल्कोहल की मात्रा काफी कम होती है। यह आम पेय वाकई ठंड से बचने के लिए ही नहीं, स्वास्थ्य के लिए भी बेहद लाभदायक होता है। बिना इसके आप यूरोप में नहीं रह सकते। दिव्यराज जी के पास पुस्तकों का विपुल भंडार था। कई मैंने उन्हें दी थीं, कई मेरे मार्फत खरीदी गई थीं। अचानक मेरी निगाह जर्मन-हिन्दी शब्दकोश पर अटक गई। इस मोटी और महत्त्वपूर्ण पुस्तक को कृष्णमोहन शर्मा जी ने तैयार किया था। दिव्यराज ने बताया, यह डिक्शनरी बहुत ही स्तरीय और शानदार है। शर्मा जी ने पूरा जीवन लगाकर इसे तैयार किया है। ये बिहार के ही रहने वाले हैं और बहुत पहले यहीं आकर रह गये। अभी उनकी उम्र 85-86 की होगी, जीवित तो हैं, मगर मिलते-जुलते नहीं हैं। हमारी हिन्दी में इस शब्दकोश की कोई जानकारी ही नहीं।

हम विदा होकर यूथ हॉस्टल के लिए निकले। एलिस को हमारी अगले दिन की प्राग-यात्रा की जानकारी हुई। उन्होंने हमें वहाँ थोड़ी सतर्कता बरतने को कहा और कुछ जरूरी हिदायतें भी दीं। उचक्के, चंकियों से अगर हम सावधान नहीं रहे तो वे नशे के आदी होते हैं, कुछ भी संकट पैदा कर सकते हैं। मैं पैसे और पासपोर्ट को जहाँ रखता था, वहाँ तो आसानी से हाथ नहीं लगा सकता। दिव्यराज जी ने आश्वस्त किया, आपको पूरे यूरोप में पुलिस की शानदार व्यवस्था मिलेगी। वे भारतीय पुलिस की तरह न तो वारदात के बाद पहुँचने के अभ्यस्त हैं, न ही उनमें इनकी तरह काहिली, लापरवाही और ढीलापन होता है। वे मदद को तत्पर रहने वाले चुस्त लोग हैं और आखिरी हद तक तहकीकात कर आपके लिए बेहद मददगार साबित होते हैं। हमलोग बाहर निकलकर सड़क के पास आ गये। थोड़ी-सी चढ़ाई के साथ उस जगह पर प्रतीक्षा करने लगे, जहाँ बस आती है। बगल में ही एक मैगी उत्पादन केन्द्र था। वहाँ से एक खास किस्म की गंध निकल रही थी। मैगी यहाँ के मुख्य भोजन में शामिल था। हमने बस से उतर कर सड़क पार किया। पैदल वालों के लिए सड़क पार करना यहाँ हर जगह आसान है, क्योंकि उन्हें कार वाले प्राथमिकता देते हैं। मेट्रो से उतर कर हम थोड़ी देर तक रास्ता गड़बड़ाये भी। फिर दिव्यराज जी ने पता किया। पास ही चढ़ाई पर चलते हुए हम यूथ हॉस्टल पहुँचे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आम तौर पह यहां यूथ हॉस्टल शहर के बीचोबीच होते हैं और ठहरने की इससे ज्यादा अच्छी और सस्ती कोई दूसरी व्यवस्था आपको नहीं मिल सकती। इस यूथ हॉस्टल की व्यवस्था लाजवाब थी। नीचे से लगभग छह तल्ले की व्यवस्था में आप ऊपर से लिफ्ट द्वारा नीचे तीसरी या चौथी मंजिल पर उसके काउंटर के पास पहुँच सकते हैं। ऊपर से आप आधे से ज्यादा स्टुर्टगार्ड शहर का विहंगम दृश्य देख सकते हैं और नीचे सड़कों की हलचलें। रिसेप्शन के पास गलियारे में सारे देश के झंडे लगे थे। विभास जी ने ध्यान दिलाया तो हमने सहज उत्सुकता से अपने देश के झंडे की तलाश की। सच पूछिये जब आप विदेश में होते हैं, तब अपने देश और उसके राष्ट्रीय सम्मान के प्रति कुछ ज्यादा ही संवेदनशील हो जाते हैं, वरना अपने देश में तो हम राजनीतिक व्यवस्था से जुड़ी असंख्य शिकायतों से बुरी तरह बौखलाये रहते हैं।

यूथ हॉस्टल का कमरा छोटा लेकिन सुंदर था। कुर्सी-टेबुल भी थी और आलमीरा भी। बाथरूम काफी अच्छा था, बस सोने की व्यवस्था दो टीयर वाली सेकेंड एसी की तरह थी, लेकिन भारतीय ट्रेनों की तुलना में ज्यादा आरामदायक, किराया तकरीबन 5000 रुपये, जो यहाँ के लिहाज से काफी कम था। सामान वगैरह रखकर हमें तुरंत तैयार होकर निकलना भी था। दिव्यराज जी ने हेगेल संग्रहालय में किसी को बुलाया था, जो हमें विस्तार से उसे घुमाने वाले थे। उक्त सज्जन की हेगेल के प्रति ऐसी दीवानगी थी कि उन्होंने पूरा जीवन उन्हीं के नाम समर्पित कर दिया था। दिव्यराज जी को उन्होंने बार-बार कहा था कि वे ही आपके भारतीय मित्रों को संग्रहालय दिखायेंगे। ट्राम से उतरकर हम शहर के अंदरूनी इलाके में पैदल चले। बिना पैदल चले आप किसी शहर को महसूस ही नहीं कर सकते। उक्त सज्जन भी थोड़ी देर में पहुँच गये और उनसे हमारा परिचय हुआ। हम सीढ़ियाँ चढ़ते हुए हेगेल के संग्रहालय में दाखिल हुए। यह बात तो माननी होगी कि यूरोपियनों में अपने दार्शनिकों, वैज्ञानिकों, लेखकों और कलाकारों को सम्मान देने की जो तमीज है, उसका शतांश भी हमारे लोगों में नहीं है। हमारे समाज में तो अब खुद को ही सम्मानित करने का चलन हो गया है और पैसा, पावर नहीं तो आप किसी सम्मान के हकदार हैं ही नहीं। कई कमरों, लंबे गलियारों में जगह-जगह करीने से शीशे के बॉक्स बने हुए थे। उनके भीतर हेगेल की तस्वीरें, उनसे जुड़ी पारिवारिक तस्वीरें, उनके समकालीन दार्शनिक मित्र, प्रेमिका-पत्नी के साथ तस्वीरें, पत्र-डायरी, नोट्स और पुस्तकों के पहले संस्करण, जरूरी जानकारियों और तिथि के साथ संरक्षित थे। मुझे लगा ज्यादा बेहतर तो यही होता कि हम बिना उक्त सज्जन के ही आध-एक घंटे में पूरा संग्रहालय देखकर निकल जाते और शहर घूमते, मगर उक्त सज्जन ने पूरा हेगेल दर्शन, उसके महत्त्व और अवदान पर ही बेहद उबाऊ और पीड़ादायक व्याख्यान दे डाला। उनमें न तो आधुनिक बोध था, न ही सूत भर भी वे आलोचनात्मक थे। एकदम भारतीय तुलसी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
भक्तों की तरह श्रद्धावादी थे। मेरे लिए उनको झेलना असह्य हो गया और मैं अनुमति लेकर एक जगह कुर्सी खींचकर बैठा और सो गया।

लगभग दो घंटे तक वीर-बांकुरे की तरह झेलने के बाद जब विभास जी और दिव्यराज जी आये, तब तक मैं एक नींद ले चुका था। हम लोग जब नीचे उतरे तो इस प्रकरण का असल पक्ष सामने आया। उक्त सज्जन ने दिव्यराज जी से कहा कि वे अपने मित्रों से लगभग 2200 रुपये दिलवायें। यह थी असल में उक्त सज्जन की संग्रहालय दिखलाने की आतुरता। यह तो गनीमत थी, हमें संग्रहालय देखने के लिए पैसे नहीं देने पड़े, वरना पूरे यूरोप में ऐसे ढेरों खर्चों की पूरी व्यवस्था होती है। तकाजा सज्जनता का था- मैंने विभास जी को बुझे मन से इशारा किया और हमें पैसे देने पड़े। मैं अंदर से बहुत खीझ उठा था। यह बात आखिर पहले मालूम होनी चाहिए थी। मैंने उक्त सज्जन से पूछा कि फ्रेडरिक एंगेल्स का जन्म भी स्टुटगार्ट में ही हुआ था, क्या उनका संग्रहालय अथवा उनकी कोई समाधि वगैरह यहाँ है? अथवा उनकी जन्म-स्थली ही देखने वालों के लिए संरक्षित की गई है? उक्त सज्जन ने ऐसी अनभिज्ञता जतायी, गोया वे एंगेल्स का नाम पहली बार सुन रहे। पूरी जर्मनी में वामपंथी विचारकों और दार्शनिकों को लेकर उदासीनता का लगभग एक जैसा ही रवैया था- चाहे वह विश्वविद्यालय ही क्यों न हो! पूँजीवाद मार्क्सवाद को ज्ञान की विपरीत धारा मानता है और इससे पूरी तरह अनजान बने और बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील रहता है। मैं अब उक्त सज्जन से मुक्ति चाहता था, लेकिन वे दिव्यराज जी से जर्मन में कुछ बातें कर रहे थे। वे कह रहे थे कि अपने मित्रों से इस सेवा के लिए उन्हें धन्यवाद दिलवायें। हम कृतज्ञता प्रकट करें। जी तो किया कि कहूँ, कम से कम दस यूरो तो लौटा दें? लेकिन हमने कृतज्ञता प्रकट की, धन्यवाद दिया और वे हाथ मिलाकर विदा हुए। यह जबरन कृतज्ञता लेने वाली एक अनोखी जर्मन भद्रता थी।

हम वहाँ से निकलकर स्टुटगार्ट शहर की सबसे रौनक भरी जगह पर आ गये। यह चहल-पहल वाली एक तरह से किसी भारतीय शहर के गुलजार चौक जैसा था, मानो यही शहर की हृदय स्थली हो। इसका वैभव, विकास शानदार ढंग का था। तभी चलते-चलते अचानक दिव्यराज जी रुके और नीचे पीली-सी एक स्मृति-चिह्न की पहचान करायी। मसलन यहाँ हिटलर के समय में किसी यहूदी की हत्या की गई थी। उसके नस्लवादी नरसंहार की शर्म को जर्मन दिल की गहराइयों से महसूस करते हैं, और वे कभी भी, किसी भी रूप में उसके नामोल्लेख तक से बचने की भरसक कोशिश करते हैं। अपने उसी अपराधबोध के कारण वे उन यहूदियों की स्मृति में ऐसे चिह्न लगाकर उन्हें अपनी विनम्र श्रद्धांजलि देते हैं, ऐसे चिह्न जर्मनी के अधिकतर शहरों में आपको जगह-जगह मिल सकते हैं। वैसे जर्मनी का विकास इस कदर चकित कर देने वाला है कि आपको लगेगा ही नहीं कि सात-आठ दशकों पूर्व यह देश ध्वस्त हो चुका था, खण्डहर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बन चुका था। यहाँ सामूहिक जनसंहार और ध्वंस के पग-पग पर निशान रहे होंगे। कम से कम फ्रांस और चेक तो कहीं से जर्मनी के विकास के सामने नहीं टिकते। यहाँ विकास लगभग एक चमत्कार की तरह दंग कर देने वाला लगता है। उनकी बुद्धिमत्ता, कर्मठता, लगनशीलता और काम करने की ईमानदारी के आपको आश्चर्यजनक साक्ष्य दिखेंगे। जानकार कहते हैं अमेरिका को छोड़कर शायद ही विश्व का कोई देश जर्मनी के विकास की बराबरी कर सके। यहाँ तक कि छोटे शहरों में भी महँगी-महँगी चीजों की भव्य दुकानें हैं, आखिर बिना खरीददार के ये कैसे बनी रह सकतीं थीं? आप जर्मनों की संपन्नता, उपभोग क्षमता और क्रयशक्ति के बारे में सहजता से अनुमान भी नहीं कर सकते। वैसे भी स्टुटगार्ट तो राज्य-राजधानी शहर था, मगर तुइविंगन, नुरेमबर्ग या हाइडेलबर्ग का बाजार भी आपको चकित कर देगा। जर्मनी विश्व पूँजी में कितना दखल रखता है, यह तो मैं नहीं जानता, मगर भारत की भूमिका मात्र दशमलव शून्य छह (0.6) आंकी गई है। आप चाहें तो इससे नेताओं की नालायकी का थोड़ा-बहुत अंदाज कर सकते हैं।

शायद फोन पर बात हुई हो, जैसा कि दिव्यराज जी ने बताया- सत्येन अपनी पत्नी और बच्चे के साथ निकले हैं। उन्हें कुछ मार्केटिंग करनी है। हमलोग वहीं एक जगह उनकी प्रतीक्षा करने लगे। यह बहुत भीड़-भाड़ वाली जगह थी। यहाँ खूब चहल-पहल थी। थोड़ी देर में सत्येन मिल गये। परिचय में पता चला सत्येन की पत्नी के भाई विभास जी के अंतरंग मित्रों में हैं। वे देर तक बात करते रहे। परदेश में भारतीय और वह भी नजदीकी निकले तो आप खुशी का अंदाज नहीं कर सकते। हमलोग बहुत जल्द ही घुल-मिल गये, बल्कि सत्येन ने भारतीय खाना खाने के लिए घर चलने की दावत तक दे डालली। प्रस्ताव था तो इच्छित लेकिन यह कहीं से उचित नहीं था। हम लोगों ने एक साथ मना कर दिया। वे पिछले दस सालों से कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग के काम में जमे हैं। अब तक उनका काफी काम मजे में चल रहा था, लेकिन इधर कम्प्यूटर में जब से चीनी कंपनियों ने यूरोप में पाँव पसारे हैं, परेशानी बढ़ गई है। उनके सस्ते प्रस्तावों ने जर्मनी में ऐसे काम करने वालों के सामने भारी संकट पैदा कर दिया है। अगर यही हाल रहा तो आने वाले दिनों में यहाँ टिकना भी मुश्किल हो जायेगा और ऐसे तमाम लोगों को स्वदेश लौटने के सिवा दूसरा कोई चारा ही नहीं बचेगा। पूँजीवादी विकास में विस्थापन और फिर विस्थापन की यह एक सहज-स्वाभाविक प्रक्रिया है।

अचानक सायरन की तेज आवाज ने हम सबको चौंका दिया। देखते-देखते जर्मन पुलिस की मोटरसाइकिलें गश्त करने लगीं और सड़क खाली हो गई। हम भागकर एक किनारे आये और उत्सुकता से देखने लगे कि आखिर माजरा क्या है? पुलिस गश्त तेज होती जा रही थी और उनकी चुस्ती बस देखने ही वाली थी। दिव्यराज जी ने बताया कि यहाँ की पुलिस की मुस्तैदी की आप कल्पना भी नहीं कर सकते। वारदात हुई नहीं कि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हाजिर। यहाँ तहकीकात भी अंदर तक होती है और आप कोई भी हों, क्या मजाल जो कहीं से कोई हस्तक्षेप हो। यहाँ की कानूनी प्रक्रिया बेहद खर्चीली और थका देने वाली होती है। एक बार आप चक्कर में पड़े तो फिर दुबारा कोई गलती करने का नाम नहीं लेंगे। आप बस उन्हें स्मरण करें, वे पलक झपकते पहुँचते हैं और तुरंत मदद करते हैं। आप उन पर भरोसा कर सकते हैं। वे कायदे-कानून को लेकर बेहद सख्त होते हैं। रिश्वत की बात तो आप सोच भी नहीं सकते। जाहिर है जर्मन ऐसे ही अपराध मुक्त समाज थोड़े ही बना है, अगर कुछ है भी तो एकदम न्यूनतम! वहाँ अपराध कम, विवशता ज्यादा होती है।

हमलोग हंगामे को लेकर बहुत उत्सुक थे। तभी एकाएक ढोल, ड्रम और पिस्टन की तेज आवाज ने हमें बुरी तरह चौंका दिया। देखा पुलिस की मोटरसाइकिलें उसी ओर पीछे लग गई हैं। हमलोग भी सुरक्षित जगह बनाकर चलने लगे। जैसा मैंने बताया यह शानदार जगह थी। दोनों ओर बेहद उन्नत दुकानें थीं। बीच में झाईंदार काली ईंटों से बनी खूब चौड़ी सड़क, जिस पर गाड़ियाँ नहीं चलती। बीच में कुछ रेस्तरां हैं, कुछ फुटकर सामान बेचने वाले फुटकल दुकानदार। कुछ ने लाजवाब हैट पहन रखे थे, तो कुछ ने चेहरे रंग लिये थे। कुछ के ड्रेस ही फैंसी किस्म के थे। मुश्किल से 30-40 छात्रों की, नौजवान युवक-युवतियों की टोली थी। वे नारे लगाते, गीत गाते, बाजा बजाते डिमोस्ट्रेशन कर रहे थे। उनकी माँग थी कि सरकार जो उनकी शिक्षाकाल बी.ए. में दो-तीन वर्ष बढ़ा रही है, वह ऐसा न करे। सरकार बढ़ती बेरोजगारी से परेशान थी। वह चाहती थी, इससे तात्कालिक राहत मिल जायेगी, लेकिन जर्मन युवक अधीर थे, उन्हें जल्द नौकरी चाहिए थी। तमाम विकास और प्रगति के साथ आखिर पूँजीवादी सरकार की यही नियति थी। उसके संकट भिन्न जरूर होते हैं, मगर गहरे होते हैं। हमने इस दौरान ताबड़तोड़ काफी तस्वीरें खींच ली थीं।

दरअसल जर्मनी जैसे पूँजीवादी देशों की अपनी मुश्किलें हैं। हम एक भारतीय की तरह जब इन देशों में जाते हैं तो हमेशा अपने अभावों के बरक्स उनके वैभव को देखकर चमत्कृत हो जाते हैं। तब हमें अपने देश की हालत बेहद मायूस करती है और ऐसा होना स्वाभाविक भी है। हमारी राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्था पूरी तरह सड़ चुकी है और उसमें सुधार की अब कोई संभावना नहीं है, लेकिन भारतीय जनता ने अपनी कुछ ऐसी रिवायतें बनायी हैं और वे जैसे-तैसे आज तक बची हुई भी हैं, जिससे हमारे समाज में संवेदना, मनुष्यता, भाईचारा, अपनापा-कहिये एक मानवीय सामाजिकता आज भी बनी हुई है। यह वह चीज है जो किसी भारतीय को यूरोप की तुलना में भारत में ही बसने को हमेशा आकर्षित करती रहेगी, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि जर्मन या यूरोपीय जनता या उनकी व्यवस्था की खूबियों को हम एक विवेकहीन देशभक्ति के जोश में नजरअंदाज कर दें। जर्मनी में या कहिये पूरे यूरोप में नौकर रखने की या स्टेशनों पर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कुली की व्यवस्था नहीं है। वहाँ न्यूनतम मजदूरी लगभग 550-600 रुपये प्रति घंटा है। जाहिर है उनका जीवन स्तर बहुत ऊँचा है। यूरोप यात्रा में जिस बात ने हमें ज्यादा परेशान किया, वह था एक बार लघुशंका करने के लगभग 73 रुपये देने पड़ते थे। यह हमारे जैसे भारतीय के लिए बेहद अखरने वाली बात थी। मैं तो एक-दो अपवादों को छोड़कर हमेशा इस नाजुक स्थिति को बर्दाश्त करता, मगर हमारे विभास जी की कभी पूर्व में रही बीमारी से बड़ी परेशानी थी। बार-बार 73 रुपये देने पड़ते। दिव्यराज जी ने बताया, ऐसी व्यवस्थाएँ जानबूझ कर की गई हैं, जिससे गैर जर्मनों का प्रवेश सीमित हो सके। यहाँ जीने के लिए कम से कम न्यनूतम जरूरत दस हजार प्रति व्यक्ति के आसपास पड़ जाती है। आपको पूरे देश में रात गुजारने की कोई शरणस्थली नहीं मिलेगी। रात के बारह बजते-बजते पुलिस गश्त तेज हो जाती है, स्टेशन, पब, दुकानों के शटर या शहर के किसी कोने में जहाँ कोई मिला पुलिस पकड़कर उसे जगह पर पहुँचा देगी। वैसे भी जर्मनी या किसी यूरोपीय देश में कोई खुले में रात गुजार भी तो नहीं सकता। ठंड से ही उसकी मौत हो सकती है। प्रभात ने भी यह बात कही थी कि जर्मन सरकार कुछ मामले में बिल्कुल संकीर्ण और संवेदनहीन है। अब यहाँ का वर्किंग क्लास तुर्की है। उन्होंने जर्मनी के इस निर्माण में पीढ़ियों से मदद की है, मगर उनको वे सुविधाएँ हासिल नहीं हो सकतीं, जिसका एक जर्मन जन्मजात हकदार हो जाता है।

जिस जर्मनी को बुलंदियों तक पहुँचाने में तुर्कियों की पीढ़ियाँ लगी रहीं, जिन तुर्कियों को फ्रांस और जर्मनी ने कभी बेरहमी से लूटा, वे ही जर्मनी में आज कामगार हैं। वे दोयम दर्जे के नागरिक जीवन को अभिशप्त हैं। यह कौन-सी आधुनिकता हुई? दरअसल यूरोपीय भद्रता की अंदरूनी तस्वीरों को आप इस रास्ते से भी पहचान सकते हैं। बेरोजगारी भत्ता, ओल्ड एज होम जैसी सुविधाएँ पर्याप्त हैं, लेकिन वे जगहें एक तरह की कैद हैं। एक जीवित मनुष्य बिना जीवित समाज के नहीं रह सकता। एक आत्मीय समाज का अभाव संभवत: समाज का सबसे बड़ा संकट है। पहली नजर में आपको लग सकता है आखिर एक देश अपने नागरिकों को जो सुविधाएँ दे रहा है, वह दूसरे देश के लोगों को क्यों दे! काम किया, मेहनताना लिया, अब वह जाये, मगर आप भारत में बांग्लादेशी घुसपैठियों पर विचार करें। जब एक घर संपन्न रहेगा तो उसके पड़ोसी लंबे समय तक भूखे रहकर यह सब सहन नहीं कर सकते। वे जरूर एक टुकड़े के लिए माँग करेंगे, जोर डालेंगे और नौबत आयी तो छीन भी लेंगे। जाहिर है आज एक देश अप्रत्याशित रूप से विकसित हो जाय और पड़ोसी देश अत्यंत पिछड़ा ही रहे तो ऐसी घटनाएँ होंगी ही होंगी। जरूरत इस बात की है कि अब क्षेत्रीय और सार्वभौम स्तर पर विकास की नीतियाँ बनें और उनका कार्यान्वयन हो, वरना ऐसी अराजकताएँ बनी रहेंगी। जर्मनी जिस तेजी से विकसित हुआ और लगातार विकसित होता जा रहा है, उसमें आगे गैर जर्मनों के प्रवेश

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की समस्या बढ़ेगी। शायद इसी कारण अभी से वह थोड़ी-थोड़ी सख्ती बरतता जा रहा है, लेकिन आने वाले दिनों में उसका इस समस्या से साबका पड़ना ही है।

हम बहुत आगे बढ़ गये थे। सत्येन ने कहा उन्हें कुछ सामान लेना है और वे वापस लौटेंगे। यह बात तय हुई कि वे शाम को फिर मिलेंगे, क्योंकि हमलोग सारा समय इधर ही गुजारने वाले थे। हम लोग थोड़ी दूर और आगे बढ़े तो देखा रास्ते के ठीक बीचोबीच युवक-युवतियों की टोली ड्रम, ढोल बजा रहे थे, एक युवती गा रही थी। कुछ-कुछ हमारे यहाँ के नुक्कड़ नाटकों वाला दृश्य था। हमने उनकी तस्वीरें भी लीं। वीकेंड की भीड़ में अपनी कलाओं के प्रदर्शन की यह अनोखी तरकीब थी। यहाँ अक्सर ऐसा होता है। दरअसल इस रास्ते पर गाड़ियाँ तो आती नहीं, लेकिन साइकिलें, बड़े-बड़े कुत्ते या बेबी कैरी गाड़ियाँ आपको जरूर मिल जायेंगी। लोग पैदल चलते हैं और पूरी मस्ती की धमक आप अंदर तक महसूस कर सकते हैं। अचानक मेरे शरीर को छूता हुआ कोई गुजर गया। मैंने चौंक कर बगल में देखा, तो मेरे रोंगटे खड़े हो गये। एक विशाल जर्मन कुत्ता, जो लगभग चीते के बराबर था। मेरी तो सांस एकाएक तेज हो गई, धड़कन बढ़ गई और बदन थरथराने लगा। उसका सींकड़ उसी की तरह मस्त एक युवती के हाथों में था, उसने सिर झुकाया, शायद कुछ कहा, मुस्कुरायी और फिर आगे बढ़ गई। थोड़ी देर में मैं भी स्थिर हो गया था। विभास जी दिव्यराज जी कुछ आगे बढ़ गये थे। मैं भी तेजी से बढ़ा तो आगे एक शानदार जगह आ गई यह यहाँ के पुराने राजा का महल था। बगल में राज्य की विधानसभा थी। न कोई पहरा, न विशाल फाटक न ही कोई बंदिशें। जाहिर था यहाँ की इमारतें प्राचीन थीं और उनकी भव्यता गौरवशाली अतीत का स्मरण करा रही थी। अचानक ख्याल आया क्या यहाँ एंगेल्स कभी आये होंगे? सामने काफी खाली जगह थी और चारों ओर ऊँचे-ऊँचे महल। उसके चौड़े बरामदे और नीचे उतरने की सीढ़ियाँ। इधर कई रेस्तरां भी थे। सीढ़ियों के पार दो विशाल खंभों के बीच कॉरीडोर में सजी मेज वाली कुर्सी पर हम बैठ गये। भूख तेज थी, और हम खाने की जुगाड़ में थे। आज दिन शनिवार था, वीकेंड का पहला दिन। आप कल्पना नहीं कर सकते यूरोप में वीकेंड किस तरह एक जश्न की तरह होता है। लगता था पूरा शहर बाहर निकल गया हो और हम स्टुटगार्ट की सबसे गुलजार जगह पर थे। उसके सामने जर्मनों की खूब मस्ती चल रही थी। यह दूर तक खाली जगह में वही झाँई वाली काली ईंटें। ऊबड़-खाबड़ लेकिन शानदार। लगता था जर्मन मस्ती में पागल हो रहे थे। सारा शोर एक आत्मीय कलरव की तरह लग रहा था। जिधर भी नजर जाती, खूबसूरत जर्मन युवक-युवतियों की भीड़ ने हमें मुग्ध कर दिया था। सिद्धांत में हम गोरे रंगों की खूब आलोचना करते हैं, मगर जर्मन की ये मस्त खिलखिलाती युवतियाँ सच कहूँ मुझे बहुत अच्छी लग रही थीं। चारो ओर मस्ती और वैभव का खुला प्रदर्शन था।

दिव्यराज जी ने इस बार खाने का जो ऑर्डर किया था, उसमें कोई उत्तपम जैसी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चीज थी, जो खाने में वाकई लजीज़ थी। जो जर्मन महिला वेटर की भूमिका में थी, उसने जब रेड वाइन का ग्लास रखा तो मैंने उसकी नीली आँखों में एक भद्र मुस्कान देखी। मैंने भी मुस्करा कर अभिवादन में गरदन झुका दी। मेरे जैसा ठेठ देहाती भी यूरोप में तहजीब बरत ले रहा था, यह कोई मामूली बात नहीं थी। मानना पड़ेगा, यह शानदार वाइन थी, पहली ड्रिंक के साथ ही हम कौतूहल और अद्‌भुत आनंद से भर उठे। आप शैम्पेन और कोन्याक जैसे परिचित नामों की परवाह न करें तो यूरोप में हजारों किस्मों की वाइन हैं, सबका अपना स्वाद अपनी मस्ती। यह अपने तरह की अद्‌भुत वाइन थी। हमने दुबारा-तिबारा ली। मैंने जीवन में बहुत भुगता है, लेकिन यह एक ऐसी शाम थी, जिसके लिए हमें फिर दुबारा जीवन मिले तो हम हू-ब-हू इसी जीवन की माँग करेंगे। हम वाकई आनंद से भरे हुए थे। दिव्यराज जी का तो नहीं पता, लेकिन विभास जी भी छककर इन पलों को जी रहे थे। उनकी मस्ती आँखों से बाहर छलक रही थी हल्के सरुर में उनकी मुस्कान वाकई बड़ी आत्मीय लग रही थी। मेरा मन किया, मैं एकाएक उठ खड़ा हो जाऊँ और अपनी मस्ती का इजहार करूँ। कुछ बोलूँ लेकिन सवाल भाषा का ही नहीं, भद्रता का भी था। इतनी मस्ती के बावजूद इतनी भीड़ में कहीं से कोई अप्रियता या अराजकता नहीं दिख रही थी। आपको जर्मनों की सामाजिक भद्रता का लोहा मानना ही होगा। सूत भर ही न हुड़दंग, न अश्लीलता।

एक बात तय थी कि दिव्यराज जी, विभास जी और हमने उस शाम बहुत देर तक बहुत सारी बातें कीं। हमारी बहसें लगातार चल रही थीं और हमने एक बार और वाइन का ऑर्डर दे दिया था। यूरोप की मौजूदा बौद्धिक दुनिया में जो विमर्श चल रहे थे और यहाँ के अकादमिक जगत में जो कुछ हो रहा है- उन सबकी बातें। वे विचार जो भारत को लेकर उठते हैं। मुझे लगा वे भारतीय बुद्धिजीवी जो पश्चिम के पराश्रित नहीं हैं, उनकी मेधा और विचारों का स्तर मामूली नहीं है। मेरी यह आशंका और पुख्ता हो रही थी कि पश्चिम की उन्नत बौद्धिक दुनिया में भारत पर दिमागी रूप से प्रभुत्व कायम रखने का उपक्रम लगातार चल रहा है और भारतीय भाषाओं तक उतरने की कोशिशें अकारण नहीं हैं। इस काम में जो भारतीय बुद्धिजीवी पश्चिमी प्रभाव में भारतीय बौद्धिक अस्मिता की भर्त्सना में लगे हुए हैं, वे हमारे यहाँ भी बहुत प्रभावशाली हैं। विभिन्न प्रौद्योगिकी, विज्ञान, मेडिकल जैसे क्षेत्रों में तो उनका कोई मुकाबला ही नहीं है, लेकिन मानविकी विषयों में भी उनके यहाँ जिस पैमाने पर विश्व के चुने हुए शोधार्थी काम कर रहे हैं और वे जितनी बड़ी राशि खर्च कर रहे हैं- उसके पीछे कोई ठोस आशय जरूर होगा। सिर्फ ज्ञान के लिए ज्ञान तो भारतीयों की आदत है, पश्चिम के हर शोध, हर अध्ययन और हर काम के पीछे कुछ सुचिंतित योजनाएँ होती हैं, इसमें तो संदेह नहीं। संभव है, ये बातें बाद में प्रकट हों। हमारी जो राजनीतिक व्यवस्था है, उसमें हमारा पिछड़ना हमारी नियति है और इसे बदलना दूर, हम इसे महसूस तक नहीं कर पाये हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बेशक इस जगमग युवा जर्मनों के बीच हमारी हिन्दी में चलने वाली इस दीर्घ बहस का स्तर उन्नत था। हम अपनी भाषा को कम से कम स्टुटगार्ट के वातावरण में पूरी तरह प्रसारित कर रहे थे, आखिर इससे ज्यादा हम कर ही क्या सकते थे? एक साथ जर्मन युवक-युवतियों को इस तरह आनंदित देखना एक विरल अनुभव था। लीलाधर मंडलोई को जर्मन युवतियों की तुलना में इटली की लड़कियाँ ज्यादा खूबसूरत लगती हैं। मैं इटली गया नहीं, इसलिए मेरे लिए जर्मन की सुंदरियाँ ही श्रेष्ठ थीं। उनका स्वास्थ्य-सौंदर्य वाकई मुग्ध करने वाला था। यह बात मुझे अंदर से उदास कर रही थी कि पता नहीं मैं जीवन में फिर इस शाम को दुहरा पाऊँगा या नहीं? एक उदासी भरी रोमान में भीतर पसरती जा रही थी और अंदर से पूरी तरह भीग उठा था। सच मानिये, सिर्फ दो बातें थीं जो अंदर से मुझे बुरी तरह मायूस कर रही थीं। एक तो यह कि मैंने अंग्रेजी क्यों नहीं सीखी और दूसरी हम पच्चीस-तीस वर्ष पहले यूरोप क्यों नहीं आये। स्टुटगार्ट की इस शाम को हम जीवन में कभी नहीं भूल सकते।

धीरे-धीरे शाम चढ़ रही थी और ठंड भी। सत्येन ने पत्नी और बच्चे को घर पहुँचा दिया और हम लोगों के साथ हो लिये। हम स्टुटगार्ट के पुराने इलाके की ओर जा रहे थे। हमें दिखाया गया- सामने मर्सिडीज की होल्डिंग! पहली गाड़ी यही बनी थी। ऑटो मोबाइल्स के मामले में जर्मन खुद पर अभिमान करते हैं और उनको ऐसा करने का पूरा हक है। मैं खुद को चाहे जितना भी आलोचनात्मक करता, सच यही था कि जर्मनी का जादू मुझ पर चल चुका था। जर्मनी की इस शाम का अनुभव मेरे भीतर किसी कोने में ईर्ष्या भर रहा था और मैं एक तरह की हीन भावना से ग्रस्त होने लगा था। यह बात हमें अंदर से गहरे आहत कर रही थी- क्या हम भारत को कभी ऐसा देख पायेंगे? क्या ऐसा हो सकता है कि हम देश के तमाम भ्रष्ट नेताओं, अधिकारियों, अपराधियों को एक ऐसे प्लेन में बिठाकर अंतरिक्ष में छोड़ दें, जिसमें कोई पायलट ही नहीं हो! हम जिस इलाके की ओर बढ़े वहाँ एक पार्क था- खाली मैदान! एक पुराना तालाब था और दूर एक प्राचीन चारदीवारी भी दिखी। यह स्टुटगार्ट की पुरानी बस्ती थी। मुझे अंदर से लगा यहाँ एंगेल्स जरूर आये होंगे।

सत्येन मेरे जर्मनी के अनुभवों से बिल्कुल सहमत नहीं थे और वे मेरे खुमार को उतार कर दम लेने की ठान चुके थे। पिछले दस सालों में उन्होंने जर्मनों की अंदरूनी मानसिकता को ठीक-ठाक पहचाना था और इस समाज की दयनीयता से वे पूरी तरह वाकिफ थे। दिव्यराज जी भी मेरे रोमान से सहमत नहीं थे। सत्येन ने कहा, यहाँ के जर्मनों को बस मौका मिलना चाहिए। जहाँ फँसे कि वे आपको कायदे से निचोड़ लेंगे। तभी दिव्यराज जी ने अपना अनुभव सुनाया। एक बार कार बैक करते हुए अचानक वे किसी दूसरे की कार से टकरा गये, जिसकी कोई बहुत क्षति भी नहीं हुई और न सारी गलती इन्हीं की थी। इसके बावजूद परेशान करने का हठ, उसने मुकदमा कर दिया। आज तक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उनको कार चलाने की अनुमति नहीं मिली और कोर्ट, वकील के चक्कर में हजारों गंवा चुके हैं और यह सिलसिला अभी और लंबा खिंचेगा। वे बता रहे थे सारी बातें कोर्ट में साफ हो चुकी थीं मामला मामूली जुर्माने से सलट जाने वाला था कि उसने कुछ नई दलीलें रख दीं। अब कोर्ट में एक दक्षता प्राप्त गवाह होगा, जो दोनों कारों की दूरी वगैरह की नाप, टक्कर के पहले कार को कितना घूमना चाहिए था और कितनी घूमी। फिर एक मनोवैज्ञानिक भी आयेगा, जो पता लगायेगा कि उस समय कार चलाने वाले की मंशा क्या थी? इस मामूली चूक में जिसमें वे पूरी तरह अकेले जिम्मेदार भी नहीं, इतनी तद्दुद, समय की बर्बादी और लाख से ऊपर की चपत! इसी तरह एक अनुभव सत्येन का भी था। वे एक फोन कंपनी के चक्कर में पड़े थे। हजारों के अनाप-शनाप बिल थे और वह वसूलने पर आमादा थी। सत्येन इतने आसान नहीं थे। अंदर से दृढ़ थे, सो लड़ने को तैयार हो गये। वे किसी कीमत पर पराजित होने को तैयार नहीं थे। मसलन यहाँ की नौकरशाही की भँवर चक्कर का जंजाल हमारे देश से किसी मायने में कम न था।

सत्येन ने जर्मन में बूढ़ों की त्रासदी के ऐसे किस्से सुनाये कि मैं अंदर से दहल गया। अगर वाकई सब कुछ ऊपर वाले के ही अख्तियार में होता है तो उसकी बहुत बड़ी रहमत, जो उसने मुझे यूरोप में पैदा नहीं किया। बेशक यहाँ ओल्ड एज होम हैं और वे बेहद सुविधा संपन्न भी हैं, लेकिन मनुष्य आखिर में मनुष्य ही है। वह अकेलेपन को झेल नहीं पाता। वहाँ वे बूढ़े ज्यादा सौभाग्यशाली हैं, जिनके पास दस या उससे ज्यादा ऐसे फोन नंबर होते हैं, जिनसे वे गाहे-बेगाहे बात कर सकते हैं। वे बूढ़े एकदम अभागे जिनके पास दो-तीन ही फोन नंबर हैं। वे उन नंबरों को बचाकर रखते हैं। कहीं बार-बार फोन करने वे चिढ़ कर आगे फोन ही न उठायें? यह भय उन्हें अंदर से कंपाये रखता है। सत्येन ने कहा आप यह बर्दाश्त कर पायेंगे कि आप एक शहर में हैं, पति-पत्नी किसी रेस्तरां में खा-पी रहे हैं कि आपका बेटा-बेटी परिवार भी आ गया। बेशक आप साथ-साथ खायेंगे, पीयेंगे, बातें करेंगे, मगर जब बेयरा अलग-अलग बिल लायेगा और आपकी पत्नी अपना बिल छुपाकर क्रेडिट कार्ड से पेमेंट करेगी कि पति कार्ड का नंबर न पढ़ ले। बेटे-बेटी के अलग बिल तो यहाँ सामन्य बातें हैं ही। सुनकर मैं सिहर उठा। शाम की मस्ती शिथिल पड़ने लगी और सारा सरुर धीमा पड़ गया। पल भर को मैंने खुद को किसी जर्मन बूढ़े में परकीयन किया और थरथरा गया। लगा मैं रो पड़ूँगा।

दिव्यराज जी कह रहे थे- यह खुलापन आप पश्चिमी जर्मनी में देख रहे हैं। एक तरह की संपन्नता, खुशहाली और उदारता। आप यहाँ की एक शाम में विभोर हैं। आप जर्मनों से ईर्ष्या करने की बात कर रहे हैं और बार-बार अपनी पराजित खीझ देश पर उतार रहे हैं, लेकिन पूर्वी जर्मनी के हालात बिल्कुल ऐसे नहीं हैं। वहाँ आप निशंक होकर घूम-फिर नहीं सकते। कहीं भी, कभी अकारण ही पीट दिये जाने की आशंका आपको परेशान कर देगी। वहाँ की ज़िंदगी न तो इतनी खुशहाल है, न ही ऐसी खूबसूरत। वहाँ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लोगों के भीतर काफी गुस्सा है। एक खास किस्म की क्रूरता उनमें भरी रहती है। सत्येन ने कहा आप टूरिस्ट की तरह आये हैं तो जरूर यहाँ की चमक-दमक और रंगीनियाँ आपको आकर्षित कर रही हैं, मगर आप यहाँ बस नहीं सकते। उन्होंने अपना एक अनुभव सुनाया कि वे चाहते तो एक बूढ़ी जर्मन महिला से उसका घर ले लेते, लेकिन उनकी कोई रुचि ही नहीं थी। वे यहाँ ज़िंदगी गुजार ही नहीं सकते। वे बूढ़ी महिला इनको इस कदर चाहती थी, बार-बार बुलाती। वे कभी-कभार जाते, उससे प्रेम से बोलते, व्यवहार करते, छोटा-मोटा काम भी कर देते थे, लेकिन उसके बढ़ते लगाव से वे घबड़ा गये और जाना बंद कर दिया। बाद में पता चला उसकी स्मृति खो गई और बहुत बुरी स्थिति में उसे सरकार ने ओल्ड एज होम में डाला। यहाँ शराब, बीयर और वाइन के निरंतर इस्तेमाल से अक्सर बुढ़ापे में स्मृति खो जाती है।

इधर बहुत झिलमिली रोशनी थी। शाम और चढ़ती रात के अंधेरे में लगा हम किसी बूढ़े जर्मन में तब्दील हो रहे हैं। हमने एक-दूसरे को काफी आजिजी सें देखा। कुछ देर तक हम सभी ज़िंदगी के इस कठिन यथार्थ को लेकर चुप और गमगीन थे। हमें कल प्राग जाना था। सत्येन ने नोकिया का एक चार्जर विभास जी को दे दिया था, इस ताकीद के साथ कि वे उसे वापस कर देंगे। हम सभी वापस लौट गये। सत्येन और दिव्यराज जी अपने-अपने घर गये और हम देर रात थकान और ठंड के साथ बोझिल मन यूथ हॉस्टल आ गये।

38/9, न्यू पुनाईचक (दुर्गा मिल गली)
शास्त्रीनगर, पटना-800023

श्रेष्ठ साहित्य के लिए प्रतिबद्ध

प्रकाशन जगत में नया नाम

विजय प्रकाशन

एफ/43, शताब्दी नगर, रामघाट रोड
अलीगढ़-202002 (उ.प्र.)
मो. : 09319009866

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तीन कविताएँ

● सवाईसिंह शेखावत

जरूरी चीजों के बारे में

कितना कुछ जानने के गुमान में
कितना कम जानते हैं हम
जीवन से जुड़ी जरूरी चीजों के बारे में

जैसे मुफ्त की हवा सेंत का पानी
चुकाया मोल तो याद आई नानी
पानी की हानि में फिर-फिर बूड़े दूबरे
बस खेले खाये ऊबरे

कल ऐसा ही कुछ हवा को लेकर हुआ
तो हम क्या करेंगे/जी लेंगे फिर भी जिस-तिस तिकड़म से
या केवल घुट मरेंगे?

शब्द के अवमूल्यन पर

कितना निष्करुण समय है
जरूरतन नहीं महज शौक के लिए
हम शामिल होते हैं शब्दों के पतन में/बिना किसी खेद के
भाषा की दुनिया में जगह बनाने के लिए
सोपान से शिखर तक जाने के लिए
सिद्धार्थ से बुद्ध का पद पाने के लिए
विकट साधना करनी पड़ती है शब्द को
बहुत कठिन और जोखिम भरी है यह यात्रा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक-एक कदम तौल कर रखना पड़ता है
कितने खंदक मुँह बाए खड़े हैं राह में
भाषा का नेक नागरिक बनने के लिए
हम किसी शब्द की रीढ़ न बन पाएँ/कोई हर्ज़ नहीं
लेकिन एक अच्छे खास शब्द को
गर्त में धकेलने का अधिकार हमें नहीं है

शब्दों की दुनिया में/कल फिर एक हादसा हुआ
जब चैनल वालों ने एक गुंडे को/बाहुबली कहकर पुकारा

मुझे सख़्त एतराज है/शब्द के अवमूल्यन पर।

जरूरी और अतिरिक्त

सारी की सारी पत्तियाँ जरूरी हैं
पेड़ के लिए/पेड़ में एक भी पत्ती अतिरिक्त नहीं है

एक पेड़ की पत्तियाँ पूर सकती हैं
सारे लोगों की सारी जरूरतों को
लेकिन जैसे ही जागती है/अतिरिक्त की भूख
तमाम पत्तियाँ नाकाफ़ी हो जाती हैं

पेड़ हाँफ रहा है बदहवास/दुष्पूर है आदमी की हवस
हम फर्क करें/जरूरी और अतिरिक्त में।

7/86, विद्याधर नगर, जयपुर-302023

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तीन कविताएँ

● केशव तिवारी

बिलख रही है एक औरत

नौतपा की निखट्ट दुपहरिया में
महुवे के ठूंठ से पीठ टिकाये
कारन कर-कर के
पति की मौत पर
बिलख रही है एक औरत

इस सन्नाटे को तोड़ती
एक स्त्री की चीख
एक खो चुकी आवाज को
पुकार रही है

आसरा तो बीमार का भी
काफी था
कामधाम से लौट
देख तो लेती थी आँख भर
पूछ लेती थी कैसे हो
शिवमूरत के बप्पा

झोला छाप डाक्टरों का/लम्बा कर्जा
घर में नहीं बचा एक दाना

किस्मत और पुरविल का पाप
समझाते लोगों के बीच
बिलख रही है, एक निरीह औरत।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मैं छूट नहीं पा सकता

ये जिस दिन जागेंगे
मुझ से भी हिसाब माँगेंगे
सिर्फ इन पर लिखकर मैं
कोई छूट नहीं पा सकता
मित्रों अगर कलम को सलीब से
अपनी-अपनी गर्दनों को बचाने का
औजार बना रहे हो
तो तुम तलवार को ढाल की तरह
इस्तेमाल करना चाहते हो
और याद रखो ढाल
कभी तलवार नहीं बन सकती।

कौनसा रूपक धरूँ मैं

इस पराजय से तो उबर लूँगा
पर जीत की उस चाह का मैं क्या करूँ

तन थका है मन थका है
हर कदम पर टूटती है साँस
पर जो मेरे चले ही कटेगी
उस राह का मैं क्या करूँ

ये मन ऐसा ही बना जो
हर दैन्य को दुत्कारता है
हर पल हृदय पर चोट करती/दर्द डूबी तुम्हारी आँख से
कैसे बचूँ मैं

इस इकहरे सत्य को
ओढ़ा-बिछाया उम्र भर
आज जब पर्दा उठा है
कौनसा रूपक धरूँ मैं।

द्वारा पांडेय जनरल स्टोर
कचहरी रोड, बांदा-210001 (उ.प्र.)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दो कविताएँ

• रंजना जायसवाल

अपने सवालों का जवाब

तीस की उम्र में ही
माँ करने लगी थी
अपने आप से बातें
क्यों करती थी, माँ
अपने आपसे बातें/पता चला
माँ के न रहने पर वर्षों बाद/जब,/खुद से
पाने के लिए अपने सवालों का जवाब
बुदबुदाई मैं
पहली बार।

जब तक माँ है

माँ के आते ही/लौट आता है मेरा बचपन
मेरे असमय सफेद होते बालों
और झुर्रियाते चेहरे को देख
वह चिन्तित हो जाती है
और गठिया का दर्द भूलकर
बनाने लगती है/शुद्ध घी में गोंद और मेवे के लड्डू
पिलाने लगती है जबरदस्ती
बादाम मिला मलाईदार दूध
झुंझलाती है बहू पर/जो नहीं रखती
उसके फूल से बेटे का ध्यान
जब खुश होती है
सुनाती है किस्से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जिसमें नन्हा राजकुमार/मैं ही होता हूँ
उस वक्त उसकी आँखों में
शैतानी से मुस्कुराता है/
मेरा बचपन/जब तक माँ है
नहीं मर सकता मेरा बचपन।

ई.डब्ल्यू.एस.-210, राप्तीनगर, चतुर्थ चरण
चरगाँवा, गोरखपुर-273409

दो कविताएँ

● सुरेन्द्र दीप

उत्सव-चक्र

यह जुलूस
जो आप देख रहे हैं/कोई प्रथम नहीं है
वह वहीं से शुरू हुआ है
जहाँ इसके पहले
इसका अंत हुआ था
और यह/वहीं जाकर अंत होगा
जहाँ से यह निकला था

सच मानिए/यह स्वयं भी
अपना अंत नहीं जानता

यह एक लय में चलता है
एक लय में गाता है
एक लय में उद्घोष करता है
यह आत्ममुग्ध है स्वयं पर
आत्मरति में मग्न
शक्ति प्रदर्शन में नग्न

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह एक उत्सव-चक्र है
जिसे आप/अपनी सुविधा के अनुसार
कहीं से शुरू कर सकते हैं।

दौड़ जीवन की

कुछ लोग दौड़ रहे हैं
बिना यह जाने कि/बहुत तेज दौड़ने से
ज़िंदगी भी हाँफने लगती है

जारी है दौड़ जीवन की
जारी है स्पर्धा/एक-दूसरे से/आगे निकल जाने की

कुछ के लिए नियम अहम हैं
तो कुछ के लिए/मात्र सफल होना/कुछ इन दोनों से परे हैं
ज़िंदगी में वे हरदम हरे हैं

कुछ बहुत तेजी से दौड़ रहे हैं
कुछ के दिमाग में/आकार ले रही हैं शातिर योजनाएँ
कुछ अब सुस्ता लेना चाहते हैं
'बहुत हो गया- दौड़ लिया/क्या जरूरी है
जीवन भर सब दौड़े ही?'

थके हुए/दर्शक बनने को उतावले हैं

जीवन की दौड़ फिर भी जारी है
आगे वाले पिछड़ते जा रहे हैं/और पिछड़ने वाले
अब आगे निकलने के क्रम में हैं
ध्यान से देखें/इस क्रम में
आप भी कहीं शामिल हैं।

89/293, बाँगुड़ पार्क
रिसड़ा, प.बं.-712248

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दो कविताएँ

● नरेन्द्र पुण्डरीक

दुर्धर्ष चेतना के कवि

अक्सर याद आती है तुम्हारी
दुर्धर्ष चेतना के कवि
जब तुम याद आते हो/इस शहर का अंधेरा
कुछ छँट-सा जाता है/लगता है देहहीन नदी की ओर
लोगों की आवाजाही बढ़ गई है

लगता है अब भी नवाब अलीबहादुर शानी के
किले की आखिरी बुर्ज से/डूबते सूरज की लालिमा को
कोई दे रहा है शब्द

काव्यपाठ में पढ़ी जा रही कवितायें
तुम्हारी अनुपस्थिति को खारिज करती हैं
तुम्हारे रचाव की गर्माहट हमें/उसी तरह महसूस हो रही है
हमारे आईने में हमारे चेहरे की बगल में
अक्सर तुम्हारा चेहरा दिखाई दे जाता है

हमसे दूर नहीं गये हो कवि
तुम्हारा चिंतन इस शहर को
दिलों तक उदासी से बचाये रखेगा/हममें जिंदा हैं तुम्हारे शब्द
जो तुम्हें इतिहास होने से बचाकर रखेंगे
सच है हमें नहीं लगता कि
तुम मर खप गये हो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

फाँक-फाँक हो गये इस शहर के
तमाम रिश्ते अब तुममें बहाल हो गये हैं।

छोटी जगह

इस छोटे से शहर में/एक छोटी-सी नदी बहती है
जो बड़ी नदी में मिलकर खो जाती है

ऐसे ही खो जाते हैं मेरे छोटे शहर के लोग
बड़े शहर में जाकर/बड़े शहर में खोते लोग
भूल जाते हैं अपने शहर का होना
इस छोटे से शहर में रहकर
छोटे से बड़ा हुआ एक कवि
बड़ा होने के लिए कभी नहीं गया
किसी बड़े शहर/जैसे कि छोटे शहर के लोग
अपने छोटेपन से डरकर/जाते हैं जुगाड़ लगाकर बड़े शहर
और रातों-रात हो जाते हैं बड़े
इतने बड़े कि वह/इस छोटे से शहर में कहीं अँट नहीं पाते हैं

उनके भारी-भरकम कद में
कहीं इतनी-सी जगह नहीं बचती कि
उसमें टिक जाय यह छोटा-सा शहर
और छोटे शहर के लोग/उन्हें नहीं मालूम कि
बड़ी-बड़ी जगहों से निकलने वाले रास्ते
छोटी जगहों में आकर गुम हो जाते हैं
और छोटी-छोटी जगहों से निकलने वाले रास्ते
बड़ी जगहों में जाकर उन्हें और बड़ा बना देते हैं।

डी.एम. कॉलोनी, सिविल लाइन
बाँदा (उ.प्र.) - 210001

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तीन कविताएँ

● गोपाल प्रभाकर

संवेदना

संवेदना
लोगों के दिलों में
ठहरती है/वैसे ही/जैसे अफसर लोग
यदा-कदा/ठहर जाते हैं
डाक बंगलों में!

रंग-बिरंगे हेलमेट

ये धर्म/ये मत-मतांतर
रंग-बिरंगे हेलमेट हैं/जिन्हें पहनने से
चेहरे छिप जाते हैं/और
असल की पहचान
मुश्किल हो जाती है।

कोई गुलाब

तुम/तुम्हारी स्मृति/तुम्हारी छवि
मेरे जीवन से जुड़े हैं
वैसे ही/जैसे
कोई जड़/कोई काँटा,
और कोई गुलाब।

अनुग्रह, डी-114 (बी), शिवाड़ एरिया
बापू नगर, जयपुर (राज.)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संवाद

बढ़िया संगीत की लम्बी उम्र होती है : सुमन चौरसिया

● लक्ष्मी शर्मा

फिल्मी एवं गैर फिल्मी संगीत के दुर्लभ ग्रामोफोन रिकॉड्र्स के संग्रहण-संरक्षण के लिए सुमन चौरसिया का योगदान अविस्मरणीय है। अपने इस शौक का उन्होंने समर्पण की सीमा तक निर्वाह किया है। इन्दौर के पास छोटे से कस्बे पिगडम्बर में उन्होंने 'लता दीनानाथ मंगेशकर रिकॉर्ड संग्रहालय' की स्थापना की, जहाँ कोई भी संगीतप्रेमी कभी भी जाकर संगीत रस का आनंद ले सकता है। कई महत्वपूर्ण पुरस्कारों से सम्मानित सुमन जी अपनी सहजता को अपनी शक्ति बनाए इस साधना में लीन हैं। पिछले दिनों 'अक्सर' की सम्पादक डॉ. लक्ष्मी शर्मा ने उनके निवास स्थान स्थित संग्रहालय में उनसे विस्तृत संवाद किया।

ल. श. : ***आपने यह दुर्लभ रिकॉड्र्स की जो लाइब्रेरी स्थापित की है, इसके पीछे आपका उद्देश्य क्या है?***

सु. चौ. : देखिए, पहला फिल्मी रिकॉर्ड 1932 में फिल्म 'माधवी' का बना, लेकिन इसके पहले भी रिकॉर्ड बने हैं। फिल्मों के अतिरिक्त जो शास्त्रीय गायक थे और रियासतों के संरक्षण में जो गायक-गायिका रहते थे या जो पेशेवर गायिका आदि थीं, उनके रिकॉर्ड इसके पहले बनते रहे हैं। ये दुर्भाग्य है कि उनका उस समय इतना महत्व नहीं आँका गया और उनमें से अधिकांश नष्ट हो गए। इसके अलावा आरम्भिक दौर में जो फिल्में बनी थीं, उनमें से भी कई के रिकॉर्ड खो गए, खराब हो गए या जल गए। यहाँ तक कि ग्रामोफोन कम्पनियों के पास भी ऐसे रिकॉर्ड्स उपलब्ध नहीं हैं। ईश्वर का आशीर्वाद है कि मुझे इस प्रकार के रिकॉर्ड संग्रह का आरम्भ से ही जुनून रहा है। मैंने जगह-जगह से, जैसे भी हुआ, इन्हें एकत्रित किया और उसके बाद ये शौक लक्ष्य में बदल गया। आज यहाँ हिन्दी के फिल्मी एवं गैर फिल्मी रिकॉर्ड के अतिरिक्त गुजराती, भोजपुरी, बांग्ला, मैथिली, मराठी, राजस्थानी आदि लोक भाषाओं के रिकॉर्ड्स का भी संग्रह है। इसके अतिरिक्त पाकिस्तान के कुछ फिल्मी व गैर फिल्मी गीतों व

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लोकगीतों का भी संग्रह है। इनका संग्रहण, संरक्षण व नई पीढ़ी को इनसे व इनमें भरे दुर्लभ गीतों से परिचित कराना ही मुख्य उद्देश्य है।

ल. श. : *आपके संग्रहालय में कितने रिकॉर्ड हैं तथा आपने इनकी सुरक्षा की क्या व्यवस्था की हुई है?*

सु. चौ. : आज यहाँ 2800 रिकॉड्र्स संग्रहीत हैं, जिनमें 95 हजार से भी अधिक गीत हैं (सुमन जी हमें 25 नवम्बर, 1902 का 'डू डू वॉल्ट्ज़' शीर्षक वाला रिकॉर्ड भी सुनाते हैं, जिसे कोलम्बिया फोनोग्राफ कम्पनी, यू.एस.ए. ने जारी किया था और जिस पर अंकित चेतावनी भी स्पष्ट दिखाई पड़ती है कि इसे एक डॉलर से कम में न बेचा जाए।) रही बात सुरक्षा की तो साधारण सामान्य सुरक्षा ही है, क्योंकि मेरा समस्त आर्थिक संसाधन तो इनके संग्रहण में ही लग जाता है। आर्थिक असुविधा बनी रहती है। लोग आते हैं, गीत सुनते हैं, सराहना करते हैं, किन्तु आर्थिक सहायता कम ही मिलती है। मैं किसी से माँगता भी नहीं, यदा-कदा मित्र या प्रशंसक आदि स्वेच्छा से सहायता कर देते हैं, उसी से रख-रखाव हो जाता है। लेकिन वह अपर्याप्त है, वातानुकूलन की व्यवस्था नहीं है, बस मेरा व्यक्तिगत समर्पण है, जो लगा देता हूँ।

ल. श. : *संगीत के क्षेत्र में जो नए-नए प्रयोग हो रहे हैं। तकनीकी विकास हो रहे हैं, इनके कारण आपको कभी एकत्र किए गए रिकॉड्र्स के अप्रासंगिक होने का भय होता है?*

सु. चौ. : बिल्कुल नहीं, भले हो जाए अप्रासंगिक। संगीत की यह विरासत, हमारी धरोहर बची रहे, यही मेरी हार्दिक इच्छा है। जब तक हम नई तकनीकों से जुड़कर पुराने संगीत को बचाएंगे नहीं तो ऐसे संगीत प्रेम का कोई अर्थ ही नहीं है। देखिए बैजू बावरा इतना अच्छा गाते थे, लेकिन आज उनकी आवाज कहाँ है? इसलिए मैं यह चाहता हूँ कि संगीत बचा रहे, नई तकनीक पर इसे संरक्षित किया जाए, इससे मुझे प्रसन्नता ही होगी।

ल. श. : *आपके बाद इस संग्रहालय की क्या स्थिति रहेगी, क्या आपने इस सवाल पर कभी विचार किया है?*

सु. चौ. : (अपनी नवविवाहिता, बीस वर्षीय पुत्रवधू कमला- जो द्वितीय वर्ष कम्प्यूटर की छात्रा है- को बुलाते हैं।) यह कमला मेरी विरासत को सँभाले, यही मेरा प्रयत्न रहेगा। इसे इस कार्य में रुचि भी है और यह तकनीक की जानकार भी है।

ल. श. : *आप तो संगीत के मर्मज्ञ हैं, इसलिए आपसे यह पूछना उचित रहेगा कि आज के फिल्म संगीत की स्थिति को आप किस प्रकार आँकते हैं?*

सु. चौ. : यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है, जो लोग अक्सर पूछते रहते हैं, लेकिन मैं कहता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हूँ, परिवर्तन होता रहता है। हर दस वर्ष के बाद संगीत का दौर बदल जाता है। आज फिल्मों की पृष्ठभूमि बदल गई है, फिल्में ओवरसीज प्रॉफिट की दृष्टि से बन रही हैं, जिनमें कव्वाली या धार्मिक गीत की गुंजाइश नहीं है, पर यह कोई खास बात नहीं है। यह दौर भी चला जाएगा। हर दौर में अच्छा-बुरा संगीत आता रहता है। इस पर इतना चिंतित होने की आवश्यकता भी नहीं है। मदनमोहन, रोशन या अनिल बिस्वास का संगीत अपनी जगह है और आज भी जीवित है, लेकिन पंचमदा (राहुलदेव बर्मन) का संगीत अपनी जगह है और ए.आर. रहमान का अपनी जगह। प्रतिभाएँ हर युग में जन्म लेती हैं, हम यह नहीं कह सकते कि बढ़िया संगीत आ ही नहीं रहा।

ल.श. : ***आज फिल्मी तथा आम संगीत बहुत तेज होता जा रहा है, उसमें शब्द व मानव-स्वर दोनों का महत्व कम होता जा रहा है। वर्तमान संगीत पर ऑर्केस्ट्रा पूरी तरह हावी है। आपको नहीं लगता कि इससे हमारे संगीत की परम्परा एवं शास्त्रीयता को नुकसान पहुँच रहा है।***

सु.चौ. : यह बात सच है कि आज संगीत बीट पर आधारित हो गया है। इसमें वैश्वीकरण का प्रभाव भी है, इसे रोक भी नहीं सकते, लेकिन इस स्थिति में भी अच्छा संगीत बन रहा है, इसलिए वह अपनी जगह है और यह अपनी जगह। इस तरह के गीत प्रचलित होते हैं और जल्द ही लुप्त भी हो जाते हैं। बढ़िया संगीत चाहे नया हो या पुराना, लम्बी उम्र रख सकता है।

ल.श. : ***आज नृत्य और संगीत को लेकर इतने सारे रियलिटी शो हो रहे हैं, ये सारे तमाशे नकल पर आधारित होते हैं, जहाँ मौलिक प्रतिभा दिखाने की गुंजाइश लगभग नहीं होती, न ही ये संगीत साधना को प्रोत्साहित करते हैं, इस विषय पर आपकी क्या प्रतिक्रिया है, क्या आपको लगता है कि इनसे संगीत को कोई लाभ मिल रहा है?***

सु.चौ. : यह सब प्रायोजित है, जनता को बेवकूफ बनाने का काम है। ये शोज आते-जाते रहते हैं, प्रतिभाओं को सिर्फ इनके सहारे नहीं खोजा जा सकता है, न ही इनके विजेता सदैव प्रतिभाशाली होते हैं। हाँ, कई बार उनके द्वारा अच्छी आवाजें प्राप्त भी हो जाती हैं, जैसे सुनिधि चौहान या श्रेया घोषाल। इस दृष्टि से देखें तो यह नहीं कह सकते कि इनसे संगीत को कतई लाभ नहीं मिल रहा।

ल.श. : ***क्या आपको नहीं लगता कि संगीत में मिक्सिंग का जो दौर आरम्भ हुआ है, उसने हमारे लोक संगीत को भी प्रदूषित किया है, इसे कैसे रोका जा सकता है?***

सु.चौ. : समय परिवर्तन और टैक्नोलॉजी के विकास के साथ ये सब होगा, इस को रोकना असंभव है। ये भी सच है कि इससे हमारे वाद्य-यंत्र बजाने वालों को

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नुकसान भी हुआ है, मशीनों ने बहुत से लोगों की रोटी छीनी है, लेकिन ये भी अकाट्य सत्य है कि तकनीकी यंत्रों से मिक्सिंग चाहे जितनी भी हो जाए, मानवीय कंठ की स्वाभाविकता, उसके अभ्यास से उपजी मिठास, उसकी सहज रचनात्मकता व नित्य नवीन संभावनाओं को मशीन कभी नहीं जीत सकती।

ल. श. : *आज शास्त्रीय संगीत के भी बड़े-बड़े कार्यक्रम होते हैं तथा गायन-वादन दोनों क्षेत्रों में संगीत साधक नए-नए रागों का उन्मेष कर रहे हैं। क्या हमारे लोकप्रिय संगीत को इससे लाभ नहीं उठाना चाहिए, यह लाभ किस प्रकार उठाया जा सकता है?*

सु.चौ. : देखिए, इसके लिए तो फिल्मकारों, संगीत प्रेमियों और सरकार, विशेषकर लोक-संस्कृति विभाग का उत्तरदायित्व बनता है कि हमारी पारम्परिक विरासती धुनें, जो खत्म होती जा रही हैं- का संरक्षण करें व नवीन का संग्रहण करें। साथ ही हमारा प्रचुर लोक-संगीत है, धुनें हैं जैसे- कजरी, बिरहा, चैती, फाग, विदाई, सोहर, आल्हा, लाचरी, माँड आदि का भी लाभ उठाया जाना चाहिए।

ल. श. : *आज हम देखते हैं कि नए गायक-गायिका धूमकेतु की तरह उगते हैं, कुछ समय तक संगीत क्षितिज पर चमकते हैं और लुप्त हो जाते हैं। इनमें रफी या लता मंगेशकर की तरह लम्बी और गुणवत्ता भरी यात्रा करने की क्षमता क्यों नहीं है? क्या संगीत संस्थानों को युवा गायकों की साधना की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए?*

सु. चौ. : रफी या लता के बाद उनके जैसा पैदा होना असंभव है। और दूसरी बात, नई पीढ़ी तकनीक के हवाई घोड़े पर सवार है। उसमें वह धैर्य, वह कष्ट साध्य, समय साध्य समर्पण नहीं है। वह बहुत जल्दी सब कुछ पा लेना चाहती है और प्राप्त सफलता की गरिमा को पचाने की शक्ति भी इस पीढ़ी में कम है। रही बात संगीत संस्थानों की तो वे अनुदान एवं स्कॉलरशिप के द्वारा अवश्य मदद कर सकते हैं, लेकिन माद्दा तो गायक या संगीतकार में ही होना चाहिये। वह न होने पर उनका अस्त होना निश्चित है। प्रतिभा न होने पर केवल शो जीतकर कोई रफी, लता नहीं बन सकता। 'बैजू बावरा' फिल्म के 'ओ दुनिया के रखवाले' गीत को गाते समय मोहम्मद रफी का कंठ जख्मी हो गया था, आज ऐसा समर्पण कहाँ है।

ल. श. : *आधुनिक संगीत में जहाँ शब्द की महत्ता कम हुई है, वहीं अश्लील कहे जाने वाले शब्दों का प्रचलन भी बढ़ा है। क्या यह स्थिति हमारे संगीत के लिए चिंता की बात नहीं है?*

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सु. चौ. : नहीं, यह कहना ही गलत है कि अश्लीलता अभी-अभी बढ़ी है। यह एक मानवीय प्रवृत्ति है, जीवन का अभिन्न अंग है, जो जीवन के हर क्षेत्र में सदैव रही है। संस्कृत साहित्य में कालिदास के यहाँ है, स्थापत्य में खजुराहो देख लें। लोक गीतों में ये सदैव से रही है और फिल्मों में भी। 1944 में प्रदर्शित 'मन की जीत' का गीत (सुमन जी रिकॉर्ड चला देते हैं, जिस पर जौहरा बाई द्वारा गाया 'मेरे जुबना का देखो उभार बाबू, पापी जुबना का देखो उभार...' गीत बज उठता है।) जिसे जोश मलीहाबादी ने लिखा है, से लेकर लेकर गुलजार द्वारा लिखित 'ओमकारा' के 'बीड़ी जलाइले...' तक में ये देखी जा सकती है। आम आदमी के आदिम भाव की संतुष्टि एवं बाजारीकरण का प्रभाव भी इसमें कारक होता रहा है।

ल. श. : ***अपने लता मंगेशकर और आशा भोंसले की प्रतिभा का उत्खनन अजातशत्रु से कराकर बहुत महत्वाकांक्षी ग्रंथ प्रकाशित किए हैं और तीसरा ग्रंथ प्रकाशित करने जा रहे हैं, पहले तो यह बताएँ कि आर्थिक दृष्टि से यह आयोजन कैसा रहा? साथ ही संगीत जगत में इन पर लोगों की कैसी प्रतिक्रियाएँ हुई हैं?***

सु. चौ. : आपके इस प्रश्न में तीन प्रश्न हैं- एक तो पुस्तक प्रकाशन, दूसरा आर्थिक प्रबंधन एवं तीसरा अजातशत्रु का योगदान। पहले प्रश्न की बात करें तो लता जी पर अब तक पाँच-छह पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं, लेकिन ये उनके निजी जीवन एवं व्यक्तित्व पर है कि उन्होंने ये कहा या वो किया, इसी तरह आशा जी पर भी है, लेकिन उनके या आशा जी की गायकी व उसके पक्षों पर कोई कार्य प्रकाशित नहीं हुआ है। हुए भी हैं तो वे अंग्रेजी में हैं, जैसे नसरीन मुन्नी कबीर ने लिखा है। यही वजह रही कि लता जी ने जब उम्र के 80वें वर्ष में प्रवेश किया तो हमने लता जी के 80 दुर्लभ गीत, जिसमें हर संगीतकार का एक है, को लेकर किताब निकाली थी 'बाबा तेरी सोनचिरैया'। दूसरी किताब हमने 'सदियों में एक आशा' निकाली जिसमें उनके गाए 77 गीत लिए। उस समय आशा जी ने विनोद में पूछा भी कि 'क्या मैंने मात्र 77 गीत ही गाए हैं?' तो मैंने जवाब दिया- 'दीदी आप 77वें वर्ष में प्रवेश कर रही हैं तो हम 77 गीत चुन रहे हैं, हम तो चाहते हैं कि आप 177 वर्ष जिएं।' तीसरी किताब 'लता और सफर के साथी' है, इसका 27 सितम्बर को लता जी के जन्मदिन की पूर्व संध्या पर इंदौर में लोकार्पण किया जाएगा। 'सफर के साथी' में हम लता जी के साथ काम कर चुके उन गायक संगीतकारों की रचनाओं को शामिल करेंगे, जिन्होंने बहुत अधिक कार्य नहीं किया, लेकिन जो किया उम्दा है। जैसे शंकर हैदर, एस.डी. बातिश, करण

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
दीवान, मलय चक्रवर्ती, त्रिलोक कपूर, सुधीर फड़के शमादर, श्यामल मित्र आदि। और प्रसन्नता की बात है कि इसके लिए राजस्थान सरकार द्वारा विज्ञापन के रूप में सहयोग मिला है। इसके लिए हम राजस्थान सरकार के जनसंपर्क निदेशक श्री अमरसिंह राठौड़ के आभारी हैं।

अब दूसरे प्रश्न यानी आर्थिक प्रबंध की बात तो मुझे इसके लिए मित्रों व संगीत प्रेमियों का अच्छा सहयोग मिला। मध्यप्रदेश सरकार ने भी दोनों पुस्तकों के लिए अनुदान राशि प्रदान की है और हमने पहली पुस्तक तो बिक्री के लिए रखी ही नहीं थी। दूसरी भी जो चाहे ले जा सकता है। धन की बाध्यता हमने नहीं रखी है।

अब बात तीसरे प्रश्न पर। इन पुस्तकों के लेखन में अजातशत्रु का अविस्मरणीय योगदान है। उन्होंने पुस्तक-लेखन मात्र नहीं किया अपितु पुस्तक-विक्रय में भी उनका सहयोग रहता है। वे मेरे मित्र और शुभचिंतक हैं, किंतु इससे भी ज्यादा संगीत के प्रति उनका जो जुनून है, वह उन्हें इस लेखन कार्य के लिए बाध्य कर देता है। इसके अतिरिक्त कई खर्च हैं, जैसे पुस्तकें खरीदना, कूरियर करना, लेखन सामग्री पर हुआ व्यय, आदि वे ही उठाते हैं। अब बात प्रतिक्रिया की, तो पहले लोगों को इस बारे में अधिक जानकारी नहीं थी, किंतु अब जानकारी हो रही है और लोगों की अच्छी प्रतिक्रियाएँ आ रही हैं। विशेषकर संगीत के क्षेत्र में इन दोनों महान गायिकाओं के योगदान पर केन्द्रित लेखन को लोगों ने काफी पसंद किया है। इनमें उनके व्यक्तिगत जीवन के विवाद, रुचि-अरुचि, साक्षात्कार, प्रश्नोत्तर आदि न होकर आदि न होकर विश्लेषणात्मक टिप्पणियाँ हैं, जिन्हें संगीत प्रेमियों ने सराहा है।

ल. श. : ***इन पुस्तकों के प्रकाशन के पीछे आपका मूल उद्देश्य क्या रहा?***

सु. चौ. : देखिए, कुछ गिने-चुने प्रचलित ही गीत बजते चलते रहते हैं, नई पीढ़ी भी उन्हीं से परिचित होती रहती है। अन्य गीतों से वो अपरिचित रह जाती है। ऐसे गीतों का परिचय देना, एक गायक की गायकी के सभी पक्षों को उजागर करना, जैसे तलत महमूद को आम तौर पर सिर्फ ग़ज़ल गायक ही मानते हैं, उनके भजन भी लोग सुने फिल्मों के लिए तैयार किए, किंतु फिल्म में न रखे गए गीतों की जानकारी देना, फिल्मी संगीत के तकनीकी पक्षों को सरलतम तरीके से बताना आदि ही हमारा मुख्य उद्देश्य रहता है।

ल. श. : ***ग्रंथ प्रकाशन के इस आयोजन को आप आगे कहाँ तक बढ़ाना चाहते हैं? क्या आप रफी या किशोर पर इसी तरह के ग्रंथ नहीं छापना चाहेंगे।***

सु. चौ. : हम शीघ्र ही चौथी किताब निकालने जा रहे हैं। 1913 में हिन्दी सिनेमा के 100 वर्ष पूरे हो रहे हैं और मैं चाहता हूँ कि फिल्मों के निर्माण, निर्देशन,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
संगीत, पटकथा आदि सभी पक्षों पर प्रकाश डाल सके इस तरह की पुस्तक मैं 'सफर के साथी' के पश्चात् निकालना चाहता हूँ। उसमें व सफर के साथी में उक्त गायकों की गायकी पक्ष पर भी प्रकाश डाला जाएगा।

ल. श. : *आपकी आगे की योजनाएँ क्या है?*

सु. चौ. : मैं चाहता हूँ कि एक तो इस संग्रहालय में जितने भी दुर्लभ गीत हैं, वो चाहे निजी एलबम के हों अथवा फिल्मों में अप्रदर्शित गीतों या अप्रदर्शित फिल्मों के हों, उन्हें उपलब्ध करा सकूँ। इनके साथ ही फिल्मों के दुर्लभ पोस्टर, चित्र व अन्य जानकारी भी एकत्र करूँ। दूसरी मेरी इच्छा है कि इस संग्रहालय का वातानुकूलन हो, इन गीतों का नई तकनीक से कम्प्यूटराइजेशन हो। इसका अधिक प्रचार-प्रसार हो। यहाँ आने वाले संगीत प्रेमियों खासकर वरिष्ठजनों के रहने-खाने की नि:शुल्क समुचित व्यवस्था हो सके यह भी मेरी इच्छा है। और सबसे अधिक जो मैं चाहता हूँ कि संगीत प्रेमियों की नई पौध तैयार कर सकूँ, जो इस विरासत को संभाल सके जैसे अम्बरनाथ, मुम्बई में हो रहा है।

ल. श. : *आप अपने संगीत समर्पण से कुछ ऐसा प्राप्त कर पाये कि जिसने आपने जीवन को सुखद एवं संतोषप्रद बनाया हो?*

सु. चौ. : जी हाँ, मैंने संगीत से बहुत कुछ पाया है। संगीत सुनकर मुझे आध्यात्मिक शांति मिलती है। मैं 60 का हो रहा हूँ, लेकिन कभी बीमार नहीं हुआ। मेरे साथ के लोग वृद्ध एवं हताश होने लगे हैं, लेकिन मैं स्वयं को बहुत ऊर्जावान पाता हूँ। जब कभी मन उदास होने लगता है, मैं अपनी पसंद का संगीत सुनता हूँ, जिससे मुझे अद्भुत मानसिक बल मिलता है, मेरे रोम-रोम में संजीवनी-सी प्रवाहित हो उठती है। संगीत प्रेम के कारण कई बार घर में आर्थिक असुविधा भी हुई, लेकिन वह मुझे कभी प्रभावित नहीं कर पाई। इस विषय में मेरी पत्नी और परिवार ने भी मुझे पूर्ण सहयोग दिया। भौतिक उपलब्धि मुझे संगीत से बढ़कर महसूस नहीं होती, मैं पूर्ण संतुष्ट हूँ।

ल. श. : *आप इतनी महान हस्तियों से मिले हैं। कोई एक घटना बताएँ, जिससे आपको लगा हो कि वह क्या चीज है, जो इन्हें महान बनाती है?*

सु. चौ. : मैं लता जी से जुड़ा एक वाकया बताता हूँ। मैंने एक दिन लता जी से कहा- 'दीदी आपने मीरा, तुलसी, सूर, कबीर आदि भक्त कवियों की रचनाएँ गाई हैं, किंतु रसखान को कभी नहीं चुना? ' लता जी को रसखान के विषय में पूर्व जानकारी नहीं थी। उन्होंने तुरंत रसखान का काव्य मँगवाया एवं उसे गहराई से पढ़ा। उनके इस समर्पण व नवीन को जानने-सीखने की जिज्ञासा ने मुझे बेहद प्रभावित किया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ल. श. : *अब कुछ निजी प्रश्न, कुछ वर्ष पूर्व एक पत्रिका ने फिल्म संगीत से जुड़े लोगों से प्रश्नों के आधार पर सर्वेक्षण किया था, जिसके निष्कर्ष के अनुसार 'मन रे तू काहे न धीर धरे' (गायक-मोहम्मद रफी, संगीतकार-रोशन, गीतकार साहिर लुधियानवी, फिल्म चित्रलेखा) को सर्वोच्च स्थान दिया गया। क्या आप इससे सहमत हैं?*

सु. चौ. : देखिए, यह निस्संदेह बेहद मधुर एवं गुणवत्ता की दृष्टि से बढ़िया गीत है, किंतु व्यक्तिगत रूप से मेरा मत इसके साथ नहीं है।

ल. श. : *फिर आपका सर्वाधिक प्रिय गीत कौन-सा है?*

सु. चौ. : मुझे फिल्म 'ज़िंदगी और हम' का (लता जी की आवाज में गाया) 'धीरे से गगरी उतार रे, मेरा धुलता जाए सिंगार रे' गीत बेहद पसंद है।

ल. श. : *और आपके प्रिय संगीतकार?*

सु. चौ. : असंदिग्ध रूप से रोशन हमारी फिल्म संगीत परम्परा के सर्वश्रेष्ठ संगीतकार हैं।

ल. श. : *आपके प्रिय गायक?*

सु. चौ. : मोहम्मद रफी जैसी आवाज आना दुर्लभ है।

ल. श. : *और आपकी प्रिय लता जी का कौन-सा गीत आपको प्रिय है?*

सु. चौ. : (हँसते हुए) फिल्म 'संगम' का गाया गीत 'मैं क्या करूँ राम मुझे बुड्ढा मिल गया' को छोड़कर मुझे उनके सभी गीत प्रिय हैं। ये गीत तो स्वयं लता जी ने बेहद अनिच्छा से राजकपूर के अनुरोध पर गाया था। उन्हें भी यह विशेष प्रिय नहीं है।

ल. श. : *कोई ऐसा रिकॉर्ड जो आप वर्षों से खोज रहे हों, किंतु अब तक नहीं मिल पाया है?*

सु. चौ. : जी, मास्टर विनायक ने एक फिल्म बनाई थी- 'मंजिल'। इसमें लता जी ने गायन के साथ अभिनय भी किया था, इस फिल्म में उन्होंने एक लोरी गाई थी। वह लोरी रिकॉर्ड हुई यह तो लता जी भी मानती हैं, लेकिन वह अब कहाँ है किसी को जानकारी नहीं है। इस विषय में व्ही. शांताराम जी तक को जानकारी नहीं थी, जिन्होंने मास्टर विनायक की मृत्यु के बाद इस फिल्म को पूरा किया था। मैं बड़ी शिद्दत से उसे खोज रहा हूँ, शायद किसी दिन मिल भी जाएगी। मैं आपकी पत्रिका द्वारा भी सारे देश के संगीत प्रेमियों से अनुराध करता हूँ कि किसी के पास यह एलबम हो तो कृपया मुझे जानकारी दें।

सुमन चौरसिया
ग्राम-पिगडम्बर, तहसील-राउ, जिला-इन्दौर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मातृसत्ता और भारतीय स्त्री-विमर्श

• विनोद शाही

स्त्री सत्ता, बहुत विभ्रम में डालने वाला शब्द है। सही शब्द है- मातृसत्ता, परंतु उत्तर-आधुनिक स्त्री-विमर्श में धीरे-धीरे इन दोनों के बीच का फर्क मिटता जाता है। दरअसल जो बात समझने की है, वह यह कि मातृसत्ता मानव-सभ्यता के विकास के इतिहास का एक अध्याय या चरण है। जबकि स्त्री सत्ता का सवाल, मर्दवाद की प्रतिक्रिया में, आधुनिक दौर में वर्चस्वी होने की कोशिश करने वाले मध्यवर्ग की जरूरतों व अंतर्विरोधों से पैदा होता है। यानी यह एक सत्तामूलक व बाजारवादी सवाल है। आधुनिक होते समाजों में शिक्षित होती मध्यवर्ग की महिलाओं के द्वारा स्त्री-सत्ता या स्त्री-सशक्तीकरण के सवाल उठाये जाने लगे हैं, ताकि उनकी सत्ता के गलियारों में तथा बाजार के तंत्र में मौजूदगी की मिकदार बढ़ सके। यों इस सत्तावादी व बाजारवादी स्त्री-सशक्तीकरण का असर, सामाजिक रिश्तों तथा सांस्कृतिक धरातल पर पुरुष-वर्चस्वी परिदृश्य को भी बदलने की कोशिश में है, परन्तु वहाँ अभी तक मुख्यत: यौन संबंधों के तल पर आयी तब्दीलियों या आजादी की जरूरतों से पैदा हुई अनुगूँजों की लहरें ही ज्यादा उठ रही हैं और बात समूचे स्त्री-व्यक्तित्व, उसके मूल्यविधान व चेतन वाली ऊँचाइयों या गहराइयों की ज्यादा खबर नहीं देती। इससे मध्यवर्गीय परिवारों की बुनियाद बनी विवाह-संस्था खुद को नये हालात के मुताबिक ढालने के तनाव से जुड़ रही हैं और सांस्कृतिक मूल्यविधान स्त्री-विमर्श के 'बोल्ड' अंदाज की वजह से कुछ चुनौती भी महसूस करता है। परंतु अभी मर्दवादी संस्कृति के विकल्प के रूप में किसी नयी उच्चतर या अधिक मानवीय स्त्री-संस्कृति का कोई विश्वसनीय नक्शा सामने आता नजर नहीं आ रहा।

दरअसल मध्यवर्गीय परिवारों में भी अभी तक रिश्तों का केन्द्र 'स्त्री' या पुरुष नहीं, 'माता' या 'पिता' की भूमिका वाले स्त्री-पुरुष हैं। वह सब एक विराट सभ्यतामूलक अंतर्विकास व इतिहास की उपज है और जबकि 'माता' या 'पिता' की भूमिका को हाशिये पर धकेलकर 'स्त्री' या 'पुरुष' के केंद्र में आ जाने के हालत सुबूत, ये नये आधुनिक या उत्तरआधुनिक परिवार भी पूरी तरह नहीं दे रहे हैं। इससे लगता यह है कि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
स्त्री-सत्ता का सवाल अभी इतिहास की सतह भर में डुबकी लगाने की हद तक उथला है। भारत में तो हालात और भी ज्यादा मातृ-पितृ सत्तामूलक हैं, क्योंकि स्त्री-पुरुष के पति-पत्नी होने पर जैसे ही संतान की परवरिश का सवाल उठता है तो अमेरीका या यूरोप की तरह हमारे यहाँ राज्य की संस्था की दखल व योगदान न के बराबर रहता है। बच्चे भी बड़े होकर शादी कराने तक और फिर पैतृक संपत्ति में अपनी हिस्सेदारी पाने तक, 'माता' या 'पिता' की सत्तामूलक मौजूदगी से हर वक्त घिरे रहते हैं। ऐसे में भारत जैसे देश में स्त्री-सत्ता की बात, गिनी-चुनी शिक्षित मध्यवर्गीय स्त्रियों के 'स्वच्छंद-गान' जैसी मालूम पड़ती है और अगर उसे कुछ सामाजिक स्वीकृति मिलती है तो वह स्त्री-सत्ता के मातृत्व-मूलक पहलू की वजह से ही मिल पाती है। यहाँ तक कि स्त्रियों के यौन-उत्पीड़न के विरोध में लड़ी जा रही, मानवाधिकार की या कानून की लड़ाइयाँ भी गहरे में 'कुँआरी माँ' वाले उन हालात की चुनौती से बावस्ता रखती हैं, जो स्त्री को उसके परंपरागत मातृ-सत्तामूलक अधिकार व गरिमा से गिरा देते हैं। दूसरी ओर, बाजार में स्त्री-देह से जुड़े अनेक व्यवसाय, एक तरह के नये ग्लैमर व फैशन से ताल्लुक रखने वाले अर्थ-तंत्र में अपनी जगह भले ही बना रहे हैं, परंतु सामाजिक और सांस्कृतिक तल पर स्त्री-देह भी उसके मातृ-दैहिक रूप में ही सम्मान और मूल्यवत्ता को प्राप्त करने लायक हो पाती हैं, जिससे बाजार का अर्थतंत्र समाज-सांस्कृतिक नुक्ते निगाह से हाशिये पर पड़ा रह जाता है।

जहाँ तक इतिहास में मातृ-सत्ता के चरण की मौजूदगी के पुख्ता सबूतों का सवाल है तो उसे ज्ञात इतिहास के तथ्यों के लेखे-जोखे से सुलझाना मुमकिन नहीं, क्योंकि मानवजाति का सारा ज्ञात इतिहास पितृसत्ता के दौर का है और पितृसत्ता के दौर से जुड़े आरंभिक समयों का लेखा-जोखा भी हमें मुख्यत: मिथकों के कूट-विखण्डन से ही मिल पाता है। पितृसत्ता के स्थापित हो जाने के बाद, कृषिमूलक सभ्यता में जब सामंतशाही या राजशाही वाले सत्ता-समीकरण उभरते हैं, तभी से मानवजाति का ज्ञात इतिहास ठीक से अपने तथ्यात्मक बूतों के साथ हमारे सामने आता है। पुरातात्विक सबूत, समाज व रिश्तों के समीकरणों के बारे में बहुत अता-पता नहीं देते। इसलिये मानव वैज्ञानिक अध्ययन कबीलों पर ध्यान केन्द्रित करते हैं और उनके साथ हमकदम होते समाज-वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक व भाषा-मीमांसक- ये सभी उपलब्ध भाषा के विविध रूपों व सतहों पर अपनी निगाह टिकाते हैं। विविध भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययनों से लेकर, स्वप्न-भाषा व मिथक-भाषा आदि के विविध स्तरों का विवेचन सामने लाया जाता है तो भारत में सीमांतीय प्रदेशों की सांस्कृतिक-बुनावट हमारी इस काम में मदद करती है। उत्तर में आप पहाड़ी इलाकों में निकल जायें तो हजारों देवी-म्रताओं के मंदिरों की मौजूदगी हमें, अतीत के किसी मातृसत्ता वाले दौर का अता-पता देना आरंभ कर देती है। वहाँ परिवारों में भी माता का दर्जा पुरुषों से ऊपर दिखायी देता है। हिमाचल प्रदेश के सुदूर इलाकों में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
अभी भी गाँवों में सारा काम स्त्रियाँ करती हैं और पुरुष उनकी 'संपत्ति' की तरह निठल्ले बैठे चिलम फूँकते ज़िंदगियाँ बिता देते हैं। ये सामाजिक संरचनाएँ, अतीत के मातृसत्ता के दौर के अवशेषों की तरह हैं।

फिर पितृसत्ता का दौर आता है तो मातृदेवियों को जबरन पुरुष देवों की पत्नियों के साँचों पे बिठाया जाना आरंभ होता है। एक अकेले शिव के साथ नवदुर्गाओं का रिश्ता बिठा दिया जाता है। फिर बात बेकाबू हो जाये तो उन्हें एक ही दुर्गा, गौरी या पार्वती के अवतार बताया जाने लगता है और शिव की सत्ता 'समयातीत' बनाकर अनेक के लिये उनके ज़ीवन में जगह बना दी जाती है- बावजूद इसके कि शिव पितृसत्ता की स्थापना के लिये काम तक का दहन करते हैं और कुछ कथाओं में स्त्री-संसर्ग से उन्हें बचाने के लिये, देवताओं की प्रार्थना पर हस्तमैथून से वीर्यदान कर अपने पितृ-कर्म से फारिग कर दिये जाते हैं। यहाँ यह बात ध्यान देने लायक है कि 'स्त्री' रूप में देवियों की पूजा की बजाय, उन्हें मातृ-देवियों की तरह ही पूज्य माना जाता है।

मातृसत्ता बेहतर है कि पितृसत्ता, यह सवाल अनैतिहासिक है। मानवजाति में सभ्यतामूलक विकास का हर अगला दौर, पहले के मुकाबले में ज्यादा जटिल, जिसे सांस्कृतिक चुनाव के द्वारा हल किया जाता है। संस्कृतियाँ अपने मिथकों व व्यवहार मूल्यों के जरिये अतीत का सार-संग्रह कर, उसे वर्तमान की सेवा के लिये अर्पित करती हैं, परंतु मुगालता यह होता है कि वह जो अतीत में पीछे छूट गया, वह बेहतर था। बेहतर होता तो नष्ट नहीं हुआ होता और नया पतनशील होता तो मानवजाति उसे आने ही क्यों देती? नये का अर्थ संक्रमण-काल में पूरा पकड़ में नहीं आता, परंतु इससे यह साबित होता है कि पितृसत्ता, मातृसत्ता का अगला विकसित कारण है। यह 'सत्ता' के रूपों का अंत:विकास है, जो अगले विकसित कारण में दोबारा एक वर्तुल बनाता हुआ मातृसत्ता को एक से रूप में खोज लेगा। और इसके निश्चित रूप से 'मनुष्य' के मनुष्य हो सकने की संभावनाएँ अधिक गहराई में मूर्त्त-प्रकट हो सकेंगी। आधुनिक काल में स्त्री-पुरुष के काम-संबंधों को केन्द्र में रखने वाली जिस चेतना का विस्तार हुआ है, उसके दो पहलू हैं- एक है अभिजात वर्ग की मध्यकालीन संस्कृति के मातृ-पितृ संबंध मूलक मूल्यों को चुनौती तथा उन्हें स्थापित करने वाले सती के पातिव्रत्य में निहित मर्दवादी दमन-शोषण से स्त्री को निजात दिलाने के सरोकार। दूसरा पहलू है- आधुनिकता पूँजीवाद के बाजार-तंत्र की उपज के रूप में जो मध्यवर्ग विस्तार पाता है, उसे इस बाजार के मुताबिक ढाले रखने के लिये जरूरी उपभोक्तावादी मूल्यों की संस्कृति के मुताबिक कामोपयोग व यौनिक-लैंगिक रिश्तों की यथासंभव आजादी की वकालत, परंतु इस आधुनिक उपभोगमूलक संस्कृति का भविष्य खतरे में पड़ गया मालूम पड़ता है। सामाजिक मुक्ति के दायरे के विस्तार में जैसे-जैसे निम्न वर्गों की शिरकत की मिकदार बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे श्रम के सृजन हो सकने की संभावनाओं से जुड़ी आजादी के केंद्रीय होते जाने के हालात सामने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आते चले जाने वाले हैं। इससे उपभोगमूलक मूल्यों का यह दूसरा संस्करण भी अपनी चमक खो देने वाला है। सामंतीय दौर के पतनशील उत्तरकाल ने अभिजात वर्ग की उपभोगमूलकता का अतिविस्तार, उसे ले डूबा था। अब मध्यवर्ग का बाजारवादी-उपभोक्तावादी किस्म का नयी तरह का भोगवाद, यौन-स्वतंत्रता या वर्जनाओं से मुक्ति के बहाने से सामने आ रहा है, इससे स्त्री के गलैमरस व्यक्तित्व को जो तरजीह मिलती है, वह उसके एक 'मनुष्य' के रूप में व एक 'सामाजिक' के रूप में स्थापित हो सकने वाले व्यक्तित्व को दबा देती है। यहाँ एक बात और ध्यान में रखने लायक है कि यह जो मध्यवर्ग-वर्चस्वी पूँजीवादी संस्कृति है, उसमें स्त्री भी शेष समाज की तरह ही अपने घर-परिवार के खान-पान, पहनने-ओढ़ने या रस्मो-रिवाज आदि निभाने के मामले में, उसी सर्वग्रासी उपभोक्तावादी तंत्र का हिस्सा ही हुई रहती है। उसका इस लिहाज से जो एक कामकाजी महिला या सत्ता में हिस्सेदारी वाला प्रशासनिक महिला का व्यक्तित्व सामने आता है, वह किसी वैकल्पिक स्त्री-विमर्शात्मक, सामाजिक रूपांतर की प्रतिबद्धता से लैस नहीं होता। उपभोक्तावाद अगर गहराई में मर्दवादी भोगवाद है, तो स्त्री उसमें केवल अपने दमन-शोषण के प्रतिकार के लिये आवाज उठाती हुई तो सामने आती है, इस व्यवस्था के दुष्चक्र को भेद डालने के लिये नहीं, जो परोक्षतः उसके इस दमन-शोषण के लिए जिम्मेवार होता है। यानी वह अपनी दोयम स्थिति या सत्ता का तो निदान चाहती है और बराबरी पर आने की कोशिश करती है, परंतु यह नहीं देख पा रही है कि इस दोयमता को तो इस पूँजीवादी बाजारवादी व्यवस्था ने ही उपजाया है और इसके नष्ट होने से उसका काम चलने वाला नहीं है। वहाँ स्त्री का ही नहीं, प्रकृति के संसाधनों का और निम्न हाशिये के लोगों का भी दोयमता मूलक दोहन-शोषण होता है, जो उस व्यवस्था के मुनाफावाद का आधार है। समानतामूलक व्यवहार-पद्धति इस व्यवस्था के लिए खतरे की घंटी है तो वह इसे कैसे आने दे सकती है।

इस बात को इस रूप में समझ सकते हैं कि जब मनुष्य प्रकृति पर निर्भर था तो उस दौर में प्रकृति माता की तरह मनुष्य की परवरिश कर रही थी। प्रकृति और मनुष्य के इन्हीं रिश्तों की उपज थी मातृसत्तामूलक समाज-व्यवस्था, फिर प्रकृति एक संसाधन होने लगी। मनुष्य की वैज्ञानिक और तकनीकी समझ ने उसे एक मुनाफा कमाने की वस्तु में बदल दिया। प्रकृति के दोहन-शोषण की सामर्थ्य में स्त्री-पुरुष संबंधों को भी बदला। प्रकृति का पर्याय स्त्री दोयम स्थिति में डाल दी गयी और सभ्यता पितृसत्तामूलक समाज-व्यवस्था की ओर आगे बढ़ गयी। अब स्त्री, बेटी या पत्नी की तरह ही महफ़ूज़ रही और उसकी देह मुनाफा से कमायी गयी निजी संपत्ति के वारिस पैदा करने की वस्तु में बदलती गयी, तो जाहिर है कि मुनाफावादी संस्कृति के अंत से पहले, यह सभ्यतामूलक व्यवस्था बहुत गहराई में बदलने वाली नहीं है।

अलबत्ता प्रकृति के साथ मनुष्य के पूरक रिश्तों वाला दौर आना अभी बाकी है। वह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक समानतामूलक स्थिति हो सकती है और उसे मूलत: विविधताधर्मी भी होना पड़ेगा। विविधता की रक्षा किये बिना 'पूरक' किस्म की समानता पैदा ही नहीं हो तो परस्पर-पूरक अर्थतंत्र, मानवजाति के पास तभी आ सकता है, जब वह उच्च तकनीकी के ऐसे मुकाम पर पहुँच जाये, जहाँ वह सर्व-सुलभ हो जाये और उस पर, यानी उत्पादन के संसाधनों व उनके इतिपाल की समझ वाली ज्ञान-वस्तुओं पर किसी का एकाधिकार नहीं रह जाये। तब 'प्रकृति माता' और 'मनुष्य पिता' की भूमिकाएँ 'सत्तामूलक' नहीं रह जायेंगी, पिता या माता की भूमिका, स्त्री या पुरुष का चुनाव हो सकेगा। ऐसा होने पर स्त्री या पुरुष के व्यक्तित्व के केंद्रीय हो सकने के हालात सामने आ पायेंगे, क्योंकि जैसे मौजूदा दौर में हो रहा है, स्त्री-पुरुष की परस्पर-पूरकता की जमीन के मौजूद न होने से, जो स्त्री या पुरुष व्यक्तित्व अपनी आत्मसंभवता या आजादी को खोजते हैं, उन्हें सामाजिक रिश्तों के तल पर समलिंगी होने की स्थिति का चुनाव करना पड़ता है। हमारे समय में समलैंगिकों की तादाद बढ़ रही है, जो एक डरावनी सामाजिक विकृति का सूचक है। समलैंगिकता स्त्री या पुरुष का, उनके स्त्री या पुरुष होने से जुड़ी 'सत्ता' से उपजने वाली गुलामियों का प्रतिकार है, जबकि स्वतंत्र व्यक्तित्व अभी तक न स्त्री के पास है, न पुरुष के पास, जो इस सत्तामूलक दमनशीलता से उबार सके। वह केवल परस्पर-पूरकता में मुमकिन है। समलैंगिकता बीमारी है तो परस्पर-पूरकता और परस्पर-स्वातंत्र्य स्वास्थ्य है।

सत्ता में भागीदारी के प्रतीक व्यक्तित्वों की तरह गोल्डा मायर या मार्गरेट थैचर यूरो-अमेरिकी परिदृश्य में अपवादों की तरह हैं। जबकि इंदिरा गाँधी, श्रीमती भंडार नायके, बेनजीर भुट्टो, खालिदा जिया, मायावती, शेख हसीना या प्रतिभा देवी सिंह पाटील आदि के दक्षिण या मध्य एशिया में सत्ता के शीर्ष तक पहुँचते स्त्री-व्यक्तित्व न प्रतीक घटनाएँ हैं और न अपवाद-पात्र। यह उपनिवेशियों की दुनिया के केंद्र रहे भारत के गैर-उपनिवेशीकरण की दिशा में आगे बढ़ने की छटपटाहटों व मुक्ति-प्रयासों की बेचैनियों के लक्षणों में एक अहम कड़ी की तरह कुछ है। इस बात को समझने के लिये हमें पीछे दिये गये उस विवेचन का विस्तार करना चाहिये, जहाँ हमने पितृसत्ता को प्रकृति संसाधनीकरण की प्रक्रिया की उपज माना है। प्रकृति के संसाधनीकरण के पूँजीवादी रूपों में से निकला एक अभिशाप है, जिसे हम दुनिया के औपनिवेशीकरण की तरह देखते हैं। यह औपनिवेशीकरण देशों के स्तर पर ही नहीं है, अपितु यह प्रकृति, निम्न व हाशिये के वर्गों व स्त्री से लेकर इतिहास तक फैलता हुआ, तीसरी दुनिया व उसके केंद्र में मौजूद भारत तक आता है। यहाँ हम पितृसत्ता द्वारा उपजायी गयी 'अन्य' की दोयमता को, गुलामी की शक्ल तक अमानवीय व भयावह होता देख सकते हैं। इस पूरे अर्थ-विस्तार में भारत की आजादी व उत्तर उपनिवेशिक दौर में उसकी गैर-उपनिवेशन की कोशिशें, अन्य दूसरी कई प्रक्रियाओं के साथ-साथ, भविष्य में संभावित रूपांतर के नक्शे बनाती

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हैं। हमारी इस धरती पर, मुख्यत: तीसरी दुनिया के देशों का गैर-उपनिवेश, प्रकृति निम्नवर्गों, स्त्रियों के साथ मनुष्य जाति व उसके समाज के परस्पर पूरक रिश्तों के बनने के साथ घटेगा, परंतु यह रूपांतर तभी ठोस रूप पा सकेगा, जब निम्नवर्गों या स्त्रियों में इस संभावित विकल्प-रूपांतर की चेतना पैदा होगी। अन्यथा जैसा कि मौजूदा परिदृश्य है, उसमें बेशक हमारे दक्षिण-एशियाई क्षेत्र में स्त्रियों की सत्ता में सहभागिता का अनुपात बढ़ा है तथा जो आरक्षण की मदद से बढ़ने की उम्मीद रख सकता है, परंतु मुक्ति और रूपांतर की चेतना के अभाव में वह भी आखिरकार पितृसत्ता और उपभोक्तावादी मुनाफावादी विकास-चेतना के द्वारा घिरकर, उसी का हिस्सा होकर रह जाता है। अत: सत्ता के इस किंचित बदलते परिदृश्य से भविष्य में जरूर कुछ नयी हरकत, कुछ नयी चेतनामूलक अंगड़ाई की उम्मीद रखी जा सकती है, जो फिलहाल बहुत दूर की कौड़ी लगती है। खासकर इस वजह से कि सत्ता के शीर्ष पर पहुँची महिलाओं की कार्यशैली भी, पितृसत्तात्मक व्यवस्था से ही मेल खाती या उससे समझौता करती हुई ही वहाँ उसमें अपनी कुछ जगह बना व खोज पाती है। और यह बात स्त्रियों पर ही नहीं, दलित आंदोलन पर भी उतनी ही लागू होती है, जो आखिरकार मध्यवर्गीय चरित्र व मानसिकता से इतना मेल खाने लगता है कि हाशिये के असल वंचितों से उसे भी केवल विमर्शमूलक साझीदारी निभाते हुए देखा जा सकता है, जबकि असलियत में वह भी पूँजीवादी मध्यवर्गीय, उपभोक्तावादी विकास को ही प्रगति के मॉडल की तरह स्वीकारता दिखायी देता है। तथापि ये तमाम नयी सामाजिक प्रक्रियाएँ भी, संभावित वास्तविक रूपांतर की दिशा में ले जाने वाली ही साबित होने वाली हैं। अत: यह कोई बहुत निराश होने का मामला नहीं है, क्योंकि माकूल हालात पैदा होने पर रूपांतर चेतना के ठोस रूप लेने में बहुत ज्यादा वक्त भी नहीं लगेगा और तब इन प्रक्रियाओं को हम रूपांतर की अधूरी व राह भटकी कड़ियों की तरह पहचानना आरंभ कर देंगे।

9, चीमा नगर, एक्सटेंशन, मिट्ठापुर रोड
जालंधर-144014

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation-Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मीडिया एवं राजनीतिक खबरों की राजनीति : छवि निर्माण की प्रक्रिया

● डॉ. दीपेन्द्रसिंह जाड़ेजा

संचार और उसका प्रतिनिधित्व करने वाली बहु-आयामी मीडिया आज शक्तिशाली परिघटना का रूप ले चुकी है। राष्ट्र-निर्माण से जुड़ी विभिन्न विकास प्रक्रियाओं पर इसका प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है, लेकिन प्रभावों का चरित्र, कितना जनोन्मुखी, समाजोन्मुखी और कितना स्वदेशी है, यह विचारणीय विषय है। अंग्रेजी व हिंदी के सुप्रसिद्ध चिंतक तथा संचार विज्ञानी डॉ. पी.सी. जोशी अपनी पुस्तक 'कम्युनिकेशन एंड नेशनल डवलपमेंट' में पूरी शिद्दत के साथ पुस्तक की भूमिका में कहते हैं कि- ''संचार के व्यापक अर्थों में आज संचार सत्ता-संरचना तथा आर्थिक और सामाजिक असमानता से प्रभावित है। कई ऐसी शक्तियाँ भी इसे प्रभावित कर रही हैं जो कि संचार जगत से बाहर की हैं। इन्हें समझने के लिए सृजनात्मक व व्यापक दृष्टि की आवश्यकता है।''[1]

एक धारणा यह भी व्यक्त की गई है कि संचार तंत्र का शक्ति विस्तार राज्य तंत्र के शक्ति विस्तार का ही दूसरा नाम है। 'कलॉडवेली स्ट्राउस' ने कहा है कि ''पारम्परिक समाजों में लेखन न केवल सूचना दर्ज करने या कहानियाँ बताने का साधन था, बल्कि यह अन्ततः सत्ता का माध्यम था।'' अब तो मीडिया सत्ता के हस्तांतरण का साधन हो गया है। मारन बंधु-'कलानिधि मारन' एवं 'दयानिधि मारन' को मीडिया मैग्नेट के रूप में जाना जाता है। दयानिधि मारन जो सन टीवी के मालिक हैं, वे सूचना प्रसारण मंत्रालय के कैबिनेट मंत्री भी रह चुके हैं। मीडिया के द्वारा होती उनकी राजनीतिक प्रगति को देखकर उनके चचेरे भाइयों ने एक समाचार पत्र तथा टीवी न्यूज चैनल शुरू किया है। महाराष्ट्र तथा उत्तर प्रदेश के अनेक बड़े नेताओं के अपने समाचार पत्र हैं। कहने का तात्पर्य है कि मीडिया एवं राजनैतिक सत्ता का ऐसा घनिष्ठ संबंध है कि वे एक सिक्के के दो पहलू हैं।

मीडिया के बारे में बाद्रिलॉ दो विरोधी प्रस्थापनाएँ देते हैं- वे सत्ता की रणनीति होते हैं, जो उनमें जनसामान्य को रहस्य बना देने तथा अपना सत्य थोपने का साधन पाते हैं अथवा वे जनसामान्य के छल के राजनीतिक क्षेत्र होते हैं- वे उन्हें अपनी मूर्त शक्ति से वास्तविकता से वंचित करते हैं। उनके शब्दों में- ''अब मीडिया वास्तविक और सत्य,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सभी राजनीतिक या ऐतिहासिक सत्य के अस्थिरीकरण के लिए एक चमत्कारी औजार के सिवाय कुछ नहीं है।''[2] यह सब होता है प्राय: सूचना, मनोरंजन और विज्ञापन के माध्यम से। मीडिया इसके द्वारा लोगों की रुचियों-स्वादों को प्रभावित करता है और अन्तत: उन्हें वांछित दिशा में मोड़ देता है, मगर मीडिया की भूमिका यहीं तक सीमित नहीं होती। वो नाना प्रकार के जनमत तैयार करता है। इस प्रकार ये जन-शक्ति संबंधों के स्वरूप का नियंत्रण और निर्धारण करता है। कहने का आशय है कि मीडिया संस्कृति के निर्माण, नियंत्रण और निर्धारण के साथ-साथ अन्तत: सत्ता का भी माध्यम बन जाता है।

मीडिया और सत्ता की संरचना के मूल में पूँजीवाद, साम्यवाद और पाश्चात्य संस्कृति का हावी होना है। मीडिया ने अमेरिका में ओबामा के राष्ट्रपति बनने में आए इस बदलाव को विश्व में आए एक बदलाव के रूप में पेश किया। अमेरिका का मतलब विश्व नहीं होता, पर मीडिया पर पूँजीवाद के प्रभाव के चलते कुछ ऐसा ही लगता है, तभी तो अफ्रीकी मूल के ओबामा की प्रशंसा में ढेरों कसीदे पढ़े गये पर स्वयं अफ्रीका के एक देश कोंगो की बड़ी खबरें मीडिया में स्थान नहीं पा सकीं। मीडिया ने इस खबर को दरकिनार कर दिया कि पूर्वी कोंगो के मुख्य विद्रोही गुट के कमांडरों ने कोंगो के अशान्त क्षेत्र गोमा में संघर्ष समाप्त करने की घोषणा कर दी है। अगर अश्वेत (ओबामा) के दम पर ही खबर बड़ी बनती है तो जो काम अमेरिका ने सवा दो सौ सालों में किया है, उससे कितने ही बड़े-बड़े सराहनीय कार्य दूसरे देशों में उससे पहले हो गये हैं। आज मीडिया किस घटना को समाचार मानता है और किस घटना को समाचार नहीं मानता, यह खोज का विषय बन गया है। ओबामा के राष्ट्रपति बनने को जैसा कवरेज दिया गया, वैसे की हकदार खबर थी अर्जेन्टाइना में क्रिस्टीना फर्नाडीज़ डि कर्चनर का राष्ट्रपति चुना जाना। ऐसा सम्मान पाने वाली वह अर्जेन्टाइना की पहली महिला बनीं, लेकिन जब इस खबर को दिखाया जाना था तब यह प्रसारित किया जा रहा था कि ग्लैडरैग्स मिसेज इंडिया-2008 का भव्य आयोजन। अर्थात् किसी महिला का राष्ट्रपति बनना (पहली बार) खबर नहीं बल्कि स्त्री के खुले बदन के फ़ैशन शो तथा फिल्मी दुनिया के लोगों के प्रेम के चक्कर बड़ी खबर के रूप में पेश किये जाते हैं। ओबामा के चुनाव को जिस तरीके से अनेक बड़ी एजेंसियों ने प्रचारित-प्रसारित किया क्या उसी तरीके से ये एजेंसियाँ तीसरी दुनिया के देशों में राजनीति पर भी ध्यान देती हैं? कहने का आशय यह है कि यह मीडिया ही है जहाँ पर यह फैसला कि क्या-क्या प्रसारित करना है, इस फैसले के आगे बौना पड़ जाता है कि क्या-क्या नहीं प्रसारित करना है। वास्तव में इन विकल्पों को तय कौन करता है, जिनके सामने हम-आप इस कदर बेबस हैं कि या तो यह देखें या फिर वह देखें। यह विकल्प या फिर वह विकल्प। विकल्पों में स्वतंत्रता है, विकल्पों से नहीं। इसका ही चलन है, जो आज ग्लोबल विलेज के रूप में व्यक्त हो रहा है और जो अनिवार्य रूप से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
अमेरिका का हितसाधक है। अमेरिकी नीतियाँ ही ऐसी रही हैं कि अमेरिकी दृष्टि को मीडिया के कन्धे पर बैठाकर विश्व-दृष्टि साबित कर दिया जाता है।

इसी प्रकार अधिकतर मीडिया वर्चस्व की संस्कृति और वर्ग-प्रभुत्व का शिकार होता है। उदाहरणार्थ, 26 नवम्बर, 2008 को मुम्बई में पाकिस्तानी आतंकवांदियों द्वारा कई हमले हुए- नरीमन हाउस, ताज पैलेस, ओबेराय होटल, छत्रपति शिवाजी टर्मिनल (सीएसटी-रेलवे स्टेशन) सबसे ज्यादा लोग सीएसटी पर मारे गये, मगर लगभग सभी टी.वी. चैनलों ने ताज पैलेस, ओबेराय होटेल को अधिक कवरेज देकर पुनः पुनः उसे प्रसारित किया। भूमंडलीकरण की आँधी में पाश्चात्य टी.वी. चैनलों पर बताई जाने वाली फिल्में, कार्टून का नशा भारतीय दर्शकों में बालक से लेकर वृद्धों तक इस तरह फैला है कि उसने बुरी तरह उन्हें अपने प्रलोभन जाल में फँसा लिया है। पाश्चात्य साम्राज्यवाद के नमूने बी.बी.सी. के समाचार-प्रसारण में कभी-कभी देखने को मिल जाते हैं, ऐसी ही एक घटना में मुम्बई पर हुए आतंकवादी हमले को बी.बी.सी. ने महज एक उग्रपंथी हमला कहा था, जबकि उसमें करीब दो सौ लोग मारे गए थे और तीन सौ के करीब लोग घायल हुए थे, जबकि 2005 में लन्दन में हुए हमले को बार-बार आतंकवादी कहा गया यद्यपि उसमें 50 लोगों की जान गई थी। खबरों के प्रसार में यह भेदभाव उनकी एक पक्षीयता और पूर्वाग्रह को ही दर्शाता है। इस दो-मुँह वाली साम्राज्यवादी सोच और रुख के कारण वास्तविकता को मीडिया के प्रतीकों के पर्दे ढँक लेते हैं।

मीडिया की ताकत इस बात में है कि वह हमें बिना किसी धक्का-मुक्कीवाले चुनावी रैलियों में शामिल हुए, बिना किसी पार्टी के पक्ष में नारे लगाए, किसी प्रत्याशी के लिए हाय-हाय किए बिना और चुनावी वादों पर वाह-वाह किए बिना ही हमें सजग मतदाता और नागरिक होने का अहसास कराता है। यह एक सुरक्षित और सुविधाजनक मनोदशा में हमें राजनीति से जुड़ने का अवसर मुहैया करता है। मीडिया में इतनी क्षमता है कि वह एक साथ अलग-अलग मनस्थिति और विचारधारा के लोगों को छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित करने का काम करता है, जिससे लक्ष्य मतदाता के रूप में राजनीतिक विज्ञापनों का असर उन पर हो सके। मीडिया की यही ताकत राजनीतिक पार्टियों को अपने पक्ष में विज्ञापन करने के लिए उकसाती है और नतीजा यह कि देश की अधिकतर राजनीतिक पार्टियाँ और उनके प्रत्याशी मीडिया के माध्यम से लोकतंत्र की राजनीति करना चाहते हैं। यहाँ कभी-कभी मीडिया पार्टी वर्कर के रूप में कार्य करने लग जाता है।

मीडिया इसी क्रम में राजनीतिक विज्ञापनों के द्वारा धीरे-धीरे जन-सामान्य की मूलभूत आवश्यकताओं और सवालों को परिवर्तित कर दर्शक की पसंद-नापसंद के रूप में करता चला जाता है। राजनीतिक विज्ञापन छवि निर्माण का काम दर्शक की इसी स्थिति के भीतर करता है। राजनीतिक पार्टियों द्वारा विज्ञापन की राजनीति पर करोड़ों रुपये खर्च करने के पीछे उद्देश्य होता है कि वह नागरिक की जरूरतों और दर्शक की पसंद, छवि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
और वास्तविकता के बीच में घालमेल कर दे ताकि उसे मुद्दों और मतदाता के प्रति जवाबदेही से हटकर छवि आधारित लोकतंत्र की राजनीति करने में सुविधा हो। इसके अनुसार अब किसी भी चुनाव के मुद्दों के मुकाबले प्रत्याशी नेता और राजनीतिक पार्टी का मूल्य ज्यादा है। इसलिए चुनाव अब मुद्दों के आधार पर की जाने वाली राजनीति के बजाय छवि, रणनीति और चाल आधारित प्रतियोगिता है। मतदाता अब मुद्दों से ज्यादा छवि से प्रभावित होते हैं। जैसे पिछले लोकसभा चुनाव में एक नारा था- 'मजबूत नेता, निर्णायक सरकार' इसमें कहीं कोई मुद्दा नहीं है। यहाँ पूरी तरह एक प्रत्याशी की छवि को स्थापित करने की कोशिश है। यानी लोकतंत्र की राजनीति, विज्ञापनों और मीडिया की दुनिया में छवि निर्माण और नियंत्रण का खेल है। इसी छवि का निर्माण की राजनीति का सबसे पहला सफल प्रयोग मीडिया के द्वारा अमेरिका में निकसन और कैनेडी के बीच के चुनाव में किया गया। निकसन और कैनेडी के बीच की राजनीतिक चर्चा-परिचर्चा जो मीडिया पर प्रसारित की जा रही थी, जिसमें स्पष्ट दिख रहा था कि निकसन की सूझबूझ और राजनीतिक ज्ञान कैनेडी से अत्यधिक है, किन्तु चुनाव नजदीक आता गया और मीडिया ने कैनेडी को युवावर्ग के प्रतिनिधि के रूप में मि. क्लीन तथा महिलाओं में प्रिय एवं बच्चों को चाहने वाले आदि-आदि न जाने कितनी बातों को लेकर ऐसी छवि निर्माण की कि निकसन चुनाव हार गये। ऐसा होने से लोकतंत्र की राजनीति के भीतर प्रबंधन की एक शैली तेजी से उभर कर आई जिसे अब 'पोलिटिकल मार्केटिंग' के अंतर्गत विश्लेषित किया जाने लगा है। यहाँ भी उपभोक्ता व्यवहार के आधार पर सर्वे कराए जाते हैं और फिर रणनीति और विज्ञापन बनाए जाते हैं। उपभोग के लोकतंत्र की तरह यहाँ भी विज्ञापन के जरिये मतदाताओं को राजनीतिक पार्टी और प्रत्याशी के पक्ष में रिझाने के काम किए जाते हैं। इसी आधार पर भाजपा ने 2005 के लोकसभा चुनाव में 'इंडिया शाइनिंग' का पुरजोर प्रचार किया था तथा इसी राजनीतिक रणनीति के चलते 2009 में कांग्रेस पार्टी ने 'जय हो' की धूम मचाती धुन का नारा दिया था। इसका सबसे बड़ा फायदा यह है कि मीडिया के द्वारा इसे आवश्यकतानुसार बदला जा सकता है। यह पार्टी और प्रत्याशी की छवि में कुछ जोड़ना-घटना या नयी छवि को स्थापित करना आदि कार्य भी बहुत सरल ढंग से कर सकता है। आडवाणी को 'मजबूत नेता, निर्णायक सरकार' के रूप में प्रस्तुत कर यहाँ व्यक्ति की छवि को उभारने का प्रयत्न किया गया है, उसमें भाजपा हिन्दू विचारधारा या अन्य चुनावी वचनों की जगह सिर्फ एक व्यक्ति की छवि को प्रस्तुत किया गया। मधु कोडा के मामले में भी मीडिया की कुछ ऐसी ही भूमिका रही है, जब वे झारखंड के मुख्यमंत्री बने तो एक दलित, सामान्य मजदूर (खेत) का बेटा, निर्भीक विधायक तथा लो प्रोफाइल सामान्य नागरिकों का मसीहा कहकर मीडिया ने उसके कसीदे पढ़े थे। इसी मधु कोडा के विषय में यही मीडिया अब कह रहा है कि इससे बड़ा घोटालेबाज तथा सामान्य प्रजा का खून चूसने वाला कोई पैदा नहीं हुआ। मधु कोडा को

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
मीडिया ने पहले किस आधार पर मसीहा बनाकर पेश किया था और आज यही मीडिया उसे गाली देते थकता नहीं। अर्थात् ऊपर-ऊपर की खबर मीडिया के लिए छवि निर्माण की प्रक्रिया बन जाती है। मीडिया कभी गहराई में जाकर सत्य खोजने की जरूरत नहीं समझता। इसी रीति-नीति के कारण मीडिया की बातों में गहराई नहीं मिलती वह परिस्थिति से उत्पन्न माहौल को दर्शक-गण पर थोपने का काम करता है। जरूरत पड़ने पर मीडिया राजनीतिक व्यक्ति की छवि की मरम्मत करने का काम भी करता है। मीडिया द्वारा प्रायोजित इस छवि का निर्माण प्रक्रिया में अब नैतिकता का सवाल बहस से बाहर होता जा रहा है। सभी पार्टियाँ अब इसी राजनीति पर जोर दे रही हैं कि कितने बेहतर तरीके से छवि प्रस्तुत की जा सके। अत: सम्पूर्ण संचार के अंतर्गत किसी प्रत्याशी या पार्टी के बारे में वही सब कुछ प्रसारित किया जाता है, जिसे मार्केटिंग या विज्ञापन एजेंसी तय करती है। अत: मीडिया राजनीतिक पार्टियों एवं प्रत्याशियों के लिए मन-मुताबिक छवि प्रसारित करने का आसान माध्यम बन गया है।

इन चुनावी खबरों एवं छवि निर्माण की पक्रिया में अब चुनावी विज्ञापन या इससे आगे कहें तो पेड न्यूज़ या स्पॉन्सर्ड न्यूज़ भी होने लगी हैं। इसके साथ-साथ जब चुनावी मौसम खिलकर निकलता है तो मीडिया पर कुछ खास किस्म के पूर्वाग्रह हावी हो जाते हैं। चुनावी विश्लेषण और एण्टी-इन्कम्बेंसी की इतनी अधिक चर्चा होने लगती है कि कोई खास सोची-समझी कार्य-प्रणाली के तहत यह सब होता है। जैसा कि सभी जानते हैं, आजकल चुनाव एक, दो या तीन नहीं, कई बार पाँच-छह चरणों में भी सम्पन्न कराए जाते हैं। निष्पक्ष और स्वतंत्र चुनाव लोकतांत्रिक सरकार के लिए प्राणवायु है। एक या दो चरणों के चुनावों के सम्पन्न होते ही मीडिया पर सीटों का अनुमान हावी हो जाता है और रंग-बिरंगे ग्राफ़िक्स के जरिये यह बताने-सुनाने दिखाने में कोई कसर नहीं बाकी रखी जाती कि किसकी सरकार सत्ता में आ रही है और कौन-सा राजनीतिक दल विपक्ष में बैठने जा रहा है। फिर बचे हुए चरणों के चुनाव अनुमानों के इस प्रसारण के बाद सम्पन्न होते हैं। ऐसे में सवाल उठना स्वाभाविक है कि क्या तीसरे या चौथे चरण के चुनावों में मतदान करने के लिए मतदान केन्द्र को जा रहा मतदाता उतना ही निष्पक्ष, स्वतंत्र या पूर्वाग्रह मुक्त रह पाता है, जितना प्रथम चरण में मतदान करने वाला मतदाता था? इसीलिए पिछले लोकसभा चुनावों में ऐसे चुनावी अनुमानों पर रोक लगाने की बात पर बहस हुई थी और चुनाव आयोग ने उसके प्रसारण पर रोक भी लगाई थी। इन चुनावी अनुमानों पर भी पिछले कुछ समय से उँगलियाँ उठ रही हैं और अब तो उस पर आरोप भी लगने लगे हैं कि इसमें किसी पार्टी की राजनीति ही अधिकांशत: होती है जो अपने पक्ष में ऐसे मतदाताओं के रुझान संबंधी अनुमान करवाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि अब सच्ची खबरें और पैसे देकर जिन्हें खबरों का रूप दिया जाता है, उनमें बीच का फर्क धुँधला होता जा रहा है। इसी वर्ष के अगस्त महीने में विज्ञापनों के नीति-नियम तय करने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वाली संस्था व लंदन में समाचार पत्र 'द डेली एक्सप्रेस' को स्पष्ट शब्दों में सूचित किया था कि समाचार पत्र अपनी सीमा में रहे और नीति-नियमों का पालन करे। इस समाचार पत्र ने किसी वस्तु के विज्ञापन के साथ उसी पृष्ठ पर उसकी प्रशंसा करता हुआ लेख प्रस्तुत किया था, जिससे ऐसा लग रहा था, जैसे वह विज्ञापन एक खबर है। इसी हरकत के लिए एडवरटाइजिंग स्टैन्डडर्स ऑफ यू.के. ने उस समाचार पत्र की आलोचना की थी। नतीजा यह था कि समाचार-पत्र ने अपनी भूल मानते हुए अफसोस व्यक्त किया था।[3]

उपर्युक्त प्रसंग के द्वारा यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि हमारे देश में बात कुछ अलग है। हमारे देश के जन-संचार माध्यमों में इतना खुलापन नहीं है। विज्ञापनों को एडवर्टोरियल के रूप में दिखाया जाना, अब एक आम बात हो गई है। कितने विरोध के बावजूद विज्ञापन एडवर्टोरियल की जगह में घुस रहे हैं। पैसे देकर राजनीति की खबरों का छपना इस बढ़ती घुसपैठ का प्रमाण है। अभी हाल ही में एक अंग्रेजी समाचार पत्र में विधानसभा के चुनाव के पूर्व महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री की प्रशंसा करती हुई बातें छपी थीं, जिसके लिए चह्वाय ने कितने ही रुपये खर्च किये होंगे। कह सकते हैं कि जैसे उनके विषय में खबरों की बाढ़ आ गयी हो क्या यह रुपये उनके चुनावी खर्चे के हिसाब में बताये गये थे?

कहने का तात्पर्य है कि चुनावी राजनीति में मीडिया भी अपने हाथ धो लेता है। चुनावी माहौल में तो आप भेद कर ही नहीं कर सकते कि यह राजनीतिक खबर है या विज्ञापन। श्रीनिवास रेड्डी का जो 'विशाल आंध्र' तेलुगु भाषा के समाचार पत्र के सम्पादक हैं, कहना है कि 2009 के जनरल चुनाव में तेलुगु भाषा के समाचार पत्रों ने राजनीतिक खबरों की दरें तय की थीं, जिसमें राजनीतिक कृपापात्र खबरों की तकनीक द्वारा इन समाचार पत्रों ने करीब 300 करोड़ रुपये बनाये थे।[4] इसी पेड पोलिटिकल न्यजू पर 'जनसत्ता' के सम्पादक स्वर्गीय प्रभाष जोशी ने कितनी ही बार आवाज उठाकर इस गठबंधन के विरोध में स्वर बुलंद किया था। देखा जाए तो मीडिया का काम आम जनता की मुश्किलों-मुसीबतों को सत्ता प्रतिष्ठान तक पहुँचाना है न कि शासन और सरकार की उन मुश्किलों-मुसीबतों को हल करना। दूसरी ओर मीडिया का कर्त्तव्य यह भी है कि वह सरकार की कमियों और नाकामयाबियों को जनता के सामने उद्घाटित करे, क्योंकि लोकतंत्र में सरकार निर्वाचित होती है और संविधान प्रत्येक नागरिक को मूल अधिकार देता है, पर जब मीडिया और राजनीतिज्ञ ऐसे गठबंधन के जरिये ढोल के भीतर पोल हो तो फिर एक सीमा से ज्यादा अपेक्षा करने पर अपने-आप प्रश्नचिह्न लग जाता है।

संदर्भ सूची

1. Dr. P.C. Joshi : "Communiciation and National Development" Introduction.

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

2. सुभाष शर्मा- जनसंचार माध्यम और शक्ति सरचना लेख से- नया ज्ञानोदय में प्रकाशित मई, 2009, पृ.-68

3. "In this year, an Industry watchdog publically rebuked a prominent daily for carrying a favourable article on a product alongside an advertisement of it. The watchdog rule that placing the article of the same page as the ad amounted to making the 'advertisement feature' appear like a genuine news article. The newspaper apologised and the advertisers withdraw ad constructed in the form of an advertorial. " 'The Sunday Story News sponsoned' The Indian Express, December 6-2009, P.-8

4. According to Srinivas Reddy, The resident editor of 'Visal Aandhra' a Telugu newspaper with six editions across Andhra Pradesh, during the 2009 General election, most Telugu newspaper had fixed prices for the kind of coverage major contenders sought in various papers. "It is estimated that the local newspaper grossed more than Rs. 300 crore through such tactics during the 2009 elections."
'The Sunday Story-News, Sponsored' The Indian Express, December 6-2009, P.-8

आसिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कला-संकाय
म.स. विश्वविद्यालय, बड़ौदा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लोकप्रिय नैतिकता : प्रश्नों के दायरे में

● डॉ. उर्मिला मिश्रा

समय तेज परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। पूँजीवाद पूरी तरह अपने पाँव पसार चुका है और परिवर्तन पूँजीवादी आधुनिकता का स्थायी भाव है। यह उसकी संरचना में ही निहित है। औद्योगिक एवं सूचना प्रौद्योगिकी के विकास ने प्रत्येक क्षेत्र में अविश्वसनीय परिवर्तन ला दिए हैं। जीवन का भौतिक आधार भी तेजी से बदल रहा है। ऐसी ही रफ्तार राजनीति और संस्कृति में भी दिखायी दे रही है और भौतिक परिवर्तन के प्रवाह में परम्परागत मूल्य भी बह गए हैं। प्रेम, प्रतिबद्धता, त्याग, समर्पण जैसे मूल्यों के निर्वहन के लिए युवा पीढ़ी के पास न तो समय रहा है और न आवश्यकता।

परंतु मूल्य निर्वहन की आवश्यकता तो है और जरूर युवा पीढ़ी के लिए भी, बुजुर्ग पीढ़ी के लिए तो है ही। पूरी की पूरी बुजुर्ग पीढ़ी यह कहती सुनायी देती है कि क्या वक्त आ गया है। अब तो 15-20 वर्ष के बच्चों के माता-पिता अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देने के बावजूद परेशान हैं। वे अपने बच्चों की मूल्यहीनता के कारण छटपटाहट से भरे हैं, उनके द्वारा की गई अवहेलना से छलनी हैं, उनके स्वकेन्द्रित होने के भाव से व्यथित से हैं। समाज में स्थिरता लाने वाले, आत्मा को तृप्त कर देने वाले मूल्यों के लिए युवा धरती उन्हें बंजर दिखायी दे रही है।

बहरहाल, सच यह है कि नियतिवादी 'क्लासिक चिंतन' के समानांतर 'आधुनिक चिंतन' विकसित हो चला है। क्लासिक चिंतन यह मानता है कि संसार ईश्वर द्वारा तय किए हुए निश्चित और निर्धारित नियमों के अनुसार चलता है, जिसके परिणाम भी निश्चित होते हैं। पूर्व निर्धारित होते हैं, जबकि आधुनिक चिंतन क्वांटम विकास में भरोसा करता है। इस चिंतन में संभावनाएँ हैं। इसके अनुसार कोई भी व्यक्ति कितना भी ऊँचा उठ सकता है, कुछ भी कर सकता है। यह सोच निरंतर नई संभावनाओं को जन्म दे रहा है। सब यह मानने लगे हैं कि संसार और जीवन संभावनाओं से भरा पड़ा है और विभिन्न क्षेत्रों में, विभिन्न कलाओं में निपुणता प्राप्त कर प्रतिभाओं ने यह सिद्ध भी कर दिया है। क्षेत्र चाहे ज्ञान का हो या विज्ञान का, संगीत का हो या साहित्य का, नृत्य का हो या गायन का, धर्म का हो या राजनीति का सर्वत्र टैलेंट आगे आ रहा है। धर्म, जाति, वर्ण, क्षेत्र, प्रांत

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आदि संकुचित सीमाओं को लांघकर वह आगे बढ़ रहा है, अपना गंतव्य प्राप्त कर रहा है। इस क्वांटम सोच ने क्लासिक सोच को पुन: विचार करने पर मजबूर-सा कर दिया है। आज बहुत कुछ सकारात्मक भी घटित हो रहा है और सृजनात्मक भी घटित हो रहा है।

परंतु सच यह भी है कि मूल्यों के बिखराव की स्थिति बन रही है। परंपरागत मूल्यों में विघटन तो हो ही रहा है। श्रद्धा, समर्पण, आस्था जैसे भाव तिरोहित क्यों हो रहे हैं? क्या वे बोझ थे, जो केवल ढोये जा रहे थे, या वे विवशता थे, जिनसे आदमी छूटना चाह रहा था या बंधन थे, जिनसे मनुष्य मुक्ति चाहता था? कुछ तो कारण रहा होगा, जो ये मूल्य विघटित होने लगे।

पहले भी परम्परागत मूल्यों के निर्वहन में अर्थ जुड़ा था, शायद भय भी जुड़ा था। रोटी भी जुड़ी थी। उदाहरण के लिए अधिकतर लोग पैतृक जमीन, जायदाद या कारोबार से जुड़े थे। अत: साथ रहना अनिवार्यता तो थी ही, आवश्यकता भी थी, क्योंकि वे पैतृक सम्पत्ति उठाकर कहीं जा तो सकते नहीं थे। आज्ञापालन ही रास्ता था, उसे प्राप्त करने का। उनके आज्ञापालन व समर्पण में पता नहीं स्नेह था, आदर था या विवशता थी, क्योंकि उनके आदेश न मानने पर धन-वैभव-जमीन-जायदाद, प्रतिष्ठा आदि से बेदखल कर दिये जाने का भय तो था ही। ऐसे में अपने परिवार वालों के लिए निश्छल प्रेम का प्रतिशत कितना था कहना कठिन है। इतिहास गवाह है अन्याय के विरोध में आवाज उठाने पर भी पुत्र को पिता की सम्पत्ति से बेदखल होने की धमकी तो मिलती ही थी। फिर पुत्री की तो बिसात ही क्या, जो वह बोले। न समाज उसके पक्ष में था, न धर्म, ऊपर से तुर्रा यह है कि उस समय को हम स्वर्णिम समय की संज्ञा देते हैं, किंतु यह स्वर्णिम युग केवल सत्ताधारियों के लिए था और सबलों के लिए। आमजन या स्त्री के लिए नहीं।

कार्ल मार्क्स से पूर्व हिगेल तक चिंतन प्रत्ययवादी चिंतन था, आत्मवादी चिंतन था जो यह मानता था कि सारे विश्व का सृजन ईश्वर ने किया है। ईश्वर हमारे ही भाग्य का विधाता और नियामक है। परमात्मा ने हमारे जीवन में जितने सुख-दुख लिख दिए हैं, उन पर हमारा वश नहीं, उन्हें भोगे बिना छुटकारा नहीं। ईश्वर के विधान में हस्तक्षेप हो ही नहीं सकता। मनुष्य विवश है सब कुछ भोगने के लिए। अत: उसे सब्र और धैर्य के साथ बिना विरोध किए संतोष के साथ सब सहना चाहिए प्राकृतिक नियमों पर मानव का वश नहीं है।

परंतु मार्क्स ने सिर के बल खड़े दर्शन को पैर के बल खड़ा कर दिया और कहा कि संसार का जन्म ईश्वर से नहीं पदार्थ से हुआ है। पदार्थ में सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों तत्व विद्यमान रहते हैं और परस्पर दोनों विरोधी तत्वों का पदार्थ में निहित रहना अनिवार्यता है। धनात्मक एवं ऋणात्मक दोनों तत्व एक-दूसरे में जाना चाहते हैं, जिससे परस्पर टकराहट होती है। टकराहट से गति होती है और गति से विकास। इस पूरी प्रक्रिया में ईश्वर कहीं नहीं है। यही द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद कहलाता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस भौतिकतावादी विचारधारा ने नयी संभावनाओं के द्वार खोल दिए। भाग्यवादी विश्वास को ठेस पहुँची, मनुष्य शक्तिशाली हुआ और धीरे-धीरे यह बात समझ में आने लगी कि अगर हम एकजुट होकर मेहनत करें तो कोई ताकत हमें ऊँचा उठने से नहीं रोक सकती। हरेक को सपने देखने का अधिकार है, इस विचार ने बल पकड़ा। संसार धीरे-धीरे बदलने लगा। निम्न वर्ग मध्यम वर्ग में तथा मध्यम वर्ग उच्च वर्ग में तब्दील होने लगा। इंटरनेट और मोबाइल ने, बाजारवाद और भूमण्डलीकरण ने बौद्धिकता के लिए सारे दरवाजे खोल दिए। जो अर्थ पहले केन्द्र में ढँका-दबा था, फिर खुलकर सामने केन्द्र में आ गया। उनके प्रभाव और चकाचौंध ने अधिक लोगों को अपनी गिरफ्त में ले लिया। जीवन-विकास की दौड़ में भाग लेने की तमन्ना सब में जाग उठी। अर्थ के आकर्षण ने लोगों को रात-दिन मेहनत करने को तैयार कर दिया।

इसी नयी जीवनचर्या में मनुष्य के पास समय का अभाव हो चला। अपने बड़ों की भावनात्मक जरूरतें पूरी करने का वक्त युवा पीढ़ी के पास नहीं रहा। उनके पास तो अपने बच्चों की तोतली आवाज सुनने का, उन्हें उँगली पकड़कर चलाने का, उनकी दूधिया हँसी देखने तक का वक्त भी नहीं रहा। इधर अकेला पड़ता बचपन स्कूल, कम्प्यूटर, टी.वी. के हवाले हो गया। बच्चे समय से पहले वयस्क होने लगे। उनके मन के भावात्मक खालीपन को वस्तुएँ भरने लगीं। खिलौने, कपड़े, आकर्षक सामान, मनचाहे दोस्त, मौज-मस्ती जिंदगी में आ गयी। उनके ऊँचे-नीचे पड़ते, डगमगाते कदमों को रोकने को संयुक्त परिवार रहा न संयुक्त परिवार को झेलने का उनका माद्दा। सारे बंधन टूटने लगे। एक बार को तो यह स्वतंत्रता बहुत मोहक लगी, क्योंकि बड़े दिनों बाद मिली थी। महत्वाकांक्षाएँ बाँध तोड़कर बह चलीं और साथ बहा ले गयी मानवीय मूल्य। एक-दूसरे के प्रति निष्ठा, आस्था, एक-दूसरे के दुख-सुख में शरीक होने योग्य संवेदना समाप्त हो गयी, तर्क प्रबल हो गया।

ये परिवर्तन रातों-रात नहीं हुए। और वैसे भी कल और आज के बीच फर्क ही कितना है? सिर्फ एक रात का। सिर्फ उस रात का, जिसे हम सोते हुए गुजार देते हैं और उठकर रातभर में आए बदलाव से सदमे में आ जाते हैं। आज यही स्थिति है। सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक क्षेत्रों में मूल्यों को बचाने की कोशिश जारी है, परंतु यह भी बड़ा सच है कि मरते हुओं को बचाया नहीं जा सकता। अगर उन मूल्यों में दम होता तो मरते ही क्यों?

परंतु मैं निराश नहीं हूँ, जो अच्छा है, स्वस्थ है, सुखद है वह जरूर बचेगा। नये मूल्य जन्म लेंगे, जो आज के अनुभव की कोख से पैदा होंगे। नयी प्रतिबद्धताएं विकसित होंगी। आज भिन्न प्रकार के जॉब हैं, नयी प्रकार की व्यस्तताएँ हैं, नये प्रकार के अनुभव हैं तो अहसास भी अलग-अलग होंगे, प्रेम के अवसर एवं तरीके भी अलग होंगे, अभिव्यक्ति के तरीके भी अलग होंगे। एक-दूसरे के साथ समय गुजारने के तरीके भी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
भिन्न होंगे। हमें इन सबको समझना होगा। संवेदना की गहराई को समझना होगा। खालीपन को भरने के भी नये रास्ते ढूँढने पड़ेंगे।

वैसे भी प्रेम एवं समर्पण का संबंध मन से है। यह कोई जमीन-जायदाद नहीं है, जिन्हें आप अधिकार के रूप में माँग सकते हैं। ऐसा भी नहीं है कि माँगेंगे तो मिल ही जायेगी। परम्परागत मूल्यों के ह्रास से झटका खाये मस्तिष्क की सहन क्षमता के दायरे को बढ़ाना जरूरी है, क्योंकि जिस प्रकार हमारी शारीरिक शक्तियों की एक सीमा होती है, उसी प्रकार मानसिक सोच की भी एक सीमा होती है। हमारी मानसिकता अभी तेज परिवर्तन के कारण हुए मूल्य विघटन को सह नहीं पा रही है। अत: परिवर्तन और मानसिकता के बीच बड़ा गैप हो गया है। यही कारण है, जो हम चाहते हैं और मिल नहीं पा रहा वह हम ईश्वर से माँग रहे हैं, परंतु जब आप ईश्वर की सल्तनत को नकार रहे हैं तो वहाँ से कैसे मिलेगा? परंतु विडम्बना यह है कि जरूरत के मुताबिक हम सबका इस्तेमाल करना चाहते हैं- मानव सामर्थ्य का भी और ईश्वर का भी। प्राप्य मिल गया तो कहेंगे कि हमारे पुरुषार्थ का परिणाम है अगर न मिला तो कह देंगे भाग्य में था ही नहीं, ईश्वर को मंजूर ही नहीं तो क्या करें? परंतु अब यह दोगली बात नहीं चलेगी। आप कर्ता बनना चाहते हैं तो आने वाले परिणाम का दायित्व भी आपको वहन करना पड़ेगा।

प्रश्न यह भी है कि मूल्य विघटन का आघात सह कौन रहा है, जवाब है बड़ी पीढ़ी। इस आघात को देने की पूरी की पूरी जिम्मेदारी नयी पीढ़ी की है। संवेदनात्मक स्तर पर अगर देखें तो लूजर पुरानी पीढ़ी है, क्योंकि खून उसी की भावनाओं का अपेक्षाकृत अधिक हुआ है और नयी पीढ़ी स्वयं को गेनर मानकर खुश है, परंतु अगर हम यह मानें कि सारे का सारा दोष नयी पीढ़ी का है तो भुगतना उसे ही पड़ेगा। आज नहीं तो कल। बड़ों का साया पूरी तरह उठ जाना किसी भी तरह मंगलमय नहीं है। छोटी-सी जिंदगी में सारे अनुभव व्यक्ति स्वयं नहीं कर सकता। अपने से बड़े लोगों के अनुभव का भी लाभ उठाना जीवन में कामयाबी लाता है और यह अहसास जब नयी पीढ़ी को होगा तो वे हितकारी परंपरा से प्राप्त मूल्यों के निर्वहन मे पीछे नहीं रहेंगे, परंतु तालमेल तो दोनों ही पीढ़ियों को बैठाना पड़ेगा। यह बात समझनी पड़ेगी कि मनुष्य का अस्तित्व तालमेल और समन्वयात्मक रवैये से ही बचेगा। यह भी सोचना पड़ेगा कि पुरानी पीढ़ी कहीं अपनी सुरक्षा की भावना के तहत मूल्यों की दुहाई तो नहीं दे रही है।

तथापि मूल्यविहीन होकर तो जीवन गुजारा नहीं जा सकता। मूल्य तो रहेंगे, बदलेंगे, नये बनेंगे। यह बात अलग है कि वे मंगलमयी परम्परा में से निकलकर आयें या नयी पीढ़ी की व्यस्तता भरी जिंदगी के अनुभवों से। दोनों ही तरफ से स्वीकार भाव जन्मेगा तभी नयी नैतिकता का सुंदर क्रिस्टल तैयार होगा। यह भी हो सकता है कि संवैधानिक नैतिकता ही कोई रूप धारण करे, परंतु यह भी सच है कि कानूनी नैतिकता स्थायी नहीं हो सकती। स्थायित्व तो भावनात्मकता में जन्मे मूल्यों में आ सकता है। मुझे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यकीन है कि तर्कयुक्त भावनात्मकता ही कोई रूप धारण करेगी। इस बिन्दु पर मुझे गाँधीजी के विचार अत्यधिक महत्त्वपूर्ण लगते हैं। वे ईश्वर के साकार रूप को नहीं मानते इसलिए सत्य को उसका प्रतिरूप मानकर सत्य की सेवा पर अटल रहना मनुष्य का धर्म मानते हैं। गाँधीजी धर्म या ईश्वर की अनुभूति को नैतिक अनुभूति कहते हैं और यह भी स्वीकार करते हैं कि सभी युगों के लिए वैध-निरपेक्ष नैतिकता जैसी कोई चीज नहीं है और सापेक्ष नैतिकता ही हमारे जैसे अपूर्ण मानवों के लिए निरपेक्ष जैसी है। इस सत्य को अपने भीतर समेटकर चलने वाली नैतिकता को पाने का एकमात्र उपाय प्रेम है, क्योंकि प्रेम सृजनात्मक एवं ऊर्जात्मक तो है ही अहिंसात्मक भी है। हालांकि आज के संसार में नैतिकता के इस विचार को पूरे निहितार्थों सहित क्रियान्वित करना कठिन है, परंतु समझना कठिन नहीं है और शक्ति पर आधारित व्यवस्था को चुनौती भी इसी रास्ते पर चलकर दी जा सकती है।

प्राचार्य,
मीरा कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय
संगरिया (राजस्थान)

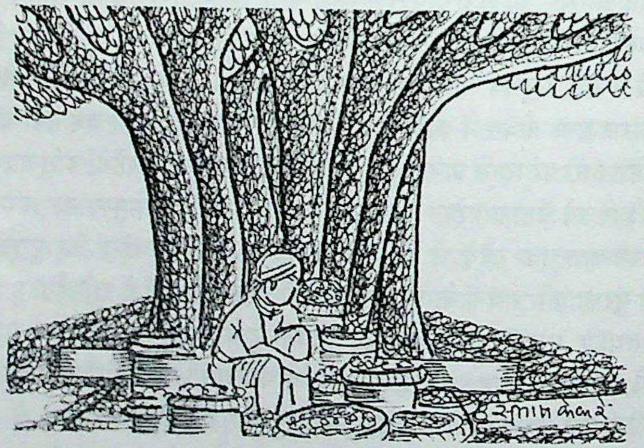

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पुरानी कमीजें

● अरुण कुमार 'असफल'

उसे इतने साल बाद आया जानकर अम्मा उत्साहित हुई और मैं सतर्क हो गया। एक साल तो उसे नौकरी करते हो गया था, पर उसके पहले से ही उसने बहुत सालों से घर आना बंद कर दिया था। मुझे नहीं याद कि अंतिम बार उससे कब मिला था, पर आज उससे मिलते ही आरंभिक मुलाकातों की स्मृतियाँ उसी तरह उभर आई, जैसे किसी शिला पर खुदे लेख धुलपुँछ कर चमकते हैं। भेली वाली घटना स्मृति के शिलालेख पर गहराई तक खुदी हुई ऐसी ही एक घटना थी, जो अब धुलपुँछ कर चमकने लगी थी।

तब मैं गली के और बच्चों की तरह बेसिक प्राइमरी पाठशाला में पढ़ा करता था, जिसे गली के बाहर वाले गदहिया स्कूल बोला करते थे। हम अमीर न थे और न ही उस स्कूल में अमीरों के बच्चे पढ़ा करते थे। हाँ, हम दो-तीन बच्चों की हैसियत इतनी थी कि हमारे बस्ते में टिफिन रखा जाता था, जबकि अधिकतर बच्चों की खुराक स्कूल में बँटने वाले चने-चबेने, दलिया इत्यादि ही होती। मेरा टिफिन बाक्स भी क्या था, ढीला-ढाला ढक्कन वाला, जगह-जगह पिचका ऐल्युमिनियम का डिब्बा था, जिसे कभी पराठे या घी चुपड़ी रोटी सहजने का अवसर न मिला था। मैं बहुधा रोटी चीनी, मीठी रोटी, भेली और कभी-कभार रोटी-सब्जी ले जाता था, जबकि कुछ बच्चे ऐसे भी थे, जो अखबार में लपेट कर रोटी, कभी भिगोये हुये या भुने हुये चने या सत्तू लाते थे। उस दिन अम्मा ने रोटी के साथ भेली रखी थी। भेली भी इतनी सख्त थी कि उसके सामने पत्थर भी मुलायम हो। दाँत से काटते-काटते कमबख्त छिटक कर बेंच के नीचे गिर गयी। उन दिनों मध्यांतर में खाना खाने से ज्यादा जरूरी होता गेंद तड़ी खेलना। हबड़-तबड़ रोटी को पानी से निगलकर मैं भागने ही वाला था कि ठिठक गया। पीछे के किसी पैर ने भेली अपने अगूंठे में दबाकर खींच लिया।

मैं पीछे की बेंच को कनखियों से देखते हुए बाहर आया। पीछे वही बैठा था। अपने अंदर के कौतुक को शांत करने के लिए मैं खेल छोड़कर पानी पीने के बहाने अंदर भी आया तो उसे चुपचाप अकेले में बैठकर भेली भुभलाते हुए देखा। फिर मैंने अपने दो-तीन और दोस्तों को दिखाया तो वे भी ही-ही हंसने लगे। पीठ पीछे काफी समय तक हम

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लोग उसे 'पेटहा' बोलते थे। कोई-कोई तो उसके सामने ही बोल देता 'ऐ पेटहा भेली खईबा' वह खीसें निपोरता रहता।

उसका पिता तो बहुत पहले से ही हमारे मोहल्ले में आया करता था। वह कंधे पर तिनपैरा लटका कर तथा हाथ में पुराना एवं पॉलिश से बदरंग थैला लेकर सप्ताह में कम से कम एक बार मेरे मोहल्ले का चक्कर अवश्य लगाता था। उसकी एक आवाज 'जूता-वूता बनवा लोऽऽ' पर घरों के दरवाजे खुलने लगते और अपने टूटे-पुराने चप्पलों को हाथों में लेकर लोग बाहर आ जाते। तब उस गली में सारे घर खपरैल के थे और हर घर में एक बरामदा होता था। घरों के फर्श कच्चे होते थे, जिनकी लिपाई-पुताई गोबर से होती थी। उसका पिता किसी एक घर के बरामदे में बैठ जाता था और आस-पास के घरों से चप्पल-जूते बटोर लाता था। जाड़ों में जब सुबह-सुबह गुनगुनी धूप होती तो वह किसी भी सूर्य-उन्मुख बरामदे में बैठ जाता था या सड़क के किनारे ही बैठ जाता, जहाँ धूप लम्बे समय तक टिकी रहती। यूँ तो उसे किसी भी बरामदे में बैठने से परहेज न था पर इतना तय था कि हमारे घर का छोटा-सा भी काम होता तो वह अपना ताम-झाम हमारे घर में ही रखता और अन्य घरों से जूते-चप्पलें इकट्ठी कर हमारे बरामदे में रखता जाता। जिन घरों के दरवाजे नहीं खुले होते थे, उन घरों के सामने एक बार हाँक और लगा आता- 'जूता-वूता बनवा लोऽऽ' तथा कुछ जूते और लाकर हमारे बरामदे में पटक देता। फिर अपने मटमैले थैले से एक पुराना चमड़ा निकालकर आसन बना लेता और उसके बाद वह धीरे-धीरे करके थैले से अन्य सामान भी निकालता जैसे- रूखानी, सूआ, धागों की गट्टी, पकाया हुआ चमड़ा, जूतों की सोल इत्यादि। फिर वह तल्लीनता से तिनपैरा पर जूते-चप्पलों की ठोका-पीटी करता। वह अपने काम में इतना मग्न रहता कि अगर मेरी अम्मा चाय रखकर चुपचाप चली जाती तो चाय ठंडी हो जाती और उसे पता भी न चलता। इसलिए अम्मा को अक्सर बोलना पड़ता-'परदेसी चा पी लाऽऽ' और वह सारे कार्य छोड़कर चाय पीने लगता। चाय पीने से पहले वह कभी-कभी एक गिलास पानी की फरमाइश भी करता था और अम्मा उसकी फरमाइश पूरी भी करती थी। इतना तो था कि प्यास लगने पर अन्य घरों में पानी मयस्सर हो सकता था, लेकिन यह भी तय था कि यह पानी उसे चुल्लू में ही नसीब होता। उस गली में कोई बाभन, ठाकुर या बनिया नहीं था। दो घर हमारे जैसे कायस्थों के थे, तीन घर ठठेरों के थे, जो बर्तनों को साइकिलों पर लादकर या जगह मिलने पर फुटपाथ पर बेचते थे। दो घर पठेरों के थे, जो शादी-ब्याह से संबंधित सामान जैसे-बंदनवार, सेहरा, वरमाला तैयार कर बड़े दुकानदारों को बेचते थे। एक घर धोबी का तथा एक घर भड़भूजे का था। यह इत्तेफाक ही था कि इन सभी के धंधे भट्ठियों पर आधारित थे। इन की भट्ठियाँ अक्सर धधकती रहतीं, जिससे गली के उस सिरे से गुजरने पर गर्मी का एहसास होता था। इस तरह से यह गली ऐसे ही निम्नवर्गीय परिवारों से आबाद थी, जिनकी सामाजिक एवं आर्थिक हैसियत अच्छी नहीं थी। उस गली में मेरे पिताजी ही

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
एकमात्र ऐसे थे, जिनकी सरकारी नौकरी थी। हमलोग जिस घर में रहते थे, वह पहले एक लुहार का था। गाँव में बँटवारा होने के बाद पिताजी को अपने हिस्से की जमीन बेच कर जो पैसा मिला था, उससे यह घर खरीदा था। उस वक्त मैं गोद में था। उस गली में हमारी स्थिति विचित्र थी। आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। यदि होती तो उस गली में रहने की नौबत न आती और खपरैल वाला कच्ची ईंट का घर न होता, पर अन्य लोगों से बेहतर स्थिति इसलिये थी कि पिताजी की नौकरी बंधी थी और महीने के आखिर में तनख्वाह मिलना निश्चित रहता था। आधुनिकीकरण या विकास के नाम पर उस गली में जो कुछ भी होता उसकी शुरुआत मेरे घर से होती। मसलन यदि अन्य सबके घर देसी खपरैल से छाजे गये थे तो हमारे घर में इलाहाबादी खपरैल से सीमेंट द्वारा चिनाई होती। फ्लश का लैट्रिन तो पिताजी ने घुसते ही बनवा लिया था, जबकि कुछ घरों में अभी भी उठाई सिस्टम का पाखाना था। तो कुछ लोग बमपुलिस को शौच के लिये जाते थे। बिजली भी सबसे पहले हमारे घर ही आई। जाति में भी हम ठहरे कायस्थ। ब्राह्मण-ठाकुरों जैसी सामाजिक हैसियत तो न थी फिर भी गली में बसने वाली अन्य पिछड़ी जातियों के मुकाबले हमारी स्थिति बेहतर जरूर थी। यही हाल मेरे पिताजी की नौकरी का भी था। पिताजी बिजली विभाग में लाइनमैन थे। अर्थात चतुर्थ श्रेणी में तो न थे, लेकिन तृतीय श्रेणी में सबसे निचले पायदान पर थे। उन्हें जनता की शिकायत पर आधी रात, बरसात, आँधी-तूफान या कड़ाके की ठण्ड में कभी भी इधर-उधर दौड़ना पड़ता था। ऐसे लोगों से आबाद गली में उसके पिता परदेसी को चाय तो दूर, गिलास में पानी भी नसीब न होता था। इसीलिये अन्य घरों के बनिस्पत हमारे घर बैठने में उसे ज्यादा सुकून मिलता होगा।

जब वह परदेसी के साथ पहली बार हमारे घर आया तब जाकर पता चला कि अरे यह तो परदेसी का लड़का है। मुझे बहुत खुशी हुई और जब तक उसका पिता उस गली में काम करता रहा हम दोनों उस गली में खूब खेलते रहे। उसे बिल्कुल मेरी कद-काठी का देख अम्मा को भी खुशी हुई। अब मेरी पुरानी कमीजों को सार्थक गति देने का रास्ता जो उन्हें मिल गया था। अम्मा झट से मेरी दो पुरानी कमीजें लाईं, कमीज देखकर उसकी आखें चमक उठी थीं। ठीक उसी तरह उसके पिता की आँखें मेरे पिता की पुरानी कमीज को पाकर चमकतीं। उसके पिता को यह बात जानकर खुशी हुई थी कि मैं उसके बेटे के साथ पढ़ता हूँ। वह याचना भरे स्वर में बोला-

"बाबू एकरा खियाल रखिया।"

मैंने बड़प्पन का भाव लिये गर्दन हिलाकर उसे बेफिक्र किया था। यह बात दीगर थी कि पढ़ने-लिखने के मामले में वह हम लोगों से कहीं आगे था। उसकी याद्दाश्त काबिले तारीफ थी। कई बार उसकी कापियों से नकल मार कर हमलोग गुरु जी से शाबासी पा लिया करते थे। लिखावट में तो उसका कोई जोड़ न था, लेकिन फिर भी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
हेडमास्टर की बेंत सबसे अधिक उस पर ही बरसती। कभी न नहाने पर, कभी नाक बहते रहने पर, कभी नाखून बढ़े होने पर तो कभी दूसरे की शैतानियों की सजा के रूप में। परीक्षाओं में उसकी कोई पोजीशन न आती। जब भी किसी परीक्षा का परिणाम आता तो हम गिने-चुने कुछ लड़के एक से पाँचवीं पोजीशन पर आते। उससे तो पाँच क्या करीब पन्द्रह-बीस बच्चे ऊपर रहते। एक तरह से वह पास भर ही हो पाता। इतनी तीक्ष्ण बुद्धि एवं सुंदर लिखावट वाला नंदलाल पास भर ही क्यों रह जाता है यह हम सभी बच्चों के लिये रहस्य की बात थी, पर वह उसी में खुश रहता और तो और हर बार पास होने पर उसका पिता एक दोना जलेबी लेकर आ जाता और कृतज्ञता भरे स्वर में यह कहना न भूलता-

''बाबू येह बार भी एकरा खियाल रखिया''

वह इस गलतफहमी में रहता कि हम उसके बेटे का विशेष ख्याल रखते हैं, जबकि था उल्टा ही। पढ़ाई-लिखाई के मामलों में वह मेरे से बीस ही था भले ही गुरु जी की बेंत उस पर ज्यादा पड़ती और इम्तिहान में उसी गुरुजी के हाथों उसे कम नम्बर मिलते।

उसकी सुंदर लिखाई का कोई प्रशंसक न था इसलिये हमें कोई रश्क भी नहीं होता था। फिर भी एक ललक हमेशा बनी रहती कि काश! हमारे भी हाथ ऐसे साध जाते कि अक्षर मोतियों जैसे चमकते। एक दिन मेरे बार-बार दुखड़ा रोने पर उसने सलाह दी कि नरकट की कलम से लिखने से मेरी भी लिखावट सुंदर हो जाएगी।

''नरकट कहाँ मिलेगा?''

''हनुमानगढ़ी के पास...झाड़ी में''

एक दिन जब वह मेरी कमीज पहने पहली बार स्कूल आया तब, मैंने उसे हनुमानगढ़ी चलने का आग्रह किया। वह मेरे आग्रह को टाल न सका। स्कूल खत्म होते ही मैं उसके पीछे-पीछे हनुमानगढ़ी चला गया। वहाँ दूर तक नरकट की पीली झाड़ियाँ फैली थी। वह झाड़ियों में अंदर घुसता चला गया और मैं उसका अनुसरण करता रहा, पर कुछ देर चलने पर मुझे ठिठकना पड़ा। वहाँ चारों ओर टट्टियां ही टट्टियां फैली थीं। मैं नाक दबाकर वहीं खड़ा हो गया और वह आगे बढ़ता गया। नरकट की झाड़ियों में उसके द्वारा पहनी गई मेरी कमीज इधर-उधर डोलती रही। थोड़ी ही देर में वह नरकट की दो-तीन लम्बी टहनियाँ लेकर आता दिखा।

''ईत्ता सारा! मेरी आँखें फैल गई।''

''मच्छी मारेंगे...का बूझे।''

वह हंसा तो उसके पीले मटमैले दाँत दिख पड़े। जब भी उसके पीले दाँत दिखते तो मुझे भेली की याद आ जाती। भेली का वह बहुत शौकीन था और उसके दाँतों में बहुत बार भेली चिपका रहता था। मुझे याद है कि जब मुझे पता चला था कि वह परदेसी का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
लड़का है, तब मैंने अम्मा से भेली वाली घटना का बखान चटखारे लेकर किया और हँस पड़ा जिस पर अम्मा बहुत नाराज हुई और मुझे डाँटा था कि मैंने उस दिन उन्हें यह बात क्यों नहीं बताई थी, जब वह पहली बार हमारे घर आया था। उसके बाद से ही अम्मा परदेसी की बेसब्री प्रतीक्षा करने लगी और जब वह आया तो उससे कहा-

''अगली मरतबा नंदलाल को जरूर ले अईहा''

अगली मर्तबा परदेसी नंदलाल को साथ लाया तो अम्मा की खुशी का ठिकाना न रहा। इस बार उनके हाथ में मेरी एक पुरानी कमीज तथा दूसरे हाथ में भेली थी। उसकी आँखों में फिर वही चमक कौंधी और अम्मा की खुशी और बढ़ गई। अम्मा फिर अंदर गई और एक साबुत गुड़ अखबार में लपेटकर परदेसी को दे दिया।

उसके बाद से जब वह मुझसे स्कूल में मिलता तो उसकी आँखें कृतज्ञता का भाव दिखाती फिर तो मैं उसकी आँखों में उस भाव को देखने का वैसा ही आदी हो गया, जिस तरह अम्मा उसकी आँखों में देखती और संतोष की साँस लेती। कई बार तो वह मेरा साथ पा लेने भर से ही कृतज्ञ हुआ लगता था और उसका लाभ भी मुझे खूब मिलता था। यह इत्तेफ़ाक था कि जिस दिन उसने मछली मारने की योजना बनाई थी, उस दिन भी उसने मेरी कमीज पहनी हुई थी।

शनिवार को स्कूल में उबला दलिया मिलता था, जो बिल्कुल सादा रहता था- नमक-चीनी रहित। जो बच्चे टिफिन नहीं लाते थे, वे अपने साथ नमक या चीनी जरूर लाते थे। मैं प्राय: टिफिन ले जाता था, इसलिये स्कूल में बँटने वाले इन खुराकों का मोहताज नहीं था, लेकिन उस शनिवार को मछली मारने की योजना बनाई थी, इसलिये मैं भी इंटरवल होने का बेसब्री से इंतजार कर रहा था। जब उबला दलिया बँटने लगा तो मैं भी पुराना अखबार लेकर लाइन में खड़ा हो गया। मेरे हाथ बढ़ाने पर दलिया बाँटने वाली दाई चौंक गई और मुझे औरों से ज्यादा दिया। वह भी चौंक गया-

''ईत्ता सारा! हमको तो तीन दिन में न मिले इतना।''

मैंने उसका हिस्सा देखा तो वास्तव में मेरा हिस्सा उसके हिस्से से लगभग तीन गुना था। मैंने उसे ढाढस बँधाया।

''इत्ता हम थोड़े न खाबे। तू ही ले लीहा।''

फिर हम इंटरवल के बाद ही स्कूल से फूट लिये। हम दोनों अपना बस्ता उठाकर रेलवे की पटरी के साथ भागने लगे। रेलवे स्टेशन से काफी पहले लोको वर्कशॉप के पीछे एक गंदा पोखर था, जिसके किनारों पर जगह-जगह जलकुम्भियों का जाल फैलना शुरू हो गया था। उसने पोखर के पास झाड़ी में छुपाई हुई नरकट की टहनी उठा ली। इसे उसने एक दिन पहले छुपा दिया था। फिर बस्ते से पतंग की डोर एवं पुराने तार का टुकड़ा निकाल कर काँटा बनाने में मशगूल हो गया। तब जाकर अहसास हुआ कि दुनियादारी के मामले में भी वह हम लोगों से अव्वल था। काँटे में फँसाने के लिये चारे का भी जुगाड़

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसने वहीं कर लिया था। केंचुए वहाँ बहुतायत में [illegible] थे। उसने केंचुओं को छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त कर लिया। वह केंचुओं को जब फच्च् फच्च् मारता और काँटों से खच्च मछलियाँ निकालता तो मैं अंदर तक हिल जाता और मेरी आँखें अनायास ही बंद हो जातीं, पर वह जिस निस्संगता से यह सब कार्य कर रहा था, उससे उसकी अन्दरूनी दृढ़ता ही उजागर होती थी। उस समय अमूमन हम सभी बच्चों की उम्र किसी जन्म प्रमाण-पत्र या अस्पताल के जन्म पंजीकरण पर आधारित नहीं होती थी। हेडमास्टर या माँ-बाप द्वारा मनमर्जी से जो उम्र लिखा दी जाती वही प्रामाणिक बन जाती। अत: प्राय: सभी बच्चों की उम्र घटा कर लिखाई हुई होती। किसी-किसी को तीन-चार वर्ष छोटा कर दिया गया होता था। खुद मेरी उम्र दो वर्ष घटा कर लिखाई गई थी, पर वह इस समय अपनी दर्ज उम्र से भी दुगनी उम्र का लग रहा था। उसने लगभग पाव भर मछली तो मारी ही थीं। सभी मछलियाँ एक सी थीं। बित्ते भर की चाँदी सी और आँखों को घेरे सुनहरी वलय वाली। इस बार उसने तय कर लिया था यह आखिरी मछली होगी और इसके बाद वह इन्हें पकाने की तैयारी करेगा। काम समाप्त करने की उत्तेजना में उसने काँटे को कुछ ज्यादा ही झटका देते निकाला, जिससे कीचड़ के छींटे उसकी कमीज पर गिर गये। मेरी आँखें फैल गईं और क्षण भर को लगा कि मेरी कमीज गंदी हो गई। मैंने अपना आपा खो दिया।

''इ का! गंदा कर दिये।''

वह सकपका गया और कुछ देर जड़वत बैठा रह। जरा भी नहीं लग रहा था कि यह वही है, जो कुछ देर पहले निर्ममता से मछलियों का शिकार कर रहा था। इस समय वह अपनी वास्तविक उम्र में था। उसने तुरंत कमीज उतार दी।

''हम धो देब।''

पश्चाताप भरे स्वर में बोलकर वह कमीज लेकर रेलवे केबिन पर लगे हैण्डपम्प पर चला गया। इस घटना के बाद से वह कई दिनों तक मेरे से भय खाता रहा।

कक्षा चार पास करते-करते मेरी कमीजों के प्रति उसका रवैया बदल गया था। अब मेरे कपड़े देखकर उसकी आँखें नहीं चमकती थीं, जबकि अम्मा उतना ही उत्साह एवं बड़प्पन का भाव लेकर कपड़े लाती थी। कक्षा पाँच की छमाही परीक्षा के बाद वह एक-दो बार ही आया होगा। मुझे याद है कि जब अम्मा एक निक्कर लेकर आई तो उसने बड़ी ही अनमनस्कता से उठाया था। कक्षा पाँच के बाद तो उसका आना ही बंद हो गया था। एक तरह से संबंध विच्छेद-सा हो गया था, क्योंकि कक्षा पाँच के बाद उसका दाखिला राजकीय इण्टर कॉलेज में हो गया था, जबकि मैं दाखिले की परीक्षा उत्तीर्ण नहीं कर पाया था और मुझे दूसरे स्कूल में प्रवेश लेना पड़ा था। उसके बाद में जानकारियाँ उसके पिता से मिलती रहती थीं। वह भी मेरे बारे में अपने पिता से अक्सर सूचना लेता होगा, क्योंकि उसका पिता मेरे से पढ़ाई-लिखाई के बारे में पूछताछ करता रहता था। नौवीं में आने के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
बाद हमारे विषय भी बदल गये थे। एक परिवर्तन और हुआ कि उसके पिता ने घर-घर चक्कर लगाना बंद कर दिया था। वह अब साहबगंज मण्डी की शुरुआत में एक विशाल सेमल के पेड़ की जड़ों के पास आसन जमाये रहता। जब मैं महीने का राशन-पानी लेने साहबगंज मण्डी जाता तो मौका निकालकर उससे हालचाल ले लेता। वहाँ पर नंदलाल से मेरी एक ही मुलाकात हुई थी। उसके बाद नंदलाल से मेरी मुलाकात ऐसे ही सरेराह हुई थी, जैसे एक बार पुस्तकों की दुकान पर तो एक बार बाजार में, जब वह दूर से ही हाथ हिलाकर चलता बना था।

हमारी गली में उसके पिता के चक्कर न लगाने से गली के लोगों पर कोई खास असर न दिखता था, क्योंकि गली के मुहाने पर ही एक दूसरा जूता सिलने वाला बैठने लगा था। वैसे भी इस उम्र तक आते-आते मुझे मरम्मत किये हुये जूते-चप्पल पहनने में शर्म महसूस होने लगी थी, पर अम्मा का पुरानी चीजों के प्रति मोह वैसा ही था जैसा कि अन्य उम्रदराज लोगों का होता है। वे अपनी चप्पलों को तब तक घिसती रहतीं जब तक वे मरम्मत लायक रहतीं। वे अपनी एवं पिताजी के जूते-चप्पलों को एक थैले में भरती रहतीं और दो-तीन माह में साहबगंज मण्डी का एक चक्कर स्वयं लगा आतीं। मुझे नहीं मालूम कि वे अपने साथ पुराने कपड़ों को वहाँ साथ ले जाती थीं या नहीं क्योंकि मैंने कभी उन थैलों की तलाशी नहीं ली। अम्मा को भी केवल तीन या चार बार ही वहाँ ले जाने का मौका मिला, क्योंकि उसके बाद परदेसी ने वहाँ भी बैठना बंद कर दिया था। फिर वहाँ वह बैठता होगा यह पता नहीं चल पाया।

चार बरस से भी ऊपर हो गये थे। जब एक दिन अचानक उसका पिता प्रकट हुआ, हाथ में एक डिब्बा मिठाई लिये हुये।

''नंदलाल के नौकरी के कागज निकल गईल बा।''

''उ काहे नहीं आया?'' अम्मा ने शिकायत की।

''गईल बा टरेनिंग मा। ...अइले पर भेजब।''

उसने बताया कि चार साल पहले उसने साहबगंज मण्डी के पास बैठना बंद कर दिया था और घर में सटाकर एक गुमटी लगा ली थी, जहाँ वह अपने बनाये हुये जूते बेचता था। उसने बताया कि अब उसके बेटे ने यह दुकान भी बंद करवा दी।

''नंदलाल पेंसन बांध देहलस है।''

कहकर वह हंस पड़ा।

पिता के आने के कोई एक बरस बाद वह भी उसी तरह प्रकट हुआ जैसे एक बरस पहले चार बरस लापता रहने के बाद उसका पिता प्रकट हुआ था। हम उसे तो भूल ही चुके थे, साथ ही साथ उसके पिता के एक बरस पहले वाली मुलाकात भी भूल चुके थे। कुछ समय तक तो मैं उसे पहचान ही नहीं पाया था और यदि उसकी जैसी आँखें किसी और की भी देखी होतीं तो बिल्कुल भी नहीं पहचाना पाता।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मैंने उसे बैठक खाने में बैठाया और अम्मा को उसके आने की सूचना दी। अम्मा तुरंत भागी-भागी बैठक खाने में आई तो उसने खड़े होकर नमस्कार किया। अम्मा ने उसका हालचाल पूछा और डांटा कि इतने सालों तक क्यों नहीं आता रहा। जवाब में वह केवल हँस रहा था। फिर अम्मा ने उसके पिता का हालचाल पूछा। अम्मा ने उसे सर से पाँव तक निहार कर मेरी ओर देखा और कहा-

"बिल्कुल तुम्हारे जित्ता।"

और फिर उसकी पगार पूछी। उसकी तनख्वाह मेरे पिता की तनख्वाह के लगभग बराबर थी। मेरी नौकरी अभी लगी नहीं थी। कुछ ट्यूशनों से जेब खर्च भर निकल पाता था। अम्मा कुछ देर खिसियाई-सी खड़ी रही। फिर अंदर चली गई। अम्मा अंदर चली गई तो मैं उसके सामने अकेला पड़ गया। मैं उसके सामने कुछ असहज-सा हुआ जा रहा था। उसकी आँखों की विशालता जो कभी मोहकता की वजह बनती थी, अब मुझे विचलित कर रही थी। कभी हम इन आँखों में एक खास किस्म की चमक देखने को व्याकुल रहते थे। अब उन आँखों में अजीब-सा रंग तैर रहा था, जैसे इस रंग में सारी पुरानी कमीजों का रंग घुला हो। अपनी असहजता को भरसक छुपाने की कोशिश करते हुए मैंने बातों का सिलसिला आरम्भ किया तो वहाँ भी समस्या आने लगी। वह उन दिनों की बात कर रहा था, जब हमारा साथ छूटा था। उसकी राजकीय इण्टर कॉलेज में नौकरी पाने तक की यात्रा ही उसकी बातों का विषय था, जबकि मैं उन पलों को कुरेद रहा था, जो हमने साथ-साथ बिताये थे। उसे तो समय के सहपाठियों के नाम तक याद नहीं थे। हार कर मैंने याद दिलाने की कोशिश की-

"मछली मारना याद है? वहीं लोको वर्कशॉप के पीछे पोखर में..."

उसने बहुत देर सोचने के बाद हामी भरी जैसे कि धुंधली-सी ही स्मृति हो, जबकि मुझे उस दिन की एक-एक घटना याद है। मुझे याद है कि उसने मछली धोने के बाद अपने साथ लाये सरसों की लुगदी में मछली लपेट कर आग में भुनी थी और मैंने पहली बार आग में भुनी मछली खाई थी। उसने बताया था कि उसके घर गोश्त वगैरह प्रायः भूनकर ही बनाते थे, क्योंकि इसमें तेल कम लगता है। शुरू में मैं उन मछलियों को खाने को राजी नहीं हो रहा था। जब मैंने आनाकानी की तो उसे लगा कि मैं उसकी कमीज पर कीचड़ का धब्बा लग जाने से नाराज हूँ, जबकि बात दरअसल यह थी कि मैं इन मछलियों की स्थिर आँखों से विचलित हो रहा था। मैंने कहा-

"आँखियाँ नोच दो"

तब उसने मछलियों की आँखें नोचते हुये कहा था-

"मछली आँख समेत खाये से तुहार आखियाँ सुन्न हो जाई...।"

आज उसकी बड़ी आँखें देखकर उसकी वह उक्ति भी याद आ गई पर अफसोस कि उसे कुछ भी याद नहीं। इस शख्स की याददाश्त शक्ति मेरे से कहीं ज्यादा थी और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
उसे मेरे से और बेहतर तरीके एवं और स्पष्ट तरीके से पिछली घटनायें याद होनी चाहिए उसे कुछ भी याद नहीं आ रहा था। यह भी मेरे लिये कम आश्चर्य की बात न थी। उसने कह ही दिया।

''पीछे का कुछ भी याद नहीं।''

ऐसा लग रहा था कि वह बड़े बेमन से यहाँ आया है। ऐसा भी हो सकता था कि उसका पिता कई दिनों से उसे हमारे घर आने को कह रहा हो और आज अन्ततः उसने अपने पिता की आज्ञा पूरी करने का मौका निकाल लिया हो। इस बीच अम्मा ने चाय ले जाने के लिये आवाज दी। अम्मा की यह आवाज स्कूल की उस घंटी जैसी लगी जो किसी नीरस क्लास की समाप्ति के बाद लगती है।

अन्दर अम्मा चाय के दोनों प्यालों एवं दालमोठ की प्लेट को ट्रे में रख कहीं चली गई थी। शुक्र था कि अम्मा ने नीले रंग के प्याले में ही चाय परोसी थी। ये नीले रंग के प्याले मेरे और अम्मा के बीच छिड़ी जंग के बाद मध्यस्थता के प्रतीक थे। अन्यथा मेरी क्या गत होती यदि अम्मा उसे और मुझे अलग-अलग प्याले में चाय देती? बचपन के दिनों में उसके पिता के चाय पीने के बाद जब अम्मा उस प्याले को अलग एक कोने में रख देती थी तो यह बात भले ही अटपटी न लगती हो, लेकिन अम्मा यह क्यों नहीं समझती कि दिन गुजरने के साथ मैं बड़ा भी हो रहा हूँ। भले ही अम्मा को जितना बड़ा होना था, वे हो चुकी हैं। पिछले साल जब उसका पिता परदेसी आया था तब अम्मा ने उसे प्रेमपूर्वक चाय पिलाने के पश्चात् प्याले को यथास्थान कोने में रख दिया था।

परदेसी के रहने तक मैंने अपने गुस्से को जब्त किया हुआ था। परदेसी के जाते ही मेरा जब्त किया हुआ गुस्सा फूट पड़ा, पर अम्मा अविचलित रही। उनका वही घिसा-पिटा दो टूक उत्तर था-

''और घर में तो लोग चुल्लू में भी पानी न देवे।''

तब मैंने पिताजी के सामने भी गुस्से का इजहार कर दिया। पिताजी कुछ समय मुस्कुराते रहे। मेरी कुढ़न बढ़ गई। मैं जब भी पिताजी के सामने अम्मा की इन हरकतों की शिकायत करता तो पिताजी संतों-फकीरों की तरह मुस्कुराते रहते। पिताजी की इस मुस्कुराहट में उनकी बेफिक्री छुपी हुई थी। पिताजी नौकरी में चूँकि निचले पायदान पर थे, इसलिये उनके अधिकतर मित्र निम्न वर्गीय एवं निम्न जातीय ही थे। वे तो हमारे घर पर ही अनेक बार एक ही हंड़ियाँ में बारी-बारी मुँह लगाकर ताड़ी पीते थे। मुझे याद है कि एकाध बार पिताजी ताड़ी पीते-पीते बैठक से हंडियाँ को लिये-लिये अंदर आ जाते और एक-दो घूँट अम्मा के सामने भी लगाते। उस समय ताड़ी पीने से पिताजी का चेहरा गुलाबी हो जाता था और आँखें सूज जाती थीं। अम्मा उन्हें देखकर कुढ़ती तो पिताजी लंपटों की तरह हँसते। पिताजी अम्मा से मानो यह कहते कि देख लो जब तुम्हारे सामने यह हाल है तो पीठ पीछे मैं क्या करता रहूँगा और यह सच भी था। ताड़ी के शौकीन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पिताजी भोर में उतारी गई ताड़ी पीने के लालच में कई बार छुट्टियों में अपने पासी दोस्तों के घर चले जाते थे। ये पासी दोस्त नौकरी करने के साथ-साथ ताड़ी उतारने का पुश्तैनी धंधा भी करते थे। पिताजी उनके घर ताड़ी पीते, खाना खाते और गप्पें लड़ाते। इस प्रकार से अपने दोस्तों में उनकी एक असन्दिग्ध छवि थी। उनके ऐसे दोस्तों को अम्मा अलग प्याले में चाय देती थी तो इसका न तो उनके दोस्तों पर और न ही उन पर कोई असर पड़ता था, बल्कि उनके एकाध दोस्त चाय पीकर खुद ही कोने में प्याले रख आते। मेरी शिकायत पर पिताजी मुस्कुराते तो उनकी मुस्कुराहट में यही बेफिक्री छुपी होती, पर इस बार मैं आरपार की लड़ाई लड़ने के मूड में था। मैंने पिताजी से कह दिया कि अम्मा अपने जानने वालों के साथ चाहे जैसा सलूक करें या आपके दोस्तों को चाहे जैसे ही चाय पिलायें, लेकिन मैं अपने दोस्तों के सामने अपनी छीछालेदर नहीं होने दूंगा। पिताजी को मेरे गुस्से की तासीर मालूम हो गयी थी और वे अगले दिन ही आधे दर्जन नीले रंग के प्याले ले आये थे। हम दोनों की उपस्थिति में पिताजी ने तय यह किया कि ऐसे दोस्तों की उपस्थिति में इन प्यालों में चाय परोसी जायेगी। अम्मा चुपचाप गर्दन हिलाती रहीं। गोकि उन्होंने जितने ऐसे अवसर आये समझौते का निर्वाह ईमानदारी से किया पर फिर भी हर बार अनिष्ट की आशंका अवश्य बनी रहती थी। इस वक्त भी मैं तनाव में था। आखिर था तो वह परदेसी का ही लड़का। इसलिये नीले प्यालों में चाय देखकर तसल्ली मिली। मैं चाय की ट्रे लेकर आगे बढ़ा कि अम्मा की पुकार आई।

''बेटा...जरा येहर आवा।''

मेरे कदम ठिठक गये। आवाज किसी खोह से आती-सी लगी। अम्मा ने फिर आवाज दी-

''तनिक इहर आवा न कुठरिया में...।''

मैंने फौरन ट्रे रसोई में रखी और बदहवास कोठरी में गया। मेरी तो हालत पतली हो गई। अम्मा के सामने एक संदूक खुली हुई थी और अम्मा मेरी एक कमीज उलट-पुलट रही थी। यह मेरी एक नई रेडीमेड कमीज थी, जो मैंने छोटे मामा की बारात में पहली बार पहनी थी, पर जिसे बारात की आतिशबाजी ने कहीं का नहीं छोड़ा था न जाने कहाँ से एक शोला उड़ता हुआ आया था और कमीज के सामने इतना बड़ा छेद कर गया कि उसे शहर के नामी रफ्फूगर का कौशल भी छुपा नहीं पाया। मन मसोस कर मैंने इसे जाड़ों में स्वेटर के नीचे पहनने के लिये रख दिया था।

''इ कमीज नंदलाल के दे देइ?''

अम्मा को मेरे बिगड़ते हुये तेवर का अहसास न था इसलिये जब मैं आग-बबूला होते हुये चिल्ला उठा-

''अम्मा क्या कर रही हो?'' तो डर के मारे अम्मा की पलक झपक गई।

''छोड़ो इसे।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मैंने अम्मा के हाथ से कमीज छीन कर संदूक में रख दी ओर संदूक को झटके से बंद कर दिया। अम्मा का चेहरा स्याह पड़ा हुआ था और मैं गुस्से में हाँफ रहा था। मैं कोठरी से बाहर निकलते-निकलते चौखट पर आकर रुक गया। गुस्सा चरम सीमा पर चढ़कर तुरंत उतर जाता है। अब मुझे ग्लानि हो रही थी। अम्मा से इतनी बुरी तरह पेश नहीं आना चाहिये था। आखिर है तो मेरी अम्मा ही। तभी कंधे पर अम्मा के हाथों के स्पर्श से मैं चौंक गया।

''नया बा न! महँगा है न! तू अबहिन ऐके पहिनवा न! येही लिये?''

अम्मा उल्टे मुझे सांत्वना दे रही थी।

''पर हम तो सोचली कि हमेसा तो ओके पुरान कमीज देहले हइ। ये बार कम से कम थोड़ा नई न दे देहिल जाये।''

'उफ' मैं किलस कर रह गया। अब मैं इन चौखटों पर अपना सर पीटूँ या नीले कपों में ठण्डी होती चाय की परवाह करूं।

23, सेक्टर-3, निर्माण विहार-III
विद्याधर नगर, जयपुर-302023

'अक्सर' का अगला अंक

(अक्टूबर-दिसम्बर, 2010)

जन्म-शताब्दी के अवसर पर

जनकवि केदारनाथ अग्रवाल

के कविकर्म पर केन्द्रित होगा।

लेखकों से अनुरोध है कि यथाशीघ्र अपनी रचनाएँ भेजें

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

 Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अनन्तरजात

● श्याम जाँगिड़

आज सोमवार था। मधुकरी के बाद उसने गायत्री जप किया। बाद में वह भागवत की पोथी लेकर बैठ गया। आश्विन की तीखी धूप डील को क्लांत कर रही थी। उधर सेवकराम ने प्रसाद (भोजन) तैयार कर लिया था। प्रसाद में आज गवार-फली की कढ़ी और चूरमा बना था। सेवकराम ने रसोई से निकलकर आवाज दी- 'महाराज भोग लगा दो', पर वह भागवत पुराण में डूबा हुआ था। सेवकराम को रुकने का संकेत किया। वह जो पढ़ रहा था उस अध्याय का डेढ़-पृष्ठ अभी बाकी था।

परमानंद गिरि महाराज के यहाँ लगभग सभी धार्मिक ग्रंथ रखे हुए थे। उसने थोड़ा-थोड़ा सभी को देखा, लेकिन उसने भागवत के अनुशीलन का निश्चय किया। कई दिनों से वह थोड़ा-थोड़ा इसे बाँच रहा था। संस्कृत वह कम जानता था, इसलिए श्लोक पढ़ने के बाद उसे हिन्दी अनुवाद पढ़ना होता।

'आदेश' गेट के पास एक उद्घोष हुआ।

धीरेश्वर ने ग्रंथ से नजर हटाकर उधर देखा। घासीराम मुनीम जी थे। उसने भागवत बंद कर दी और मुनीम जी की ओर हाथ जोड़े।

"...कहिए महाराज क्या हाल-चाल हैं।" मुनीम जी बोले।

"सब ठीक है...प्रभु की कृपा है।"

"क्या पढ़ रहे हैं?"

"भागवत...।"

"तब तो चाँदी ही चाँदी है महाराज- आप तो भागवत-कथा करना शुरू कर दो...बस- फिर बल्ले-बल्ले है।"

धीरेश्वर हँसने लगा "अभी कहाँ मुनीम जी, अभी तो काफी कुछ सीखना है...। लेकिन मुझे लगता है, ईश्वर यही चाहता है।"

मुनीम जी पास आकर बैठ गये। बैठते ही आश्रम के परिचारक से बोले- "सेवकराम, जा नीचे जीप से सामान ले आ...।"

सेवकराम नीचे चला गया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"...सुनाइये मुनीम जी, ...घर पर सब मंगल है?"

"आपकी कृपा है।...एक खुशहाली है! सेठ को पोता हुआ है। आपके लिए भेंट भिजवाई है...।"

"अच्छी खबर सुनाई आपने।"

...सेठ सोहनलाल भी कैसे श्रद्धालु हैं, धीरेश्वर ने अनुभव किया। हर माह यहाँ राशन-पानी भेजते हैं। ऊपर से यह भी पुछवाते हैं और किसी चीज की जरूरत हो तो बताइये। आश्रम में किसी भी वस्तु की कमी नहीं रहनी चाहिए। ...सेठ की तरह यह मुनीम जी भी पूरा श्रद्धा भाव रखने वाले जीव हैं। मुनीम जी खुद आकर देखते हैं-पूछते हैं। इन मुनीम जी ने ही उसे यहाँ रहने का अवसर दिलवाया। इन्होंने ही महाराज परमानंद गिरि से उसकी सिफारिश की थी। उसका सौभाग्य है, जो उसे एक तपस्वी संत की शरण मिली। वह मुनीम जी का कृतज्ञ है। वह उन्हें धन्यवाद देना चाहता है, पर साधु जीवन की मर्यादाओं में बंधा है।

"आपका मन तो लग रहा है न?" मुनीम जी ने पूछा।

"मन तो लगाना पड़ता है। मन तो चंचल है न! इसे तो नियंत्रित करना होता है। ...आपने तो देखा है, वहाँ लोहार्गल में खाकी अखाड़ा में तो साधु और भक्तों का आना-जाना लगा रहता था, ...यहाँ कोई नहीं आता। यहाँ तो एकांतवास है। शुरू में तो जी उड़ता रहा, पर शनैः शनैः काबू में आ गया। अब तो आदत पड़ गयी है...।"

"एक बात बताऊँ आपको, मुनीम जी बोले।"

"कहिए।"

"महाराज परमानंद गिरि जी सिद्ध महात्मा हैं। वे कुछ कहते नहीं अगले को, सब अपने आप हो जाता है। इनकी जो सेवा करता है, वह फायदे में रहता है। हमारे सेठ को देखो, जब से महाराज की सेवा कर रहे हैं, खूब कमा रहे हैं। इनके दोनों बेटे बंबई में शेयरों का काम करते हैं, निहाल हो रहे हैं। ...और आप जानते हैं बनिये को जब चाबी मिल जाती है तो वह उसे छोड़ता नहीं...।" मुनीम जी ने कहा और हँसने लगे। धीरेश्वर भी हँसने लगे। उसे अच्छा लगा। कई दिनों बाद किसी के साथ हँसना हो रहा था।

सेवकराम दो बड़े-बड़े झोले लेकर आ गया। एक सिर पर और एक हाथ में लटकाये हुए। उसने दोनों झोले धूनी के पास रख दिये। मुनीम जी ने एक झोले से मिठाई का डब्बा निकाला। फिर एक कंबल और नारियल निकाला। नारियल उन्होंने धूनी पर चढ़ा दिया और साथ में इक्यावन रुपये रख दिये। '...और यह आपके लिए है।' मुनीम जी ने एक कंबल और गेरूआं वस्त्र उसे देते हुए कहा।

धीरेश्वर को आश्चर्य हुआ। महाराज के साथ उसे भी मिल रहा है। यह सम्मान पाकर उसे प्रसन्नता हुई। लेकिन जाहिर नहीं की। केवल मुस्कराया। सेवकराम बाकी सामान उठाकर महाराज के कमरे में ले गया और थोड़ी देर बाद खाली झोले मुनीम जी को दिये।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

"हाँ, अब लाओ सेवकराम, भोग लगा दूँ।"

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

धीरेश्वर एक थाली में सजाए चूरमा और कढ़ी की कटोरी को लेकर शिवालय में चला गया। थाली अंदर रखकर किवाड़ बंद किये और हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। फिर ताली बजाकर किवाड़ खोल दिये। ऐसा ही उसने हनुमान जी के थान पर किया।

यह एक आस्था है। एक समर्पण भर है ईश्वर के प्रति और कुछ नहीं। बहुत से लोग खाने की थाली सामने आने पर हाथ जोड़कर भोजन शुरू करते हैं। मान्यता है कि ईश्वर को समर्पित भोजन विकार नहीं करता, लेकिन कुछ लोग बिना हाथ जोड़े ही खा लेते हैं, उन्हें भी विकार नहीं करता। अच्छे-भले रहते हैं। ऐसा धीरेश्वर पहले सोचता था। इस तर्क-वितर्क का समाधान वृंदावन में एक संत ने किया। उन्होंने बताया- "ठीक है, मैं भी मानता हूँ और सब जानते हैं कि भगवान नहीं खाते, लेकिन अन्न हमें जीवनी शक्ति देता है। हमारी क्षुधा शांत करता है। यह जीवन की अत्यावश्यक वस्तु है। उसका यदि आप आदर करते हैं तो बुरा क्या है? चलो आप ईश्वर को छोड़ो। उसे नहीं देना है हमें, पर जो खाना आपकी थाली में आया है, वह यूँ ही नहीं आ गया। उसे बनाने में किसी ने श्रम किया है, अपना मन लगाया है। कम से कम आप उसका तो सम्मान कीजिए।...और जो खाना बनाने वाली गृहिणी का सम्मान नहीं करते, उनके परिवार की हालत निश्चय ही खराब होती है। इसलिए बंधु भोजन को सम्मान देना पोंगा पंथी नहीं है।"

भोग लगाते हुए प्राय: उसे उस महात्मा की ये बातें याद आ जाती हैं। वह मुस्कुराता हुआ थाली लेकर आया और एक चुटकीभर प्रसाद धूनी को समर्पित किया। इसके बाद सबसे पहले मुनीम जी को प्रसाद जिमाया गया। इसके बाद सेवकराम पहाड़ी से नीचे उतर कर ड्राइवर को जिमाकर आया। सबसे बाद में उसने और सेवकराम ने प्रसाद ग्रहण किया।

मुनीम जी धूनी पर धोक लगाकर चले गये। उनके जाने के बाद धीरेश्वर को एक अचम्भा हुआ। ...प्रसाद तो दो आदमियों के लिए बना था, चार के लिए कैसे पूरित हो गया। वह काफी देर सोचता रहा। यह चमत्कार है या संयोग। शायद सेवकराम से ज्यादा बन गया होगा, जैसा कि आम तौर से थोड़ा अधिक बनता ही है, लेकिन एकदम दोगुना तो नहीं बनाता सेवकराम। उसे समझ में नहीं आया, यह कैसे हुआ! ...संभव है सभी ने कम खाया होगा...लेकिन कितना कम? ...चलो अच्छा ही हुआ, जात नहीं गयी, बात रह गयी।

आज उसका पूरा दिन आंनद से व्यतीत हुआ, लेकिन रात बड़ी डरावनी थी। रात के लगभग बारह बज रहे होंगे या बारह के बाद का समय हो सकता है। वह सदा की तरह बरामदे में दीवार के पास लगे तख्त पर सो रहा था। इन दिनों रात को हल्की-सी ठंड हो जाती है, इसलिए वह खेस ओढ़े सो रहा था। अचानक उसकी आँख खुली और उसने महसूस किया, आश्रम में कोई है! उसने चौक की ओर देखा। देखा तो सर्द हो गया। एक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

काली छाया उसकी ओर बढ़ी आ रही थी। शरीर में एक काँपती लहर दौड़ गयी। ...वह एकदम हतप्रभ और निढ़ाल। ...एक डर से भरा सूनापन, साँय-साँय करता हुआ। लगा अब इस क्षण के बाद कुछ घटित होने वाला है...शायद भूत है...यह इधर ही आ रहा है। हठात् पसीना छूट गया...।

वह काली डरावनी छाया बरामदे में आयी। फिर धूनी पर झुकी और पलटकर गेट की ओर बढ़ गयी। ...और गायब।

वह पसीने से एकदम तर। ...उफ! क्या बला थी यह। मारे भय के वह हिल भी नहीं सका। ...हे गुरु महाराज! ओह, अब याद आये गुरु। हिम्मत बटोरकर उसने खेस को परे फेंका। पसीने से बुरा हाल हो रहा था। फिर उठकर बैठा। लालटेन की मरी हुई रोशनी को देखा। शायद तेल चुक गया है। उसी समय शिवालय की ओर नजर गयी। वहाँ हल्की रोशनी थी। फिर एक भय ने उसे दबोचा। शायद वहाँ कोई है।

...अरे वाह! भगवान के दरबार में डर? धत्! वह उठा और शिवालय की ओर गया। अंदर जाकर देखा तो आटे के बने दीपक में एक बाती जल रही थी। शिवलिंग पर धतूरे और आक के फूल चढ़े थे। जलेरी से पानी टपक रहा था। ...इसका मतलब कोई पूजा करके गया है, पर इस समय आधी रात को? कौन है यह पुजारी जो रात को पूजा करने आया। पहले तो कभी ऐसा नहीं हुआ। पूरा सावन बीत गया, इतने मोट्यार-लुगाई आते हैं, लेकिन सब दिन में। यह इस घड़ी पूजा करने वाला कौन है? वह काफी देर शिवालय में स्तब्ध खड़ा रहा।

भारी कदमों से शिवालय की सीढ़ियाँ उतरा। भय अब भी फड़क रहा था। फिर उसने बरामदे में आकर लालटेन को नीचे उतारा। कमरे से तेल की पीपी लाकर तेल भरा। बत्ती ठीक की और जलाई। टॉर्च की याद आयी। ...लेकिन टार्च में सैल ही नहीं है। सैल यहाँ गाँव में मिलते नहीं और वह घासीराम मुनीम जी को कहना भूल गया। ...सुबह सेवकराम को भेजकर वहीं से मँगवाऊँगा।

उसे नींद नहीं आयी। यूँ अबूझ-अनजान व्यक्ति के आश्रम में आने से उसे असुरक्षा-सी महसूस होने लगी। हालांकि वह पूजा करके गया है, कोई अहित उसने नहीं किया, पर चोरों की तरह आना यहाँ के अधिकृत नियमों का अतिक्रमण तो है ही। इस तरह कोई क्यों आये? मारे खिन्नता के उसे ढलती रात में नींद नहीं आयी।

सुबह इस रात वाली घटना का जिक्र उसने सेवकराम से नहीं किया। यह सोचकर कि वह समझेगा, यह नया साधु तो डरपोक है। उल्टा उसकी हँसी उड़ाएगा। हाँ, उसने टॉर्च के लिए सैल जरूर मँगवा लिए। सेवकराम गाँव में पूछताछ करके किसी घर से दो बैटरी के बट्टे कबाड़कर ले आया।

दिन बीत गया और संध्याकालीन कार्यक्रम करवाकर सेवकराम अपने घर चला गया। उसने माला के सहारे समय बिताना शुरू किया। आज उसे सोना नहीं था। उसने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लालटेन को जान-बूझकर मंदा किया, ताकि आने वाले को पूरा भ्रम बना रहे। देर रात को वह खेस ओढ़कर लेट गया।

वही कल वाला वक्त रहा होगा। वह छाया आयी और सीधी शिवालय में चली गयी। शिवालय में प्रकाश फूटा। उसकी धड़कनें धक्-धक् हो रही थीं। यह डर के समीप होने की स्थिति थी, जैसे डर किसी कोष्ठक में है और वह बाहर खड़ा है, डर की संभावनाओं से आशंकित। ...थोड़ी देर बाद छाया बाहर आयी। सीढ़ियाँ उतरीं। उसी तरह बरामदे की ओर बढ़ी। उसकी धड़कनें बजने लगीं। छाया उससे आठ-दस फीट के फासले पर धूनी के पास आयी। धूनी पर झुकी और चली गयी। जाते वक्त एक मंद ध्वनि आयी, चूड़ियों के खनखनाने की। एक सन्नाटा-सा हुआ, यह सनसनी उसे बेध गयी। वह आतंकित हो गया, यह कोई चुड़ैल या भूतनी तो नहीं...?

वह टार्च जलाना भूल गया। टॉर्च पास में ही रखी थी। हिम्मत बटोरकर वह उठा और टॉर्च हाथ में लेकर गेट की ओर गया। वह छाया गेट से दूर ढलान में दिखी। दबे पाँव उसने छाया का पीछा किया। वह छुपकर उसे देखना चाहता था, इसलिए टॉर्च नहीं जलायी। एक बार फिर चूड़ियों की आवाज सुनायी दी, ठंडी रात में हुई हल्की-सी खनक। ...यह शर्तिया रूप से औरत है। पर है कौन? नीचे उतरकर छाया पहाड़ी की तलहटी में बनी हवेली में चली गयी। ...तो इस हवेली की है कोई महिला...! वह अँधेरे में धीरे-धीरे ऊपर आ गया। उसने टॉर्च अब भी नहीं जलाई।

...इस सुनसान पहाड़ी के आश्रम में रात के दूसरे पहर में औरत!! वह भय और कौतुक के बीच झूल गया। ...इस औरत को डर नहीं लगता। यह क्यों आती है रात को पूजा करने? वह तख्त पर बैठा सोचता रहा। शायद किसी विशेष कामनापूर्ति के लिए आती होगी। क्या है उसकी कामना...? क्यों कर रही है वह ऐसा निर्भीक अनुष्ठान? ऐसी अंधेरी रात में गाँव का कोई जवान व्यक्ति भी बाहर नहीं निकलता...और यह औरत निधड़क आ रही है! जबकि इन पहाड़ियों में कभी-कभी बघेरा आने का रौला भी फैलता रहता है। ...कैसी विकट निडरता है इस औरत में।

दिन उगा, पर कोई भी काम मन से नहीं हुआ। चित्त में एक अचिह्नी उचाटन। न ढंग से माला हुई न भागवत पाठ। गुरु आदेश से ग्यारह मालाएँ तो करनी ही थीं, पर केवल माला के मनके सरकते रहे। मुँह से गायत्री-मंत्र उच्चरता रहा, लेकिन चित्त कहीं और था, सुनसान रात में अकेली औरत।

रात फिर आ गयी। आज उसने निश्चय किया, यदि वह आयी तो उसे रोककर पूछेगा- तू कौन है? क्यों आती है, यहाँ इस वक्त? भजन-कीर्तन के बाद आश्रम निर्जन हो गया। सेवकराम सेवा के काम निबटाकर चला गया। बरामदे में लालटेन जल रही थी और वह उसकी प्रतीक्षा करने लगा। लेकिन अभी कहाँ, अभी तो नौ बजे हैं। वह तो बारह के आस-पास आएगी, अर्द्धरात्रि को। वह टहलने लगा और मन ही मन अपने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आपको तैयार करता रहा... उससे बात करने को। कभी वह पीठिका पर बैठता कभी धूनी के नजदीक लगे तख्त पर। एक बेचैनी ने उसे घेर लिया था। साथ ही एक भय भी सिर उठा रहा था। ...कहीं वह स्त्री झगड़ न पड़े। औरत जात का कोई विश्वास नहीं, कोई भी आरोप माथे मढ़ दे।

आखिर वह घड़ी आ पहुँची। वह दम साधे खेस ओढ़कर लेटा हुआ था। वह आयी, बिना किसी आवाज के चुपचाप एक भूतही छाया की तरह। आज उसने धूनी की तरफ देखा। लालटेन की बत्ती आज तेज थी और बरामदे में पीला उजाला फैला था। वह सीधे शिवालय में गयी और दीपक जलाया। कुछ देर वह शिवालय में रही। फिर सीढ़ियाँ उतरकर धूनी की ओर बढ़ी। तभी उसने टॉर्च जला दी। वह रोशनी के घेरे में ठगी-सी खड़ी रह गयी।

''कौन हो तुम?'' उसने ऊँची आवाज में पूछा। उत्तेजना से उसका कंठ स्वर भर्राया हुआ था। वह टॉर्च की रोशनी में खड़ी थी। वह उसके बोलने की बेचैनी से प्रतीक्षा करने लगा। उसके अबोलेपन से न जाने किन अबूझी आशंकाओं से धीरेश्वर का कलेजा धक्-धक् कर रहा था, लेकिन जल्दी ही वह हाथ जोड़कर उसकी ओर बढ़ी। उसने टॉर्च बंद कर दी। अब वह लालटेन के पीले प्रकाश में खड़ी थी। उसने उसे गौर से देखा। वह उसे पहचान गया। ...भिक्षाटन के समय गत सोमवार को इसे देखा था। उस बड़ी हवेली से निकलकर इसी सुंदरी ने भिक्षा दी थी। भिक्षा देते समय वह उसकी ओर एक 'मद' के साथ मुस्कुराई थी। उसने नजरें झुका लीं...कैसी महिला है यह। संन्यासी को इस तरह देख रही है।

उस युवती ने अब आगे बढ़कर धूनी पर धोक लगायी और धीरेश्वर के समीप जमीन पर उकडू बैठ गयी।

''तुम शायद नीचे वाली हवेली की हो।'' उसने कहा।

''हाँ महाराज।''

''इस समय तुम यहाँ क्यों आयी हो।''

''महाराज मुझे इक्कीस दिन तक शिव की पूजा करनी है।''

''रात को?''

''हाँ, आधी रात को।''

''इससे क्या होगा। ...पूजा तो दिन में भी हो सकती है।''

''किसी ने बताया है, यह गुप्त अनुष्ठान।''

''तुम क्या पाना चाहती हो।''

युवती चुप रही। कोई जवाब न देकर उसने नजरें झुका लीं। वह उसे देखने लगा...रात के इस सन्नाटे में एक युवती उसके कदमों में बैठी थी। एक उद्दीपन हुआ। ...इस निर्जन पहाड़ी पर मझ ठंडी रात में एक जवान लुगाई! ''बोलो, क्या चाहती हो?''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

धीरेश्वर संभल होकर बोला।
Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"महाराज मेरे संतान नहीं है। शादी को आठ वर्ष हो गये...मुझे संतान चाहिए।" युवती ने कहा और उसके पैर छुए।

"अरे, यह क्या कर रही हो।"

"मुझे आशीर्वाद दीजिए।" और उसने धीरेश्वर की एक पिंडली अपने दोनों हाथों में थाम ली। कोमल और ऊत्तप्त हाथों के स्पर्श से उसके पूरे शरीर में एक बिजली-सी दौड़ गयी। वह अवाक् रह गया। मुँह से कोई बोल नहीं फूटा। कुछ पल मौन ने जकड़ लिया।

"यूँ कहीं संतान मिलती है, कहीं इलाज करवाओ।"

"बहुत करवा लिया महाराज" उस युवती ने कहा। वह उसकी पिंडली अब भी थामे थी।

" ...आपका आशीर्वाद हो तो सब कुछ हो सकता है।"

इसके साथ ही उसने जैसे एक कदम और आगे बढ़ाया हो, वह उसकी पिंडली को थोड़ा-थोड़ा दबाने-सहलाने लगी। अब उसकी हथेलियाँ और गरम हो गयी थीं। ...शिव की पूजा कर रही है और आशीर्वाद उससे माँग रही है! कोई इस तरह आशीर्वाद माँगता है, पिंडली दबाकर। आखिर यह चाहती क्या है? उसने सोचा। ...शायद कुछ अलग, जो गलत है, अनैतिक है। इसे परे हटा दे धीरेश्वर...। एक द्वंद्व छिड़ गया उसके अंतर में, लेकिन कायिक चेतना के समक्ष बौद्धिक चेतना का पक्ष मुट्ठी में भरी रेत-सा फिसलने लगा। अब उस युवती ने दूसरी पिंडली दबानी शुरू कर दी। ...इस अनचाही सेवा से वह मतिमूढ़ हो गया। काया हावी होने लगी...। उसके कोमल हाथों का स्पर्श विद्युत तरंग-सा पूरे बदन में तरंगित होकर उसे कहीं बहा लिए जा रहा था। धीरेश्वर कुछ नहीं बोल पाया। जैसे शब्दों की सीमा चुक गयी हो। अब केवल मौन था। एक उन्माद भरा मौन-उत्तेजित करता हुआ। धीरेश्वर की साँसें बेतरह फूलने लगीं। एक नये-नवेले अनुभव ने उसे मोह लिया...।

अब वे दोनों ही मौन के आगोश में थे। न वह बोली, न धीरेश्वर। दोनों चुप। वह उठा और युवती की बाँहें पकड़कर ऊपर उठाया। अपने से अलग किया। धीरेश्वर ने दाईं ओर बढ़कर कमरे के किवाड़ खोले और अंदर चला गया। अंदर एक गद्दा लगा हुआ था। वह युवती भी उसके पीछे-पीछे आ गयी। ...दोनों ओर से ही मौन स्वीकृति! अब शरीर ही शरीर की भाषा में बात कर रहे थे, स्वतःस्फूर्त। धीरेश्वर निपट अनाड़ी था। उसे तो वह युवती ही उस आनंद-लोक में खींचकर ले गयी...।

जब दोनों बाहर आये तो धीरेश्वर ने युवती के कंधे पर हाथ रखा- "भगवान तुम्हें पुत्रवती बनाये! ...यद्यपि तुमने मुझे भ्रष्ट किया है, फिर भी तुम्हारा कल्याण हो।" वह न जाने किस पींग में बोल गया।

युवती ने लजाकर गर्दन झुका ली। फिर झुककर उसके चरण छुए और चली गयी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

...लेकिन धीरेश्वर के लिए छोड़ गयी ग्लानि से भरी पिचपिची-पंकीली तलैया, जिसमें लिथड़ा हुआ वह अपने आप से घृणा करने लगा। ...अरे यह क्या किया तुमने मूर्ख! तू अपने आपको संन्यासी कहता है- थूऽऽ...धिक्कार है तुम्हें पातकी...तुम्हें याद नहीं गुरु जी वह गोरख वाणी-

''अवधू! जोत जुगत से करणाँ, चारूँ कूँटाँ रमणाँ।
पंथ फकीरी बहुत कठिन है, धड़ सूली पर धरणां।।''

वह काँप गया। धच् से तख्त पर बैठ गया। ओह! बड़ा अनर्थ हुआ मुझसे। यह पाप कैसे धुलेगा? ...यह पाप! महापाप! उठकर उसने धूनी पर माथा टिका दिया और रोने लगा- गुरु महाराज...गुरु महाराज! यह कलंक कैसे मिटेगा।

धूनी से उठकर उसने स्नान किया। फिर धूनी पर लोबान जलाकर बैठ गया। आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे।

संयोग से दूसरे दिन गुरु महाराज का पत्र आ गया। लिखा था- ''मैं दिवाली से पहले आ जाऊँगा। आशा है आश्रम पर सब ठीक से है। तुम्हारी जप साधना निर्विघ्न चल रही होगी। प्रभु तुम्हारा कल्याण करे। -परमानंद गिरि।''

उसने चिट्ठी को माथे से लगाया और मन ही मन हर्षित हुआ। महाराज ने उसे क्षमा कर दिया है! मनुष्य अपने पक्ष में तर्क ही नहीं गढ़ता, कल्पनाएँ भी जोड़ता है।

दिनभर उसने अपने आपको व्यस्त रखा। शाम को कीर्तन भी कुछ अधिक किया, लेकिन ज्यों ही रात आयी। निविड़ एकांत। एक धुन-सी बजने लगी। महाराज की चिट्ठी के सहारे उसने मानसिक रूप से अपने आपको स्वस्थ घोषित कर लिया था। ...इस ठगनी माया से कौन बच पाया है? इस 'सूक्त' के तले उसने ग्लानि को दबा दिया। ...बड़े-बड़े ऋषि-मुनि नहीं बच पाये, विश्वामित्र, नचिकेता और तो और स्वयं ब्रह्मा जी भरी सभा में सरस्वती पर आसक्त हो गये थे। ...देवर्षि नारद? वे तो एकदम पागल हो गये थे, फिर तू तो है ही क्या? फिर एक 'सूक्त' और हाजिर हो गया उसकी स्मृति में- भय, भूख, नींद और मैथुन, यह चार तो जीवन मात्र की नैसर्गिक प्रवृत्तियाँ हैं।

''लेकिन संन्यासी को इन मूल-प्रवृत्तियों को काबू में करना होता है। न करे वह कैसा संन्यासी।''

''हाँ-हाँ, मैं काबू में कर रहा हूँ, करूँगा। अभी तो दीक्षा ही नहीं मिल पायी। मैं विचलित नहीं होऊँगा।''

ऐसे ही स्वगत तर्क-वितर्क चलते रहे, लेकिन आज भी वह निस्संग नहीं था। कल का सुख फिर अंगड़ाई तो ले रहा था- सूक्तों और ग्लानियों को किनारे करता हुआ। अवसर की उपस्थिति और अनुपस्थिति में बहुत अंतर होता है। रात के दूसरे पहर में ज्यों ही वह आयी वह उत्साहित नहीं उत्तेजित भी हो गया। पूजा के बाद जब वह धूनी के नजदीक आयी, तो आज के नर ने अपना स्वाभाविक रूप धारण कर लिया था। कल मादा जो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
निस्संकोच थी आज संकोचशील हो गयी थी। ...दोनों प्रकृति अनुरूप। ...और यही क्रम तीसरे दिन भी चला।

तीसरे दिन धीरेश्वर ने कमरे के बाहर आकर युवती से पूछा- ''तुम्हारा नाम क्या है?''

''नीलमणि''

उसे झटका-सा लगा। वह नीलम थी और यह नीलमणि। ...पंकज तू इस चक्कर में डूबेगा। अरे हत्भाग। तेरे को यहाँ से भी भागना पड़ेगा बेशर्म।

वह सावधान हो गया। वह आगे बढ़कर अपने तख्त पर बैठ गया। 'बैठो' उसने युवती से कहा। वह नीचे बैठ गयी।

''ऐसा है, कल से तुम अकेली मत आना, किसी को साथ लेकर आना।'' उसने कहा।

''किस को साथ लाऊँ? घर पर किसी को मालूम नहीं कि मैं यहाँ पूजा करने आती हूँ...।''

''तुम पढ़ी-लिखी लगती हो।''

''हाँ, मैं बी.ए. हूँ।''

''जो भी हो, अब अकेली मत आना, मेरी यह करबद्ध प्रार्थना है।''

''कल से तो मैं आऊँगी ही नहीं। कल ससुराल जा रही हूँ।''

''तुम्हारा अनुष्ठान पूरा हो गया?''

''हाँ, हो गया'' नीलमणि ने गूढ़ मुस्कान के साथ कहा और अपने चेहरे को दोनों हथेलियों से ढाँप लिया।

उसके इस कथन वह चकित हो गया।

नीलमणि ने उठकर धीरेश्वर के चरण छुए और हाथ जोड़े। फिर चली गयी।

नीलमणि के जाने के बाद उसके यह शब्द- ''अनुष्ठान पूरा हो गया।'' उसे गहरे रहस्य में डुबो गये। वह इक्कीस दिन का अनुष्ठान बता रही थी। इक्कीस दिन कहाँ आयी वह! ...क्या यही था उसका अनुष्ठान!!

इसके बाद नीलमणि आश्रम पर नहीं आयी। उसके अंतर में छुपी हुई जिज्ञासा भिक्षाटन के दिनों में उसे देखने की चेष्टा करती, पर वह हवेली में नहीं दीखी। संकोचवश वह उसका नाम लेकर उसके बारे में नहीं पूछ सका। शनैः शनैः बदलाव आया। अब जब भी उसके बारे में जानने की मंशा होती, उसे अपने अंदर से फटकार मिलती- ''जब तुमने उससे बचे रहने की कसम खा ली है, तो क्यों जानना चाहता है उसके बारे में...निकाल दे उस लीला को दिमाग से।''

पाणिनि कुटीर, काठमंडी, स्टेशन रोड, चिड़ावा (राज.) 333026

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शोध

‘सरस्वती’ में राजस्थान का लेखन

• डॉ. भवानीलाल भारतीय

हिन्दी में साहित्यिक पत्रिकाओं का आविर्भाव उन्नीसवीं शताब्दी में ही हो गया था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कवि वचन सुधा निकाली तो उन्हीं की मंडली के पं. बालकृष्ण भट्ट ने इलाहाबाद से हिन्दी प्रदीप का प्रकाशन किया। कानपुर से पं. प्रतापनारायण मिश्र के सम्पादकत्व में ब्राह्मण ने धूम मचाई तो मिर्जापुर के बदरीनारायण चौधरी प्रेमधन आनन्द कादम्बिनी के द्वारा रसवर्षा कर रहे थे। भारतेन्दु के अवसान के पश्चात् पं. राधाचरण गोस्वामी ने उन्हीं की यादगार में भारतेन्दु मासिक निकाला। ये सब व्यक्तिगत प्रयास थे। अब उन्नीसवीं शताब्दी के समाप्त होते होते 1900 में इलाहाबाद के इण्डियन प्रेस ने मासिक सरस्वती का प्रकाशन कर साहित्य जगत में नवीन क्रांति ला दी। प्रारंभ में सरस्वती के सम्पादन का दायित्व काशी नागरी प्रचारिणी सभा को सौंपा गया, जिसने सभा के संस्थापकों में प्रमुख बाबू श्यामसुन्दर दास की अध्यक्षता में एक समिति बनाई जो इस पत्रिका का सम्पादन भार वहन करती थी।

इस व्यवस्था में परिवर्तन तब आया जब सम्पादन की जिम्मेदारी पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी को सुपुर्द की गई, जिन्होंने मात्र हिन्दी सेवा को लक्ष्य में रखकर डेढ़ सौ मासिक की अपनी रेलवे की नौकरी को छोड़कर मात्र बीस रुपये का भत्ता लेकर सरस्वती का सम्पादन कार्य संभाला। आगे के लगभग दो दशकों तक सरस्वती और द्विवेदी जी पर्याय से रहे। यही वह युग था, जब कविता में ब्रजभाषा का चलन हुआ और कठोर, कर्कश तथा कर्णकटु समझी जाने वाली खड़ी बोली में लिखी कविताओं से मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय, रामचरित उपाध्याय तथा ठाकुर गोपालशरणसिंह ने धूम मचाई। द्विवेदी काल में ही प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी ने छायावादी काल की छटा को विकीर्ण किया। सम्पादन कार्य से आचार्य द्विवेदी जी के अवकाश ले लेने के पश्चात इस दायित्व को पं. देवीदत्त शुक्ल, पं. उमेशचन्द्र मिश्र, पं. पदमलाल पन्नालाल बख्शी आदि ने निभाया। फरवरी 1947 में पं. देवीदत्त शुक्ल ने सम्पादन कार्य से अवकाश ले लिया तो सम्पादकों के स्थान पर उमेशचन्द्र मिश्र के साथ इण्डियन प्रेस के संस्थापक एवं स्वामी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
हिन्दी प्रेमी (मूलतः बंगाली) बाबू हरिकेशव घोष का नाम आता रहा। अंततः सरस्वती का सम्पादक प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री तथा सिद्धहस्त लेखक पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी प्रसिद्ध साहित्यकार चतुर्वेदी द्वारिकाप्रसाद शर्मा के पुत्र को बनाया गया जो इस पत्रिका के प्रकाशन के अंत तक इस पद पर रहे।

सरस्वती के लेखक यों तो सरस्वती में प्रायः उत्तर भारत के सभी प्रांतों के लेखकों की रचनाएँ छपती थीं, किन्तु प्रधानता हिन्दी भाषी प्रांतों (तत्कालीन संयुक्त प्रांत, मध्यप्रांत व बिहार) के लेखकों की रहती थी। पंजाब के पं. सन्तराम बी.ए. तथा चन्द्रगुप्त विद्याशंकर भी प्रायः सरस्वती में लिखते थे। यदा-कदा महाराष्ट्र के हिन्दी लेखकों का कृतित्व भी इस पत्रिका की शोभा बढ़ाता था। तत्कालीन राजपूताना (आज का राजस्थान) विचारभिव्यक्ति तथा साहित्य सृजन की दृष्टि से हिन्दी भाषी प्रांत रहा, यद्यपि यहाँ के निवासी बोल-चाल में पृथक-पृथक बोलियों का प्रयोग करते रहे हैं। राजस्थान की इन बोलियों में प्रमुख मारवाड़ी है। मेवाड़ी तथा बागड़ी आदि इसी के रूप हैं। जयपुर की ढूँढाड़ी और कोटा क्षेत्र की हाड़ौती में असाधारण साम्य है जबकि भरतपुर, धौलपुर और करौली जिलों में विशुद्ध ब्रजभाषा का प्रयोग होता है। राजस्थान के सीमावर्ती क्षेत्रों में वहाँ के पड़ोस के राज्यों की बोलियों का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई देता है। यथा, सिरोही तथा जालौर की भाषा गुजराती के प्रभाव ग्रहण करती है, जबकि बाड़मेर तथा जैसलमेर की मारवाड़ी पर यत्र-तत्र सिंधी का प्रभाव लक्षित होता है।

बोलियों (उन्हें उपभाषा भी कहा जा सकता है) की बहुलता होने पर भी राजस्थान के लेखकों की हिन्दी को काव्य रचना, कथा लेखन, समीक्षा तथा पत्रकारिता का माध्यम बताया इसीलिए कि हिन्दी के द्वारा वे अपने विचारों को समस्त देशवासियों तक पहुँचा सकते थे। सरस्वती के पुराने अंकों पर दृष्टि डालने से विदित होता है कि गत शती के चौथे-पाँचवें दशक की सरस्वती में राजस्थान के कवियों, लेखकों, कथाकारों तथा समीक्षकों की रचनाएँ बराबर स्थान पाती रहीं। यहाँ किंचित विस्तार में जाकर हम सरस्वती में प्रकाशित राजस्थान के कृतिकारों की रचनाओं का परिचय प्राप्त करने की चेष्टा करेंगे। सर्वप्रथम कविता-काव्य रचना को लें। यों तो भक्तिकाल और रीतिकाल कहे जाने वाले युगों में इस क्षेत्र में उच्च कोटि के कवि (दादू, मीराबाई, सुन्दरदास, बिहारी, वृन्द आदि) हुए किन्तु वर्तमान काल भी इस दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध रहा है। श्री शम्भुदयाल सक्सेना मूलतः कोटा के निवासी थे, किन्तु उनका कार्यक्षेत्र बीकानेर रहा, जहाँ नवयुग ग्रन्थ कुटीर नाम से उन्होंने ग्रंथ प्रकाशन कार्य किया। बालोपयोगी साहित्य लिखने में सक्सेना जी को विशिष्टता प्राप्त थी। सितम्बर 1930 की सरस्वती में शम्भुदयाल सक्सेना की कविता 'वंचिता माँ से' छपी है। इसमें उस पुत्रवत्सला माँ की करुणापूर्ण अवस्था का वर्णन है, जिसका पुत्र मृत्यु का ग्रास बना है और इस शोक को झेलने में वह असमर्थ है।

वह युग राजस्थान में कुछ नवोदित कवियों के प्रकाश में आने का था। मूलतः

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
अलीगढ़ के किन्तु राजस्थान के जोधपुर नगर में रहने वाले रामचन्द्र मित्तल उदीयमान कवि थे। उनकी कविताएँ सरस्वती तथा अन्य पत्रिकाओं में प्रायः स्थान पाती थीं। 1940 की अप्रैल की सरस्वती में 'परिचय' शीर्षक उनकी एक भावनापूर्ण कविता छपी है। मेघराज मुकुल ने आगे चलकर राजस्थानी में लिखी अपनी ऐतिहासिक तथ्याश्रित कविता सैलाणी या सैनाणी (स्मृति चिह्न) के द्वारा अपरिचित ख्याति अर्जित की। इस कविता में हाड़ी रानी के बलिदान की गाथा को प्रस्तुत किया था जिसने पति को युद्ध में जाते समय हिचकिचाहट भरी मन:स्थिति में देखकर अपनी कोई याद में रखने लायक वस्तु की माँग करने पर स्वयं अपना शीश काट कर मुण्ड को सैनाणी (यादगार) के रूप में पति को भेज दिया था। इन्हीं मुकुल की कविता को 1946 के अगस्त मास की सरस्वती में स्थान मिला है। उसका शीर्षक है 'नीरद माला'। आलोच्य कविता में कवि ने पावस ऋतु में अम्बर में छाई बादलों की पंक्तियों का हृदयग्राही वर्णन किया है।

हिन्दी साहित्य के नवीन पाठक इस तथ्य से अपरिचित होंगे कि हिन्दी में गद्यकाल के प्रवर्तकों में यद्यपि राधाकृष्णदास तथा चतुरसेन शास्त्री की गणना तो होती है किन्तु जोधपुर के कश्मीरी परिवार में जन्मे तेजनारायण काक को भी प्रारम्भिक गद्य काव्य प्रणेताओं में गिनना होगा। तेजनारायण काक के पूर्वज जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह के शासनकाल में यहाँ आ गये थे तथा शासन के उच्च पदों पर थे। स्वयं तेजनारायण काक के चाचा पं. धर्मनारायण मारवाड़ राज्य के उप प्रधानमंत्री रहे तथा तेजनारायण ने एम.ए., एल.एल.बी. करने के पश्चात् राजकीय सेवा में उच्च पद प्राप्त किया था। स्वतंत्र भारत में वे आई.ए.एस. बने तथा जिलाधीश भी रहे। उच्च प्रशासनिक पदों पर रहने पर भी श्री काक का काव्य लेखन, साहित्य प्रणयन निरंतर चलता रहा। उनकी रचनाएँ सरस्वती, माधुरी, हंस, विशाल भारत आदि में प्रमुखता से स्थान प्राप्त करती थीं।

तेजनारायण काक की काव्य रचना का एक विशिष्ट पहलू था कविवर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कुछ कविताओं का हिन्दी में पद्यात्मक रूपांतरण। जीवनगान शीर्षक एक ऐसी ही कविता अगस्त 1946 की सरस्वती में प्रकाशित हुई है। आश्चर्य है कि कितनी सावधानी से काक ने बंगला पाठ की वाणी को सरल स्निग्ध, मसृण हिन्दी में ढाला है। महाकवि रवीन्द्र के एक अन्य गीत का हिन्दी रूपांतरण नवम्बर 1944 की सरस्वती में छपा जो 'आज सफल यह जीवन मेरा' शीर्षक का है। मई 1946 में छपी सरस्वती में महाकवि ठाकुर की कविता 'रात में और प्रात में' का भावानुवाद तेजनारायण काक द्वारा किया जाकर प्रकाशित हुआ। इसमें वसंत की शुभ्रनिशा तथा प्रात:काल की उषा बेला की पृष्ठभूमि में कवि का प्रणय निवेदन व्यंजित हुआ है। स्वच्छंद भावों को व्यक्त करने वाली उनकी रचनाएँ भी इस पत्रिका में छपी हैं। 'सूनापन मुझको खलता है' शीर्षक उनकी कविता कवि के एकाकीपन की वेदना को व्यक्त करती है। यह लघुगीत अप्रैल 1946 की सरस्वती में छपा था। तेजनारायण काक को शायद उतनी ख्याति नहीं मिली, जिसके वे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
अधिकारी थे, किन्तु उन्हीं दिनों में साहित्य क्षेत्र में उतरे मूलत: आंध्रदेशीय रांगेय राघव ने अपने अनतिदीर्घ जीवन में वाङ्मय की सभी विधाओं में लिखकर अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया। रांगेय राघव की मातृभाषा तेलुगु थी, किन्तु उनका परिवार भरतपुर राज्य के एक कस्बे वैर के एक वैष्णव मंदिर के पुजारी बनकर स्थायी रूप से राजस्थान के नागरिकों में परिगणित हो गये थे। यों तो रांगेय राघव ने उपन्यासकार, कहानी लेखक, समीक्षक आदि के रूप में अपनी प्रतिभा को आजमाया था, किन्तु काव्य रचना भी उन्होंने की है। मुक्त छन्द में लिखी गई उनकी एक शीर्षकहीन कविता मई 1946 की सरस्वती में छपी। मार्च 1947 की सरस्वती में उनकी चार कविताएँ छपीं। इन पर छायावादी शैली का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है।

राजस्थान की नारियों ने साहित्य क्षेत्र में प्रवेश किया तब तक आधुनिक साहित्य लेखन के क्षेत्र में अन्य प्रान्तों की महिलाओं ने अपना स्थायी वर्चस्व स्थापित कर लिया था। यदि काव्य की ही चर्चा करें तो सुभद्रा कुमारी चौहान, महादेवी वर्मा, सुमित्रा कुमारी सिन्हा आदि महीयसी महिलाओं का योगदान पुरुष कवियों से किसी भी प्रकार कम नहीं था। पुन: राजस्थान की बात करें तो कुमारी दिनेशनन्दिनी चौरड़िया (बाद में श्रीमती दिनेशनन्दिनी डालमिया) ने कविता तथा गद्य काव्य लेखन के क्षेत्र में अपूर्व योगदान दिया। कुमारी चौरड़िया राजस्थान के एक जैन परिवार के रूढ़िवादी वातावरण में पली-बढ़ी लड़की थी, किंतु लेखन कला से उन्हें स्वभावत: अनुराग था। गत शताब्दी के चौथे व पाँचवें दशक की साहित्यिक पत्रिकाओं में हम दिनेशनन्दिनी एम.ए. की कविताएँ प्राय: पढ़ते हैं। फरवरी 1945 के अंक में प्रियदर्शन शीर्षक कविता में प्रिय आगमन को कवयित्री ने 'आज मेरे भाग जागे' कहकर याद किया है। उनका एक अन्य गीत 'किसने तुमसे प्यार किया?' मार्च 1945 के अंक में प्रकाशित हुआ।

सरस्वती में प्राय: स्थान प्राप्त करने वाली एक अन्य राजस्थानी बाला प्रभा पारीक की व्यक्तिगत जानकारी यद्यपि सुलभ नहीं है तथापि सरस्वती में प्रकाशित उनकी रचनाओं से उनके साहित्यिक लेखन का सम्यक् परिचय मिल जाता है। गद्यगीत लिखने में उनकी निपुणता स्पष्ट दिखाई देती है। अगस्त 1945 की सरस्वती में उनका गद्यगीत 'क्षितिज के पार' शीर्षक से छपा। अगस्त 1946 के अंक में उनके दो गद्यगीत 'कौन' तथा 'उत्तर' शीर्षक से स्थान पाते हैं। प्रभा पारीक एकांकी नाटक भी लिखती थीं। उनकी एक नाट्यकृति 'दो पहलू' शीर्षक से मार्च 1946 के अंक में छपी। यह आश्चर्य है कि स्वातंत्र्योत्तर काल में हम प्रभा पारीक के लेखन को तलाशने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं।

अब बात कहानी लेखन की करें। जयपुर के लब्ध प्रतिष्ठित चित्रकार रामगोपाल विजयवर्गीय ने अपनी कलासाधना के द्वारा अपने जीवन काल में ही पर्याप्त ख्याति प्राप्त की थी। चित्रकार के रूप में उन्हें राष्ट्रव्यापी ख्याति मिली किन्तु साहित्य लेखन में भी उन्होंने अपना स्थान बनाया था। सरस्वती के तत्कालीन कहानी लेखकों में उनका

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उल्लेखनीय स्थान रहा। यह तो सत्य है कि कहानी लेखन में वह युग प्रेमचन्दोत्तर काल था, जिसमें भगवती चरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, यशपाल, जैनेन्द्र आदि की धूम थी। विजयवर्गीय की कहानियों में हमें कोई असाधारणता दिखाई नहीं देती। अक्टूबर 1946 के अंक में 'उसकी याद' शीर्षक से उनकी कहानी छपी, जो सामान्य स्तर की है। इसी वर्ष दिसम्बर के अंक में एक घोड़े तथा उसके बूढ़े साथी बैल की व्यथा-कथा को उकेरने वाली कहानी 'दो घड़ी के साथी' हमें प्रेमचंद की पशु जीवन को लेकर लिखी गई कहानी 'दो बैलों की कथा' की याद दिलाती है। विमल राय की फिल्म 'हीरा मोती' का प्लाट इसी कहानी पर आधारित था। मार्च 1947 में विजयवर्गीय की कहानी 'मेरी पत्नी' में नायक तथा उसकी अनपढ़, किसी हद तक फूहड़ पत्नी की परस्पर खींचतान का रोचक वर्णन है। सितम्बर 1947 में इनकी लम्बी कहानी 'मृत्युलोक' पौराणिक पात्रों का आधार लेकर एक फेंटेसी के रूप में लिखी गई थी। ऐसी अतिप्राकृत पृष्ठभूमि पर लिखी कहानियों का चलन बाद में बंद हो गया।

प्राय: पत्र-पत्रिकाओं का कलेवर विभिन्न विषयों से सम्बंध रखने वाले लेखों से भरा होता है। उसमें कुछ कविताएँ होती हैं। लेखों के अतिरिक्त सम्पादकीय तथा नवप्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा के स्तम्भ भी रहते हैं। सरस्वती के विगत युगीन अंकों में राजस्थान के लेखकों के ज्ञानवर्द्धक तथा रोचक लेखों को प्राय: स्थान मिलता था। लगभग अस्सी साल पहले सितम्बर 1930 की सरस्वती में शेखावाटी क्षेत्र के एक लेखक हनुमान शर्मा का एक रोचक लेख 'साँपों के भाट' छपा। इसमें लेखक ने राजस्थान के विभिन्न स्थानों में पाये जाने वाले साँपों को लेकर प्रचलित कथा-कहानियों तथा प्रवादों की चर्चा की है। एक अर्थ में यह लेख लोकजीवन की अभिव्यक्ति है।

साहित्य और भाषा, आर्थिक, राजनैतिक तथा व्यक्तिपरक लेखों को सरस्वती की इन पुरानी फाइलों में देखा जा सकता है। प्रो. शंकरसहाय सक्सेना, जो बाद में उदयपुर के राजकीय कॉलेज में अर्थशास्त्र के प्राध्यापक तथा राजस्थान के कॉलेज शिक्षा विभाग में निदेशक रहे, अर्थशास्त्र विषयक लेखों के प्रमुख लेखक थे। अप्रैल 1940 की सरस्वती में उन्होंने सहकारी समितियों के विषय में एक लेख दिया, जो मुख्य रूप से दूध तथा घी के क्रय-विक्रय से सम्बंध रखती है। राजस्थान की भाषा तथा यहाँ के लेखकों, कवियों आदि के परिचय वाले लेखों की अपनी विशेषता है। चौधरी शिवसिंह मल्लाजी चौपल ने अगस्त 1946 के अंक में राजस्थानी साहित्य की भाषा और उसके 'अप्रकाशित ग्रंथ' शीर्षक एक शोधपूर्ण निबंध प्रकाशित कराया। इसमें लेखक ने दो अप्रकाशित राजस्थानी काव्यों का परिचय दिया है। एक है 'मातृवंदना' जो किसी अप्रख्यात कवि बिदुर की रचना है। दूसरा ग्रंथ 'पिंगल कोष' जुगतपिंगल नाम वाले कवि की कृति है। इसे पर्यायवाची शब्दकोश कहना उपयुक्त है, क्योंकि इसमें वैदिक निघण्टु की शैली अपनाते हुए विभिन्न शब्दों के पर्याय दिये हैं। साहित्यिक शोध की दृष्टि से जनवरी 1945 के अंक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
में प्रकाशित रावत सारस्वत का कविवर ज्ञान विषयक परिचयात्मक लेखक विशेष महत्व का है।

राजस्थान के नागौर, चूरू तथा झुंझुनूं जिलों में कायमखानी मुसलमान रहते हैं, जो कुछ शताब्दी पूर्व तक चौहान राजपूत थे तथा शासकों के अत्याचारवश जिन्हें जोर-जबरदस्ती से मुसलमान बनने के लिए विवश किया गया था। कायमखानी लोगों ने फतहपुर (शेखावाटी) में नवाब के रूप में शासन भी किया था। हाल तक इन लोगों का खान-पान, वेशभूषा, बोलचाल प्राय: राजपूतों जैसी रही है। फतहपुर के नवाब नियामत खाँ ने 'जान' नाम से काव्य रचना की है। लेखक के अनुसार जान कवि के पचहत्तर ग्रंथों का पता चलता है, जिनमें कायम रासो, नलदमयन्ती, रतनमंजरी, बारहमासा, षटऋतु आदि प्रमुख हैं। इस मुस्लिम कवि की काव्य कृतियों में सूफी कवियों की शैली तथा भावों का रंग दिखाई देता है। सरस्वती के इन अंकों में इतिहास तथा पुरातत्व विषयक लेखों का भी प्रकाशन हुआ है। सितम्बर 1945 की सरस्वती में पं. हनुमान शर्मा का उड़ीसा के प्रसिद्ध सूर्य मंदिर, स्थापत्य कला के अद्भुत नमूने 'कोणार्क' का सचित्र परिचयात्मक लेख छपा है। इसी अंक में भरतपुर राज्य म्यूजियम के क्यूरेटर तथा प्रसिद्ध पुरातत्वविद् रावत चतुर्भुजदास चतुर्वेदी ने 1243 के एक शिलालेख का परिचय दिया है। यह शिलालेख उन्हें राज्य की तहसील बयाना के आसपास बिखरे प्राचीन खण्डहरों में मिला था। बयाना और उसका परिवेश पुरातात्विक अवशेषों की दृष्टि से महत्वपूर्ण तथा अन्वेषणीय है।

दक्षिण अफ्रीका में हिन्दी प्रचार का श्रेय स्वामी भवानीदयाल संन्यासी को जाता है, जो मूलत: बिहार के थे, किन्तु महात्मा गाँधी की भांति उन्होंने अपने जीवन के कई वर्ष दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों की सेवा में व्यतीत किये थे। वहाँ से लौटकर स्वामी भवानीदयाल ने अजमेर को अपना स्थायी निवास बना लिया तथा यहाँ की एक नई, आधुनिक बस्ती आदर्शनगर में प्रवासी भवन की स्थापना की। कालान्तर में प्रवासियों की समस्याओं को लेकर साहित्य प्रकाशन का यह केन्द्र बन गया। स्वयं स्वामी भवानीदयाल हिन्दी के उत्कृष्ट लेखक थे। उन्होंने अपनी आत्मकथा 'प्रवासी की आत्मकथा' शीर्षक से लिखी है, जिसका एक अंश सरस्वती के अप्रैल 1946 के अंक में सचित्र छपा है। स्मरण रहे कि अफ्रीका में रहते समय स्वामी भवानीदयाल का महात्मा गाँधी से निकट सम्बंध रहा था। प्रवासी भारतवासियों के अधिकारों की रक्षा एवं हिन्दी प्रचार जैसे कार्यक्रम दोनों का समान एजेंडा था। इस लेख में गाँधीजी के दो दुर्लभ चित्र दिये गये हैं। एक है सूट तथा टाईधारी मिस्टर एम.के. गाँधी का जब वे अफ्रीका में वकालत के लिए गये थे। दूसरा काठियावाड़ी पगड़ी तथा ऊँची धोती पहने महात्मा गाँधी का है, जब उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह का संचालन करते हुए स्वयं को काठियावाड़ी वेशभूषा में सज्जित कर लिया था। स्वदेशी पोशाक के प्रति उनके प्रेम का परिचायक था यह वेश।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अजमेर के प्रवासी भवन का विस्तृत परिचय जगतप्रकाश शर्मा ने नवम्बर 1944 की सरस्वती में दिया है। स्वामी भवानीदयाल ने दक्षिण अफ्रीका में वहाँ के गोरे शसकों की अनर्थकारी नीतियों का पर्दाफाश अपने लेख में किया जो 'दक्षिण अफ्रीका' में श्वेताङ्ग नीति का नग्न नृत्य (सरस्वती अगस्त 1946) शीर्षक से छपा। स्वामी भवानीदयाल का सम्पर्क उन सभी हस्तियों से रहा, जो विभिन्न देशों में बसे प्रवासी भारतीयों की समस्याओं में रुचि रखते थे। एक ऐसे ही व्यक्ति थे डॉ. लंकासुन्दरम् जिनका परिचय खुद स्वामी भवानीदयाल ने 'बृहत्तर भारत के संदेशवाहक डॉक्टर लंका सुन्दरम्' शीर्षक से अक्टूबर 1946 की सरस्वती में प्रकाशित कराया था।

सरस्वती के उन वर्षों के अंकों में राजस्थान की शैक्षिक तथा साहित्यिक गतिविधियों पर भी सार्थक लेख एवं टिप्पणियाँ छपती थीं। राजस्थान के प्रथम मुख्यमंत्री रहे पं. हीरालाल शास्त्री ने अपनी स्वर्गीया पुत्री शान्ताबाई की स्मृति में जयपुर के निकटवर्ती ग्राम निवाई के निकट कन्याओं के सर्वांगीण शिक्षण तथा जीवन निर्माण को लक्ष्य बनाकर वनस्थली विद्यापीठ की स्थापना की थी। आज तो यह संस्था एक विश्वविद्यालय का रूप ले चुकी है, जहाँ देश-विदेश से आई छात्राओं को उच्च कोटि की शिक्षा तथा पाठ्यक्रम से इतर प्रवृत्तियों में निपुणता प्राप्त कराई जाती है। नारी शिक्षा को समर्पित इस विद्यापीठ का सचित्र परिचय जुलाई 1945 की सरस्वती में छपा है।

एक युग में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन हिन्दी भाषा और साहित्य की अभिवृद्धि तथा उसके प्रचार-प्रसार में योग देने वालों के तीर्थ तुल्य होते थे। 1910 में पुरुषोत्तमदास टण्डन, महामना मालवीयजी के सहयोग से इस सम्मेलन की स्थापना की थी। 1944 में इसका अधिवेशन भूतपूर्व राज्य जयपुर की राजधानी, आज की गुलाबीनगरी में जयपुर में पंजाब के सनातनधर्मी नेता तथा हिन्दी के प्रखर समर्थक गोस्वामी गणेशदत्त की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। नवम्बर 1944 की सरस्वती के सम्पादकीय में इस अधिवेशन पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखी गई है किन्तु नरोत्तमप्रसाद नागर ने इस समारोह के संस्मरणों को एक अन्य लेख में लेखबद्ध किया है। इसमें उन्होंने साफ बयानी करते हुए स्पष्ट किया कि सम्मेलनाध्यक्ष गोस्वामीजी राष्ट्रभाषा हिन्दी के बड़े समर्थक अवश्य हैं, किन्तु हिन्दी को उनका कोई विशेष योगदान नजर नहीं आता।

पुस्तक-समीक्षा : प्रचलित परिपाटी के अनुसार सरस्वती में भी नवप्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा (रिव्यू) का स्तम्भ रहा है। यदा-कदा राजस्थान के लेखकों द्वारा लिखित पुस्तकें भी यहाँ समीक्षा की कसौटी पर कसी जाती थीं। उदाहरणार्थ- मई 1945 के अंक में बीकानेर के कहानी लेखक केसरीचंद सेठिया के कहानी संग्रह 'अपरिचित' की संक्षिप्त परिचयात्मक समीक्षा छपी है। जनवरी 1946 में बीकानेर के लेखक-प्रकाशक-कवि शंभूदयाल सक्सेना के काव्य संग्रह 'मनवन्तर' की समीक्षा का प्रकाशन हुआ।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समीक्षक की दृष्टि में ये कविताएँ हैं, जो [illegible] जनसाधारण से सम्बंध रखती हैं। अपने कथन की पुष्टि में समीक्षक के कविताओं के कुछ उदाहरण भी दिये हैं। जोधपुर के कवि तेजनारायण काक की चर्चा हम इसी लेख में कर चुके हैं। उनके एक काव्य संग्रह 'मुक्ति की मशाल' की समीक्षा मई 1946 के अंक में छपी। समीक्षक के उत्तर द्विवेदी युग के प्रसिद्ध लेखक थे देवीदयाल चतुर्वेदी मस्त। हिन्दी के पाठकों की नई पीढ़ी शायद इस नाम से भी अपरिचित है। चौधरी शिवसिंह चापल (बिलाड़ा, जिला-जोधपुर निवासी) ने मारवाड़ के एक सिद्ध संत जती भगा बाबा का जीवन परिचय एक लघु पुस्तक में दिया। जून 1946 की सरस्वती में इसका संक्षिप्त छपा है।

'बरार केसरी ' कहलाने वाले बाबू ब्रजलाल बियानी का कार्यक्षेत्र यद्यपि विदर्भ रहा, किन्तु मूलत: वे राजस्थान के थे। स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने के साथ-साथ वे हिन्दी के सिद्धहस्त लेखक भी थे। 'कल्पना कानन' शीर्षक से उनके भावात्मक शैली में लिखे गये निबंधों का संग्रह 'कल्पना कानन' दिसम्बर 1944 की सरस्वती में चर्चित हुआ है। रांगेय राघव ने निर्माण शीर्षक द्वैमासिक पत्रिका का सम्पादन 1945 में आरम्भ किया। इसमें प्रकाशित लेखों में प्रगतिशीलता का स्वर उभरा है। निश्चय ही सरस्वती, माधुरी, हंस, विशाल भारत आदि उस युग की प्रख्यात पत्रिकायें थीं। ये पुरानी फाइलें आज के पाठक का मनोरंजन करने में तो सक्षम हैं ही, उस युग के लेखन की प्रवृत्तियों से भी हमें परिचित कराती हैं।

8/423, नन्दनवन, जोधपुर

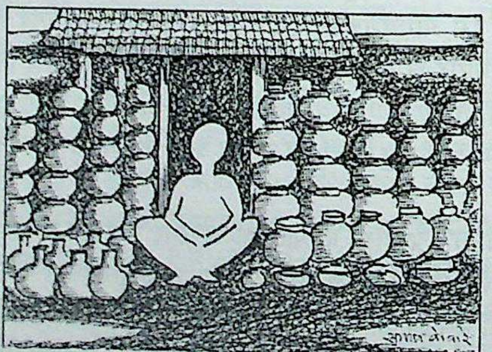

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भाषा से मुक्त होती कविता का नया स्वर : भगवत रावत

● माधवेन्द्र

भगवत रावत की कविता की नयी पुस्तक 'देश एक राग है' समकालीन कविता के नये रूप की पहचान कराने वाली रचना है। आज जबकि कविता से विश्वास उठता जा रहा है और कविता वैचारिक फ्रॉड अथवा कलात्मक अभ्यास मात्र के रूप में लगभग मशीनी रूप अख्तियार करती जा रही है, एक सीधी, सरल एवं बनावट से परे कविता के नये मानकों या नये मानदण्डों को स्थापित करती ये कविताएँ फिर से यह विश्वास पैदा करती हैं कि चलो कुछ तो ऐसे हैं, जो मानते हैं कि कविता मात्र शब्दों से खिलवाड़ नहीं है। शब्दों की बाजीगरी को कविता मानने वालों ने कविता के साथ धोखा किया है और कविता को जीवन, समाज एवं व्यवहार से दूर किया है। ऐसे कवि कविता के अपराधी हैं। समकालीन दौर के तमाम स्वनामधन्य कवि इस अपराध में शरीक हैं।

कविता सामान्य मानव का सहारा होती है। वह मनोरंजन मात्र नहीं है, मानवीय संवेदना को क्षरित करने वाली शक्तियों से लड़कर मानव को मानव से जोड़ती है, इसीलिए वह 'जन' की संवेदना के साक्षात्कार का माध्यम बनती है। 'देश एक राग है' इस अर्थ में समकालीन कविता के सामने चुनौती की तरह है कि इतनी सरल, साफ-साफ भाषा में भी कविता की रक्षा की जा सकती है। हिन्दी में कविता के भविष्य की रूपरेखा की तरह यह बताती है कि कविता बेईमानी से नहीं लिखी जा सकती- चाहे वह भाषा की हो अथवा अपने समय के साहित्य की राजनीति से हो। कविता जिस ईमानदार व्यक्तित्व की माँग करती है, जिस सहीपन अथवा संवेदनशीलता के अभाव में कविता ढोंग बन जाती है, भले ही उसका कितना ही ढोल क्यों न पीटा जाय, यह रचना कविता के उसी पक्ष की पहचान कराती है।

इस संकलन को पहली बार पढ़ते समय तो मन सटक गया, फिसल गया और कुछ ठीक-ठीक पकड़ में नहीं आया कि कविता सरलीकरण की सपाटबयानी से गुजर रही है या कुछ और बात है? कवि जैसे सारे जटिल, गरिष्ठ, भारी-भरकम शब्दों को भूल गया है, अर्थ-गाम्भीर्य के अभिनय करने वाले वाक्यों को भूल गया है। उसमें न तो विद्वान दिखने की चेष्टा है और न ही 'कविकुलशिरोमणि' बनने की लालसा। आजकल तो ऐसी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है। इससे बड़ी चिन्ता उसके सामूहिक स्वीकार से है। कहीं कोई विरोध नहीं, कोई परेशान नहीं, कवि इसकी चेतावनी देता है-

"प्रिय नागरिको/एक बार/बस एक बार/इन विश्व हितकारी कम्पनियों को/पूरी तरह सत्ता में आ जाने दो/थोड़ी उदारता से काम लो/फिर धर्म और अधर्म में फर्क नहीं रह जायेगा/न कहीं कोई वंचित होगा/न उपेक्षित/फिर कहीं कोई/विस्थापित नहीं कहलायेगा/वह दिन जल्दी ही आयेगा/जब देश भर में आधिकारिक तौर पर खुशहाली की पिटवा दी जायेगी/मुनादी/फिर उसके बाद/कहीं कोई और आवाज नहीं होगी।"

ठीक इसी के साथ कवि को इन पंक्तियों में भी पढ़ा जाना चाहिए, जिनमें वह सामान्य एवं मामूली समझे जाने वाले आदमी में अकूत विश्वास दिखलाता है और कहता है-

"वे लोग हैं और बेहद नामालूम घरों में रहते हैं/ इतने नामालूम कि कोई उनका पता/ठीक-ठीक बता नहीं सकता/उनके अपने नाम हैं लेकिन वे/इतने साधारण और इतने आमफ़हम हैं/कि किसी को उनके नाम/सही-सही याद नहीं रहते/ ××× वे हैं, और इसी पृथ्वी पर हैं। और यह पृथ्वी उन्हीं की पीठ पर टिकी हुई है/और सबसे मजेदार बात तो यह है कि उन्हें/रत्तीभर यह अंदेशा नहीं/कि उन्हीं की पीठ पर/टिकी हुई है यह पृथ्वी।"

'जे अलफ्रेड प्रूफ्रॉक से एक बातचीत' एक लंबी कविता है। टी.एस. इलिएट द्वारा 1910-11 में लिखित 'लव सांग ऑफ जे. अलफ्रेड प्रूफ्रॉक' के नायक की सहायता से अधिनायकवादी-सामंतवादी मनोवृत्ति की उस वास्तविकता को प्रकट करने की कोशिश की गयी है, जिसकी नयी खेप भूमंडलीकरण के रूप में फिर आ रही है। आर्थिक प्रगति की जिस अंधी दौड़ में हम शामिल हैं, उसने देश की अधिकांश जनता के लिए आजादी का अर्थ ही खो दिया है। वे पीछे छूट गये हैं और पीछे छूटते ही जा रहे हैं, जबकि हम सब कुछ दाँव पर लगा कर भी सचमुच आगे नहीं बढ़ रहे हैं। यह खतरनाक है, इस देश की संस्कृति एवं मानसिकता के लिए। इस आर्थिक तंत्र में उलझे समय में भी कवि बचा लेना चाहता है मक्के की रोटी एवं सरसों के साग को। अपने उन गरीब और पीछे छूटे भाइयों को अहमियत देना चाहता है, जिनके दम पर आज भी सुबह का सूरज निकलता है। एक बहुत बड़े सरोकार को लेकर यह कविता चलती है। यहाँ कवि केवल अपने देश की अभिजात्य मानसिकता की समस्याएँ ही नहीं बता रहा बल्कि वह पश्चिमी सभ्यता की उन परेशानियों की ओर भी संकेत करता है, जो 'पूँजी' के दबाव में अमानवीय होती जा रही हैं। कविता की ये पंक्तियाँ अत्यंत घनीभूत हैं-

"हमारे यहाँ भी लोकतंत्र को भेड़िया धसान मानकर/बाकायदा जनता के द्वारा चुनकर आने के लिए /सब कुछ दाँव लगा रहा है उत्तरआधुनिक फासीवाद/उसने तरह-तरह के चेहरे ओढ़ रखे हैं/धर्म, साम्प्रदायिकता और आतंक हैं उसके सबसे/तेज भड़काऊ आधुनिक हथियार/ ×××/ सत्य और अहिंसा के आगे/कोई हथियार काम नहीं आता था/

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मनुष्यता की वह बची हुई उम्मीद भी/अब जाती रही पूफ्रॉक/तुम्हें तो पता ही है/आजादी के मिलते ही/हमीं ने उसे गोली मार दी थी।''

समय की जिस विडंबना को हम जी रहे हैं, उसमें सब कुछ दाँव पर है। सहजता, सरलता, आत्मीयता, रिश्ते-नाते, न जाने क्या-क्या। कविता तमाम प्रश्न उठाती है और व्याकुल छोड़ देती है। हिन्दी में ऐसी कविताएँ विरल हैं, जो इतनी सरल भाषा में बड़े गम्भीर सवालों को उठाती हों। हिन्दी के आज के कवियों को या तो 'दलित' की राजनीति करनी है या स्त्रियों को उघार करना है 'विमर्श' के नाम पर। इन नीरस और ऊबाऊ मुद्दों के लिए उनके पास समय नहीं।

'कहते हैं कि दिल्ली की है कुछ आबोहवा और' इस संकलन की ही नहीं हिन्दी साहित्य की बेहतरीन कविता है। 25 पेज की इस कविता को अगर आप पढ़ना शुरू करें तो बिना खत्म किए रुक नहीं सकते। कविता एक भावावेग एवं संवेदना के बहाव की तरह है, जिसमें 'दिल्ली' एक प्रतीक की तरह मुखरित हुई है। विभिन्न तरह की अर्थ-छवियों के माध्यम से कवि देश में फैलती जा रही उस औपचारिक एवं बेईमान मानसिकता को प्रकट करता है, जिसमें सत्ता, शक्ति एवं साजिश का पूरा तंत्र सब कुछ गायब करता जा रहा है। एक संवेदनशील व्यवस्था की धुरी जो आदमी को नकलीपन जीने के लिए आकर्षित कर रही है। आज सब कुछ 'दिल्ली' में समाता जा रहा है। जो भी आ रहा है वह वाया दिल्ली, और जाना भी जरूरी नहीं, कहीं भी हो सकती है, यह भोपाल या बनारस में भी। वस्तुत: कब्जा जमाने एवं साधन, सुविधा सम्पन्न होने की होड़ में जीवन-रस से हीन एक मानसिकता जिसने हमारी आंचलिकता छीनी है, हमारी पहचान खोयी है, मुहल्ला, गाँव-गिराव, ठेठपन छीना है। उन सब को, आधुनिकता के चस्के ने खतरे में डाल दिया है। छद्म को शान से धारण करना, बेईमानी को तमगे की तरह पहनना और सबके ऊपर खुद को स्थापित करने की वह प्रवृत्ति, जिसने हमारी सामाजिक-सांस्कृतिक बुनावट को कमजोर किया है वह यही 'दिल्ली' की मानसिकता है। अगर हिन्दी साहित्य को ही देखें तो कम अहित नहीं किया है 'दिल्ली' ने। सब बड़े होने के लिए दिल्ली बस लिए- अपने गाँव, घर, भाई-बहन, परिवार, शहर सब छोड़-छाड़कर। आपाधापी एवं शक्ति-संतुलन के माहिर खिलाड़ी बने बिना दिल्ली में नहीं रहा जा सकता, अत: साहित्य के खेल का जो चस्का लगा कि साहित्य गायब- खेल ही खेल बचा। आज साहित्य, वाया दिल्ली के स्वीकृत होता है। कविता दिल्ली में, कवि दिल्ली में, आलोचक दिल्ली में, आलोचना दिल्ली में, पत्रिकाएँ दिल्ली में, संचार का पूरा तंत्र, पद-नियुक्तियाँ, देश-विदेश की सैर, बड़े-बड़े संस्थान, संस्थाएँ सब दिल्ली में। इतना ही नहीं बड़े-बड़े प्रकाशक एवं बिक्री के ऑर्डर भी दिल्ली में। तो और क्या चाहिए। अगर आप शौकीन हैं तो दारू और देह भी दिल्ली में धड़ल्ले से उपलब्ध। सो घुमाते चलिए साहित्य का चक्का। कल्पना के छद्म एवं बेईमानी की संवेदना से साहित्य रचिए और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
प्रकाशक की साँठगाँठ से छपिए। मुँहदेखी आलोचना के माहिर खिलाड़ी तो हाजिर ही हैं आपको पुरस्कार से लेकर कालजयी रचनाकार का तमगा पहनने के लिए। 'दिल्ली' एक मानसिकता है, सोचने का तरीका है। कवि ने उसका पूरी तरह अमूर्तन कर उसे भाववाची बना दिया है। वैसे कवि को इसका बड़ा दुख है कि 'दिल्ली' से अब 'दिल्ली' ही गायब होती जा रही है–

"दिल्ली में सब कुछ मिलता है/बस दिल्ली ही नहीं मिलती/दिल्ली में कहीं कोई दिल्ली वाला नहीं दिखता/सिर्फ एक नदी है, जिसने कभी बसाया था दिल्ली को/वह दिल्ली के खोते जाने के दुख में सूखी जा रही है/अब दिल्ली को कोई इस नदी के कारण/ नहीं जानता।"

दिल्ली को लेकर हिन्दी में लिखी गई बेहतरीन कविता है यह।

साहित्य को लेकर आलोचना जगत में आज जो चुप्पी है, वह हैरान करने वाली है। साहित्य जीवन से, समाज से, पूरे परिवेश से धीरे-धीरे गायब होता जा रहा है, उसे अप्रासंगिक साबित करने की कोशिश की जा रही है, साहित्य में बेईमानी हो रही है। प्रकाशकों एवं प्रायोजित समीक्षकों की सहायता से बड़े बनने एवं बनाने की दुकान चल रही है और हमारे सब स्वानामधन्य आलोचक मुँह पर ताला मार कर सत्ताधीशी कर रहे हैं। कोई नहीं कहता कि क्या लिखा जा रहा है, क्यों लिखा जा रहा है अथवा क्या लिखा जाना चाहिए। कविता, कहानी, उपन्यास आदि अगर खतरे में हैं तो क्या कारण है? किस प्रकार साहित्य को फिर से समाज का हिस्सा बनाया जा सकता है। क्या गलती हो रही है कि साहित्य के नाम पर केवल 'तंत्र' दिखलाई दे रहा है। यह तांत्रिक (संचार) साहित्य को कब तक पाठकों को बेवकूफ बनाता रहेगा। सचमुच जो रचना करता है, उसका कोई पूछत्तर नहीं। भगवत रावत जीवनभर भोपाल में रह कर कविता लिखते रहे, उन्हें क्यों उचित सम्मान दिया जाएगा?

संकलन की एक और बहुत महत्त्वपूर्ण कविता है 'मुम्बई रेसकोर्स'। इसमें भी रचनाकार ने रेसकोर्स का अमूर्तन कर उसे समाज और समाज के सच को कहने का माध्यम बनाया है। 'रेसकोर्स' यानी संपन्नता एवं अभिजात्य का जीता जागता नमूना–

"सब इतने अच्छे-भले, खाये-पिये, तरह-तरह की/पोशाकों में इतने संतुष्ट और/ प्रसन्न दिखते हैं कि पूरा हिन्दोस्तान/थोड़ी देर के लिए ही सही इतना सम्पन्न और स्वस्थ दिखायी देने लगता है/कि रेसकोर्स छोड़कर जाने का मन नहीं करता।"

पूरी कविता में कवि के हृदय की छटपटाहट देखी जा सकती है कि एक भारत वह भी है जहाँ लोगों को दो जून रोटी भी नसीब नहीं। बच्चे अनाथ की तरह लावारिस पलते हैं। कविता के अन्त में कवि अपनी ही कविता पर अत्यंत दिलचस्प टिप्पणी करता है–

"रचना में आये हुए 'नामों' को नाम ही/रहने दें/वरना आप तो मुश्किल में पड़ेंगे ही/मेरी भी मुसीबत बढ़ जायेगी।"

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भगवत रावत की कविता हिन्दी के भविष्य की कविता है। इसमें सरोकार है एवं सच कहने की ताकत है। साथ ही बड़ी सादगी एवं सरलता भी है। जटिलता एवं उलझाव समकालीन कविता की सबसे बड़ी समस्या है, जो अनुभूति के बनावटीपन या नकलीपन से पैदा होती है। भगवत रावत की कविता में न तो उलझाव है और न ही नकलीपन। इसलिए इनको बार-बार पढ़ा जाना चाहिए। यह पाठक मन के लिए ही नहीं, हिन्दी कविता के लिए भी अच्छा होगा। 'देश एक राग है' संकलन एक प्रतिमान की तरह है और इसकी पहचान होनी चाहिए। केवल उपेक्षित छोड़ देने से कवि ही उपेक्षित नहीं होते हैं, साहित्य भी उपेक्षित होता है। हिन्दी कविता को फिर से अगर अपनी विश्वसनीयता हासिल करनी है तो भगवत रावत और इस तरह के अन्य कवियों की कविताओं को समझने की भरपूर कोशिश होनी चाहिए- बिना किसी ताल-तिकड़म, जोड़-तोड़ के।

कविता भाषा से परे होती है। भाषा केवल माध्यम होती है, कविता नहीं। एक गूँज जो आपके अंदर पैठ जाए नासूर की तरह और दिल से दिमाग तक लगातार चक्कर काटती रहे, कविता की असल पहचान होती है। वह आपके अंदर तोड़ती-फोड़ती है, शुद्ध करती है, सरोकार बनाती है, अगर आप में संभावना है तब। वह एक ऐसी बेचैनी होती है, जो लगातार परेशान करती है, सही होने के लिए धकेलती है, बुरे को छुड़वाती है। कविता बड़ी चीज है, इसलिए कि वह आपको बड़ा बनाती है। बड़ा बनाने का अर्थ है- 'मनुष्य' बनाना। 'स्व' का त्याग, अहंकार से मुक्ति। कवि की यह पीड़ा कि-

''कितने दिनों से कोई घर नहीं आया/यूँ ही बस मिलने-मिलाने/घर जैसे वर्तमान में अतीत हो गया/मैं जैसे जीते जी व्यतीत हो गया/अब कोई घर का पता पूछता नहीं आता/ खो गया हूँ कहीं/कोई खोजता नहीं आता।''

एक स्वीकारोक्ति है कि कुछ कहीं खोता जा रहा है जीवन की आपाधापी में। कविता के अंत में यह एहसास और भी घनीभूत हो जाता है-

''इस रीतती उम्र में/जब धीरे-धीरे छूटती जा रही दुनिया हाथ से/तब बिना मतलब मिलने-मिलाने का अर्थ समझ में आ रहा है।''

बिना किसी भाषायी चमत्कार के कविता आपके अंदर का कितना बड़ा सच कह जाती है। संकलन में ऐसी तमाम कविताएँ हैं, जो आपके उस 'खोये' का पता देती है, जिसे जीवन की दौड़ में आपको मजबूरी में छोड़ना पड़ा।

भगवत रावत की अभी-अभी नयी कविता 'उत्तर पटकथा बनाम सुराजे हिन्द' नया ज्ञानोदय के मई, 2010 अंक में छपी है। कविता क्या है दिमाग को झकझोर दे, सोचने को मजबूर कर दे कि देश को क्या होना था और क्या हो गया वह। किस सपने को लेकर, किन उम्मीदों के सहारे आजादी की लड़ाई लड़ी गयी थी, और देश में कैसे 'स्वराज' को लागू करना था, अब इसकी चिंता या चर्चा तक नहीं होती। यानी 'स्वराज' सपने की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चीज हो गयी है। फिर भी मजेदार यह कि हम 'हिन्द स्वराज' की शताब्दी बड़े शौक से मना रहे हैं। कवि कहता है-

''माँगा था कुछ और मिला कुछ और/पर किसी ने चूँ तक नहीं किया/घर में घुसते रहे चोर, लुटेरे, बदमाश/और सजाते रहे हम उनसे अपने घर और अब उनके/इतने गुलाम हो गये हैं/कि उनके बिना चल नहीं सकते/हिल नहीं सकते/उठ-बैठ नहीं सकते।''

कितना नकलीपन, झूठ, फरेब और बाकी हममें, बेहयाई और बदतमीजी की हद हो गयी है कि जिस गाँधी को आजादी मिलते ही हमने मौत के घाट उतार दिया था, और पिछले तिरेसठ साल से निरंतर जिसकी हत्या हम रोज कर रहे हैं, उसी गाँधी की एक रचना की शताब्दी मनाने का ढोंग करते हमें शर्म नहीं आती। गाँधी एक विचार है, जीवन दृष्टि है। एक ओर पूरा समाज, परिवेश, जीवन भूमंडलीकृत उपभोक्तावाद की गिरफ्त में आता जा रहा है और वह भी किसी नीम बेहोशी में नहीं बल्कि बाकायदा पूरे सरकारी तंत्र एवं व्यवस्था के और दूसरी ओर 'हिन्द स्वराज' की शताब्दी? कवि इसीलिए तो पूछता है- *''खेतों में पानी नहीं पहुँचा/सब जगह पहुँच गये हैं मोबाइल/राष्ट्रीय शोक की तरह/ राष्ट्रीय शर्म का कोई प्रावधान संविधान में नहीं है।''*

यह कविता आत्ममंथन, आत्म-निरीक्षण के लिए मजबूर करने वाली है कि क्यों हमने गाँधी को छोड़ा। जिस सादे जीवन एवं उच्च मानवीय मूल्यों के साथ गाँधी ने 'स्वराज' का सपना देखा था, क्या वह झूठा था? क्या वह गलती कर रहा था, जो त्याग की बात कह रहा था? क्या वह गलती कर रहा था, जब वह गाँव से देश के विकास की शुरुआत मान रहा था? क्या गाँधी गलत थे कि वे विदेशी माल के प्रयोग के बहिष्कार का समर्थन कर रहे थे? जिस आर्थिक गुलामी से वे देश को मुक्त रखना चाहते थे क्या वह गलत था? आज सरेआम गाँधी की हत्या हो रही है फिर भी हिन्द स्वराज...हिन्द स्वराज। सत्ता में बैठे, सत्ता पर काबिज लोग झूठ बोलने में इतने माहिर हैं कि पूँजीवाद को मूल्य की तरह स्वीकारने, अमेरिका जैसे हत्यारे देश के तलुए चाटने और एंडरसन को भारत से भगाने के बावजूद 'हिन्द स्वराज' की शताब्दी मना रहे हैं। गाँधी अब कहीं नहीं हैं हमारे जीवन में, समाज में या सोच में। गाँधी बचे हैं तो केवल नोटों पर-

''पहले उसका शरीर नष्ट किया गया/पर धीरे-धीरे उसे नष्ट किया गया/और उसका जो सबसे बड़ा दुश्मन था/उसी पर उसकी तस्वीर छापकर उसे मुद्रा में बदल दिया गया।''

क्यों गाँधी, गाँधी चिल्लाया जा रहा है इतनी जोर से? क्या जरूरत पड़ गयी? क्या चुनाव नजदीक है? क्यों नक्सली कह कर अपने ही भाई-बहनों की हत्या का षड्यंत्र रचा जा रहा है और जब भूख और गरीबी का कोई हल ढूँढ पाये तो गोली एवं बम खिलाने की तैयारी चल रही है? जब आप रोज टी.वी. पर ओबामा के आगे खींसे निपोरते दीख रहे हैं तो आप ही बताइये क्या जरूरत पड़ गयी गाँधी का नाम लेकर जोर से चिल्लाने की। कोई आपका क्या बिगाड़ लेगा- आपके पास बहुमत है, पैसा है, गोला-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
बारूद, पुलिस-मिलिट्री सब कुछ। आप मणिपुर में खून बहाइए, नागालैंड को आग के हवाले कीलिए। आप कत्ल करवाइये, खून करवाइये, बड़े-बड़े बैंक बैलेंस, तिजोरियाँ बनवाइये। गाँधी को छोड़ दीजिए- गरीबों के लिए, आम हिन्दुस्तानी के लिए, क्योंकि आप नहीं जानते गाँधी क्या हैं उसके लिए। रोटी के निवाले से लेकर थके-हारे घर लौटने तक गाँधी उसके साथ होते हैं। बख्श दीजिए गाँधी को, बाइज्जत रिहा कर दीजिए अपने गंदे एवं नापाक इरादों से। आप गाँधी को नहीं समझ सकते, स्वराज को नहीं समझ सकते और 'हिन्द' को तो कतई, कतई नहीं। गाँधी जो थे-

''वह जानता था उठे हुए हाथों की ताकत/और पैदल चलते पैरों की गति का प्रवाह/वह पहचानता था साधारण-सी दीखती/आँखों की जगमगाती रोशनी/वह जानता था कि भूख को उपवास में बदलकर/मनुष्य के भीतर किस शक्ति को/जीवित किया जा सकता है।''

कुछ याद आया? यह उन्हीं की बात है, जिन्हें आप नक्सली कहते हैं और आप इनसे जीत नहीं सकते, बिना इनकी समस्या का समाधान किए। जैसे जीत नहीं पायी थी भारत की गरीब जनता से पूरी ब्रिटिश सत्ता, जिसके राज्य में कभी सूरज नहीं डूबता था, क्योंकि गाँधी थे उसके साथ। इनके साथ भी गाँधी हैं, गाँधी का आत्मबल, धैर्य, संयम, नहीं है तो केवल अहिंसा। भले ही कुछ भी नाम दें उन्हें आप, समाधान तो ढूँढना ही होगा उनकी भूख और गरीबी का।

बहरहाल भारत में स्वराज नहीं आया तो नहीं ही आया। रघुवीर सहाय, धूमिल, मुक्तिबोध सब का प्रयास निरर्थक गया। सही को समझने की, सही राह दिखाने का पूरा प्रयत्न निरर्थक। भगवत रावत मुक्तिबोध के 'अंधेरे में' की सहायता से बहुत बड़ी बात कहते हैं-

''अब दिन के उजाले में/खुली चौड़ी सड़क पर, सीना तानकर अपनी-अपनी/शोभा यात्राएँ निकाल रहे हैं डोमा जी उस्ताद/और हम उन्हें खुली आँखों देख रहे हैं/अब किसी फैंटेसी के चश्मे की कोई जरूरत नहीं रही मुक्तिबोध जी/सपने इस तरह भी सच होते हैं पहले पता न था/चारों ओर फैल गये हैं/डोमा जी ही डोमा जी उस्ताद/ ××× / जिस 'परम अभिव्यक्ति' की खोज में आप निकले थे/अब किसी को उससे कोई सरोकार नहीं/कोई अब 'अभिव्यक्ति का खतरा' उठाना नहीं चाहता।''

पूरी कविता बड़े बारीक ताने-बाने से बुनी गयी है और चुनौती की तरह है आज के कवियों, आलोचकों, साहित्यकारों के सामने। 'दिल्ली' वाली कविता से जो बात शुरू हुई थी वह 'प्रूफ्रॉक', मुम्बई रेसकोर्स से होती हुई यहाँ तक पहुँची है। कविता का फलक इतना व्यापक है कि 'क्षेत्रीयता' एवं 'विमर्श' की सीमाओं का अतिक्रमण करता हुआ 'भारत' देश की सही एवं वास्तविक समस्या को सामने लाता है एक संदेश की तरह आज

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के कवि मित्रों के लिए कि 'और भी ग़म हैं ज़माने में कविता के लिए'। कविता की अंतिम पंक्तियों में कवि की पीड़ा अत्यधिक मुखर हुई है–

"तिरसंठ बरस हो गये। पर वह नहीं आया, जिसे आना चाहिए था। सबसे पहले लहराता। तीन रंगों के साथ/और इसी तरह एक दिन हम अपनी/आजादी का शताब्दी वर्ष भी मनाएँगे/सुराजे हिन्द का झंडा फहराएंगे/और हिन्द स्वराज के शताब्दी वर्ष को/ साबरमती की किसी सूखती जा रही/धार में बहा आएंगे।"

दरअसल इस कविता को बार-बार एकांत में और सामूहिक रूप से भी पढ़ा जाना चाहिए, जिससे कविता की चिंता हम सबकी चिंता बन सके।

अंत में यह कविता इस विश्वास को और भी पुख्ता करती है कि भगवत रावत इस दौर के बड़े कवि हैं। इस कविता को पढ़कर कौन कह सकता है कि वे सत्तर वर्ष के हो गये हैं। इनकी कविताएँ समकालीन हिन्दी कविता को एक नयी पहचान देती हैं। निश्चित ही यह हिन्दी कविता में नये विहान की तरह हैं।

हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलांग (मेघालय)

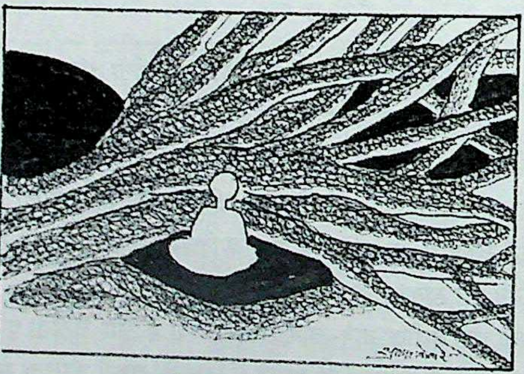

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इधर की कविताओं को लेकर टिप्पणी जैसा कुछ!

• डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल

इंटरनेट पर अपनी एक टिप्पणी में अमेरिका में रह रहे मेरे मित्र श्री अनूप भार्गव ने हिंदी कवि सम्मेलनों की स्तरहीनता पर अपना क्षोभ व्यक्त किया है। उन्होंने महाकवि निराला के अति प्रसिद्ध कथन, "गिर कर कोई चीज़ मत उठाओ, चाहे वह कविता ही क्यों न हो" को भी स्मरण किया है। उनकी बात का समर्थन जाने-माने कोशकार श्री अरविंद कुमार जी ने भी किया है और इस बात की तरफ भी इशारा किया है कि कवि सम्मेलनों के स्तर में गिरावट की शुरुआत कब से हुई।

इस बात से कोई असहमति हो ही नहीं सकती कि आज कवि सम्मेलन फूहड़ता के पर्याय बन चुके हैं। वहाँ फूहड़ हास्य होता है, चुटकुलेबाजी होती है, लटके-झटके होते हैं, गायकी होती है, अदायगी होती है, नाटक होता है, एक-दूसरे की टाँग खिंचाई होती है, नूरा कुश्ती होती है, अगर कोई महिला भी मंच पर हो (जो कि होती ही है) तो उसे लेकर अशालीन टिप्पणियाँ होती हैं और भी बहुत कुछ होता है। नहीं होती है तो बस, कविता नहीं होती है और जो लोग यह सब कुकर्म करते हैं, उन्हें इसके लिए काफी अच्छा पैसा मिलता है। जाहिर है यह पैसा जनता देती है। कभी-कभार सरकार भी देती है। खास तौर पर हिंदी सप्ताह या पखवाड़े के दौरान। हमारे ये कवि-सम्मेलनी परफॉर्मर गिरकर काफी कुछ उठाते हैं। पैसा भी, नाम भी, यश भी और यदा-कदा सरकार भी इन्हें नवाज़ देती है- संस्थाओं के शीर्ष पर आसीन करके, जैसे कि ऐसे ही एक मंचीय विदूषक को देश की राजधानी में नवाज़ा गया। अब ऐसा करते-करते अगर कविता गिरती भी है तो गिरे। तथाकथित कवि जी का स्तर तो उठ रहा है।

अनूप जी और अरविंद जी की चिंता बहुत वाज़िब है कि यह सब कविता के नाम पर हो रहा है, लेकिन मेरी चिंता यहीं खत्म नहीं हो रही है। बल्कि यहीं से आगे बढ़ रही है। आज कवि सम्मेलन में कविता नहीं रह गई है, ठीक बात है, लेकिन क्या हमारी पत्र-पत्रिकाओं में कविता के नाम पर जो छप रहा है, उसमें से अधिकांश को कदिना कहा जाना ठीक होगा? मैं जानता हूँ कि मेरा यह सवाल अति सामान्यीकरण का शिकार है। वहाँ काफी कुछ अच्छा भी छप रहा है, लेकिन जो भी अच्छा छप रहा है क्या वह भूसे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के ढेर में खोया-सा नहीं लगता आपको? और चलिये यह भी मान लेते हैं कि उत्कृष्ट और सामान्य के बीच असंतुलन तो रहेगा ही। फिर भी।

आज हिंदी में सबसे ज्यादा कविताएँ ही लिखी जाती हैं। लिखने की शुरुआत करने वाले कविता से ही श्रीगणेश करते हैं। कुछ दिलजलों का कहना है कि ऐसा इसलिए होता है कि कविता लिखना अपेक्षाकृत आसान है। मुझे नहीं पता, क्योंकि मैंने तो कभी लिखी नहीं। लेकिन हाँ, इधर पत्र-पत्रिकाओं में छपी ज्यादातर कविताओं को देखता हूँ तो दिलजलों की इस बात से असहमत होने का भी मन नहीं करता। उदाहरण देने की कोई जरूरत नहीं है। आप किसी भी पत्रिका के पन्ने पलट लीजिए। एक ढूँढो, हजार मिल जायेंगे। आज कविता की दुनिया में कुछ ऐसी अराजकता है कि आप चाहे जो लिख दीजिए, और कह दीजिए कि यह कविता है। किसी माई के लाल में यह दम नहीं कि कहे, राजा नंगा है। पिछले दिनों, मैंने कुछ ऐसा ही करने का दुस्साहस किया। हिंदी के एक प्रतिष्ठित (कहूँ कि एकमात्र) साहित्यिक रुझान वाले समाचार पत्र के रविवारीय परिशिष्ट में छपी एक जाने-माने और समादृत कवि की तथाकथित कविता को स्कैन किया (हाँ, उनका नाम मैंने हटा दिया) और उसे फेसबुक पर पोस्ट करके पूछा कि क्या इसे कविता कहा जा सकता है? मेरा आशय उस कवि की अवमानना करना कतई नहीं था। इसीलिए मैंने उनका नाम हटा दिया था। मुझे वह रचना सीधे-साधे वृत्तांत लग रही थी, कविता कहीं से भी नहीं लग रही थी, जबकि वह एक बहुत प्रतिष्ठित कवि की कलम से उपजी थी और एक ऐसे अखबार में छपी थी, जिसके संपादक के साहित्य-विवेक पर कोई संदेह नहीं किया जा सकता। फेसबुक पर जो टिप्पणियाँ आईं, उनमें से अधिकांश में उस रचना के कविता होने को नकारा गया था। दो-एक टिप्पणियों में जरूर उसे महान बताया गया। यह तो एक उदाहरण है और इस तरह की चीज़ें आये दिन छपती ही रहती हैं।

आप किसी भी पत्रिका, साहित्यिक पत्रिका के पन्ने पलट लें। वहाँ आप कविता के नाम पर जो छपा देखते हैं, क्या वह वाकई कविता कहने योग्य होता है? क्या कविता करना इतना आसान होता है कि उठाई कलम और लिख दी। कोई तैयारी नहीं। कोई अभ्यास नहीं, कुछ भी नहीं, लेकिन एक छद्म, एक पाखण्ड चल रहा है। मैं तेरी तारीफ करूँ, तू मेरी तारीफ कर। कविताओं की किताब छप जाती है, उसका लोकार्पण हो जाता है, कसीदे पढ़ दिये जाते हैं, दो-चार समीक्षाएँ छप जाती हैं, जिनमें उस किताब को न भूतो न भविष्यति बताया गया होता है और बस। इस सबके पीछे जो प्रहसन घटित होता है, क्या उसे बताने की जरूरत है? मैं कुछ पंक्तियाँ लिखता हूँ, उन्हें इकट्ठा करके, अपने पैसों से एक किताब छपवाता हूँ, फिर अपने किसी मित्र से कहता हूँ कि वह अपनी संस्था के बैनर तले मेरी किताब का लोकार्पण समारोह आयोजित कर दे। सारा खर्चा मैं वहन करूँगा, यह कहना अनावश्यक है, फिर मैं ही अपने कुछ मित्रों से कहता हूँ कि उन्हें मेरी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
किताब पर पत्रवाचन करना है या वक्तव्य देना है। या तो मैं ऐसा उनके लिए पहले कर चुका हूँ या भविष्य में जरूरत पड़ने पर कर दूँगा। उन मित्रों के पास कविता को लेकर जितनी भी अच्छी बातें हैं वे उन्हें मेरी तथाकथित कविता पर लाद देते हैं। अगर आप उन वक्तव्यों को सुनें तो आपको लगेगा कि न कालिदास कुछ थे, न मुक्तिबोध, न निराला। सब दो कौड़ी के थे। असल कवि तो यही है। जैसे-तैसे इस गोष्ठी की रपट भी कहीं न कहीं छप ही जाती है। जैसे-तैसे इसलिए कि आजकल समाचार-पत्रों में साहित्यिक-सांस्कृतिक आयोजनों के लिए जगह जरा कम ही होती है और इसके बाद, जैसे गोष्ठी में वक्तव्य दिलवाये गए थे, वैसे ही समीक्षा भी लिखवा ली जाती है। बेचारे संपादक को भी तो अपनी पत्रिका के समीक्षा खण्ड में दो-एक किताबों की समीक्षा छापनी होती है ना। अगर आप ही उन्हें किताब और समीक्षा दोनों उपलब्ध करा दें तो फिर नेकी और पूछ-पूछ। और समीक्षा जब फरमाइश पर ही लिखी जानी है तो फिर उसमें वचनों की दरिद्रता क्यों? जितनी तारीफ मुमकिन हो उतनी हो जाए। आप पढ़ लीजिए इधर छपने वाली ज्यादातर समीक्षाएँ। उमें समीक्षित कविता या कविता-संग्रह की वो-वो खूबियाँ आपको नजर आएँगी कि आपको लगेगा कि आप तो अब तक भाड़ ही झोंकते रहे थे। क्या खाक समझ है आपको कविता की।

यह पाखण्ड यहीं खत्म नहीं होता। छोटे लोग पत्रिकाओं में कविता छपवाकर वाह-वाही लूटते हैं, उनसे बड़े संकलन छपवाकर और जो उनसे भी बड़े हैं वे संपादक बनकर ऐसा करते हैं। अगर विश्वास न हो तो मैं बताता हूँ। कविता और तद्‌विषयक चिंतन की एक पत्रिका है, लघु पत्रिका। नाम लेना उचित नहीं होगा। संपादक बहुत वरिष्ठ और आदरणीय कवि हैं, बल्कि थे। कोई गलतफहमी पैदा हो उससे पहले स्पष्ट कर दूँ कि यह भूतकालिक प्रयोग उनके संपादक के लिए है, कवि के लिए नहीं। अब उन्होंने संपादन का यह दायित्व एक अपेक्षाकृत युवा कवि आलोचक को सौंप दिया है। पहले भी, जब वे खुद संपादन करते थे और अब भी, जब संपादन कोई अन्य कर रहा है, उस पत्रिका में छपने वाला हर समीक्षा लेख उन कवि जी की प्रशस्ति के बिना पूरा नहीं होता। जब भी किसी नए कवि की प्रशंसा की जाती है यह बताना जरूरी होता है कि वह उस परंपरा का कवि है, जिस परंपरा के शीर्ष पर उस पत्रिका के संस्थापक कवि विराजते हैं। लिहाज के लिए दो-तीन नाम साथ में और ले लिए जाते हैं। ऐसा करने में (यानी आत्मप्रशंसा में) जब खुद उन कवि जी को कोई संकोच नहीं होता तो फिर जिन्हें उन्होंने संपादक बनाया है वे भला क्यों कोई संकोच बरतने लगे। आजकल उस पत्रिका में नए कवियों के काव्यकर्म पर एक श्रृंखला चल रही है। मजाल है कि कोई कवि उन वरिष्ठ कवि जी के आई.एस.आई. ठप्पे के बिना निकल जाए। और यह सारा कारोबार एकतरफा हो, ऐसा भी नहीं है। आखिर बदला तो चुकाना ही होता है ना। तो वे संस्थापक संपादकजी भी, जब भी मौका मिलता है, उन आलोचकों के नाम ले लेते हैं, जिन्होंने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उनकी प्रशंसा की है। न इन्हें और कवि नजर आते हैं न उन्हें और आलोचक। तोकू ठौर न, मोकू और। एक बहुत मजे की बात यह कि इस पत्रिका के वर्तमान संपादक जब इस पत्रिका से बाहर कुछ लिखते हैं तो वे महान कवियों की रेडीमेड सूची चस्पाँ करने वाली आचार संहिता से मुक्त होते हैं। मुझे उन कविजी की महानता में कोई संदेह नहीं है और न वर्तमान संपादक जी के संपादकीय विवेक में, लेकिन मन में एक ही सवाल है। अगर वे कवि इतने ही महान हैं तो सिर्फ अपनी ही पत्रिका में इतने महान क्यों हैं? और अगर उनकी पत्रिका के वर्तमान संपादक उन्हें इतना ही अपरिहार्य मानते हैं कि उनके नाम के बिना कोई समीक्षा कर्म पूरा नहीं होता तो फिर ऐसा उस पत्रिका में छपने वाले लेखों में ही क्यों होता है? यह तो एक उदाहरण है। ज्यादातर पत्रिकाओं की हालत ऐसी ही है। हर पत्रिका में छपने की पहली और जरूरी शर्त उसके संपादक का यशोगान होता है। हर, यानी अधिकांश पत्रिकाओं में तो कवि (और आलोचक भी) के रूप में प्रतिष्ठित होने का एक और तरीका यह है कि आप संपादक बन जाएं।

अब जब यह सब कारोबार चलता है तो फिर बेचारे पाठक की क्या गति होती है? लेखक तो इस तंत्र को समझ और तदनुसार समझौते कर अपना काम चला लेता है। लेकिन पाठक? वह रचना पढ़ता है तो उसे दो कौड़ी की लगती है। समीक्षा पढ़ता है तो पाता है कि जो रचना उसने पढ़कर यों ही छोड़ दी थी वह तो ऐसी थी जैसी सदियों में कभी-कभार ही लिखी जाती है। बेचारा अपने अज्ञान पर दुखी होता है। हैराँ हूँ दिल को रोऊँ कि पीटूँ जिगर को मैं। कभी-कभी उसे लगता है कि साहित्य कहाँ से कहाँ पहुँच गया है और मैं ही हूँ कि पीछे छूट गया हूँ। मेरी समझ में ही कोई कमी है। जब राधेश्याम जी कह रहे हैं कि सीताराम जी की कविता महान है तो फिर होगी ही, लेकिन जब उस बेचारे पाठक को यह पता चलता है कि राधेश्याम जी तो हर उस व्यक्ति को महान घोषित करने के असाध्य रोग से ग्रस्त हैं, जो उन्हें ऐसा करने का अवसर देता है तो सोचिये कि उस बेचारे पाठक के दिल पर क्या बीतती होगी। क्या वह खुद को ठगा हुआ महसूस नहीं करता होगा? क्या यह अनुभूति उसे साहित्य से थोड़ा दूर नहीं कर देती होगी?

इतना सब लिखते हुए मेरे मन में यह सवाल बार-बार उठ रहा है कि आखिर मैं कविता किसे मानता हूँ? आसान नहीं है इस सवाल का जवाब। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का प्रसिद्ध निबंध 'कविता क्या है' खूब पढ़ा है, लेकिन रस, छंद, लय, अलंकार, लक्षणा, व्यंजना ये सब बीते जमाने की चीज़ें हैं। साहित्य का विद्यार्थी हूँ तो इतना तो जानता ही हूँ। काफी कुछ बदल चुका है। यह भी जानता हूँ कि केवल छंद से ही कविता नहीं हो जाती। रस भी उतना जरूरी नहीं है। छंद की मुक्ति और सपाट बयानी के बारे में भी थोड़ा-बहुत जानता हूँ। अर्थ की लय के बारे में भी पढ़-सुन रखा है। बिंब, प्रतीक के बारे में भी जाना-सुना है...साहित्य की सभी विधाओं के स्वरूप में बहुत बदलाव आया है। कविता को लेकर जो प्रचलित धारणाएँ और मान्यताएँ थीं वे एकदम बदल चुकी हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

फिर भी, शायद सीधे-सीधे कहीं उंगली रखकर भले ही न कहा जा सके कि कविता यहाँ है, महसूस तो हो ही जाता है कि कविता यहाँ है या नहीं है। अगर ऐसा न होता तो हम कवि सम्मेलनों में कविता न होने को लेकर भी दुखी नहीं होते। दुख केवल फूहड़ता को लेकर नहीं है। जब हम छंदोबद्ध कविता को कविता मानने से मना करते हैं तब भी हमारे मन में कोई अवधारणा तो कविता की होती ही है।

परिदृश्य बहुत साफ नहीं है। कहाँ ईमानदारी है और कहाँ बेईमानी, कहना बहुत मुश्किल है, लेकिन बातें साफ तो होनी चाहिये। लिहाज में प्रशंसा बहुत हो गई। अब खरी बातें भी की जानी चाहिए। अगर कहीं अधकचरापन है, कविता नहीं है तो उसे भी इंगित किया जाना चाहिए। कविता लिखने वालों और उनके पेशेवर सराहना करने वालों का जो गिरोह बन गया है, कविता को उससे बाहर निकाला जाना बेहद जरूरी है। पत्र-पत्रिकाओं में कविता के नाम पर जो भी ऊल-जलूल छप रहा है, उस पर कोई नियंत्रण हो। अगर आपको लगे कि आपने कविता लिखने में नई जमीन तोड़ी है, तो बताइये ना पाठक को उसके बारे में। पाठक अगर नासमझ है तो उसकी समझ को विकसित कीजिए। पाठक से संवाद कायम कीजिए, एक जीवंत रिश्ता बनाइये। अपनी कहिये, तो उसकी भी सुनिये। अगर समय रहते ऐसा न किया गया तो आज जो बात कवि सम्मेलनी कविता के लिए कही जा रही है, कल वही बात पत्रिकाओं और किताबों में छपने वाली कविताओं के बारे में भी कही जाने लगेगी।

ई-2/211, चित्रकूट
जयपुर-302021

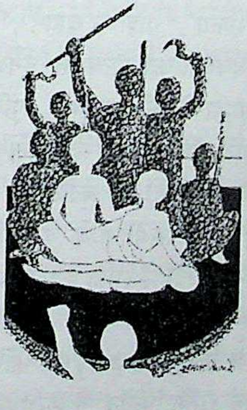

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मरुधर मृदुल का कवि-कर्म

● डॉ. रमाकांत शर्मा

वरिष्ठ चिंतक, विचारक और साहित्यकार मरुधर मृदुल सफल विधिवेत्ता-अधिवक्ता होने के साथ हमारे समय के महत्वपूर्ण संवदेनशील कवि हैं। वकालत का पेशा उन्होंने 1954 में मजबूरी में अपनाया। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी चाहती थी कि मरुधर सर्वहारा के हित में कानूनी लड़ाई लड़ें वरना मरुधर का स्वप्न था एक शिक्षक बनकर साहित्य में डूबना। कविता इनके बचपन से जुड़ गई, जब वे पाँचवीं-छठी कक्षा के विद्यार्थी थे। इस अर्थ में कविता को उनका पहला प्यार कहा जा सकता है। कानून की दुनिया में उनका प्रवेश बाद की घटना है। बचपन में साथ हुई कविता का साथ उन्होंने कभी नहीं छोड़ा। कालान्तर में कविता और कानून की जुगलबंदी चलने लगी। उन्होंने कविता और कानून के क्षेत्र में जो कुछ किया- पूरे मन से किया, इन्हें भरपूर जिया।

मृदुलजी के अब तक तीन कविता संग्रह- 'शब्दों का घूँघट' (1973), 'आस-पास' (1995) और 'आहट' (2000) प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अलावा इनकी प्रतिनिधि कविताओं का संग्रह 'मृदुल की कविताएँ' प्रकाशनाधीन है। मृदूलजी ने वैचारिक लेख, यात्रा-वृत्तांत, संस्मरण, डायरी, आत्मवृत्त, विधि-लेखन इत्यादि गद्य खूब लिखा है। 'खुली आँखों का सपना', 'यात्रा के बहाने', 'तुष्टीकरण का सच', 'शब्दों की न्यायिक परिक्रमा' और 'अधिवक्ता का आत्मवृत्त' इनकी गद्यात्मक कृतियाँ हैं। विधि-क्षेत्र में अंग्रेजी में लिखी मृदुलजी की पुस्तक- 'पब्लिक इंटरेस्ट लिटिगेशन : अ प्रोफ़ाइल' ने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है। बहरहाल।

मृदुलजी के तीनों कविता-संग्रहों की कविताओं से गुजरते हुए मैंने यह अनुभव किया है कि मृदुलजी मूलत: गीति-संवेदना के कवि हैं। मुक्त छंद में भी इन्होंने खूब लिखा है, लेकिन मृदुल का मन गीतों में रमता है। मुक्त छंद की रचनाएँ वर्ण्य विषय की माँग आपूर्ति हैं। ठीक कानून और कविता वाली बात यहाँ भी लागू होती है। वकालत में जाना पड़ा, कविता ने सहज प्रवेश किया। इसी भाँति गीत खुद जन्मे, मुक्त छंद में अतुकांत कविताओं का सृजन उसके 'कंटेंट' ने करवाया।

मृदुलजी के कविता-कर्म का वैशिष्ट्य यह है कि वहाँ विचार का ताप और संवेदना

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

का जल हर वक्त नया मौसम रचता है। इस मौसम में शब्द-बीज की फसलें पकती हैं। 'विचार-खनिज' और 'जीवन-द्रव' ये दो ऐसे तत्व हैं, जो मृदुलजी की कविताओं को महत्त्वपूर्ण बनाते हैं। प्रगतिशील प्रबुद्धता और व्यापक जीवनानुभव इनकी हर कविता में खुशबू की तरह बसे हैं। इनकी कविताओं में कलाबाजियाँ नहीं हैं, जन-जीवन की धड़कनें और आहटें हैं, दुख है, दर्द है, हर्ष है, विषाद है, संघर्ष और प्रतिरोध है। आशा और निराशा है। राग और विराग है, लेकिन इन सब के ऊपर 'मनुष्य धर्म' है। मानवीय संवेदना और सामाजिक सरोकार मृदुल जी की कविताओं का श्रेय और प्रेय है। बेहतर दुनिया का ख्वाब मंजिल है।

जैसा कि मैंने पूर्व में कहा कि मृदुलजी गीति-संवेदना के कवि हैं। इसलिए इनकी कविताओं में भावों की तरलता, शब्दों की सहजता तथा संप्रेषण की स्वाभाविकता हमेशा बनी रहती है और जहाँ वैचारिक ताप का सेल्सियस बढ़ने लगता है- वहाँ मुक्त छंद का स्थापत्य अपना वजूद ग्रहण करता है। मृदुलजी के गीतों और इसके साथ ही उनकी कविताओं को यदि ध्यान से पढ़ा जाय तो हम पायेंगे कि वहाँ शब्द की लय-अर्थ की लय से हाथ मिलाकर नृत्य करती है। एक ऐसा तालनृत्य जो पाठक को भी सहनर्तन के लिए आमंत्रित करता है। लय की यह पकड़ मृदुलजी को गीतों की परम्परा से प्राप्त हुई है।

मृदुलजी सौभाग्यशाली कवि हैं, जिन्हें अपनी छह दशकों की काव्य यात्रा में हिंदी और उर्दू के प्रख्यात कवियों और शाइरों का सान्निध्य मिला। देश-विदेश के अनेक मंचों पर काव्य-पाठ और काव्य-विमर्श के अवसर मिले। इसके कारण इनकी काव्यचेतना और अधिक समृद्ध हुई, किन्तु उनका वकालत का पेशा काफी अधिक समय खाता है। तर्कजाल में मन-मस्तिष्क भन्ना उठता है। मृदुलजी अपने समय के व्यस्ततम अधिवक्ताओं में रह रहे हैं। इसके चलते कविता को बहुत समय तक दूर खड़े प्रतीक्षारत रहना पड़ा होगा। मृदुलजी से एक साक्षात्कार प्रसंग में नंद भारद्वाज ने उचित कहा है कि- ''कविता और कानून का रिश्ता कुछ ऐसा ही रिश्ता है, जिसका बहुत दूर तक साथ प्रायः कम ही देखने को मिलता है।''

लेकिन मृदुलजी ने इस अंसभव रिश्ते को संभव बना दिया। कवि केदारनाथ अग्रवाल की मुझे इस प्रसंग में स्वाभाविक याद हो उठती है। वे भी पेशे से वकील थे। मृदुलजी जितने सफल वकील वे नहीं बन पाये। उन्होंने कवियों की पंक्ति में अपना मुकम्मल स्थान बना लिया, जो स्थान शायद अधिवक्ताओं में मृदुलजी ने बनाया है।

मार्क्सवाद के प्रबल पक्षधर मरुधर मृदुल का लेखन वामपंथी दर्शन से प्रभावित और अनुप्रेरित है पर वे विचारधारा को कविता में थोपते नहीं हैं। इनकी कविताओं में प्रगतिशीलता अनुभूति का हिस्सा बनकर अभिव्यक्त होती है। वे मनुष्य की जय-यात्रा में विश्वास रखते हैं। उनका यह मानना है कि तमाम मुश्किलों, मशक्कतों, तकलीफों और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुठभेड़ों के बावजूद अंतिम विजय न्याय और समता की ही होगी- अपनी सर्वाधिक चर्चित और प्रशंसित कविता- 'मनुष्य की परम्परा' में वे लिखते हैं-

युग थके, थकी नहीं/मनुष्य की परम्परा/शक्ति से कभी नहीं/झुकी नहीं, रुकी नहीं/शांति के विकास की/मनुष्य की परम्परा।

राजस्थान साहित्य अकादमी के पूर्व अध्यक्ष एवं कवि प्रकाश आतुर ने मरुधर मृदुल पर प्रकाशित 'मोनोग्राफ' की भूमिका लिखते हुए कहा है- ''मरुधर विचारधारा से वामपंथी हैं, प्रगतिशील आन्दोलन से जुड़े हैं, लेकिन वे उन प्रगतिशीलों में नहीं हैं, जिन्होंने प्रगतिशीलता को मुखौटे की तरह ओढ़ रखा है।'' मृदुल जी की कविताओं के सामाजिक सरोकार उनकी जीवन के प्रति प्रतिबद्धता के परिचायक हैं।

शोषण-विहीन समाज और बराबरी-भाईचारा का भाव मनुष्यता की आवश्यक शर्त है। मृदुलजी इस शर्त के हक में संघर्ष करते हैं। इनकी कविताएँ निरर्थक शब्दों का विधान नहीं करतीं। इस दृष्टि से उनके एक गीत की कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं-

ऐसा गीत नहीं गाता मैं/जिसका अर्थ नहीं/नहीं गीत का एक शब्द भी/मेरा व्यर्थ नहीं।

मरुधर मृदुल की नजरें आस-पास घटित हो रही चीजों को ही नहीं देखतीं, बल्कि उनके भीतर के मुख्य घटक-सत्य को भी देखती हैं। सत्य को तलाशने की ये कोशिशें उन्हें लोकधर्म से जोड़ती हैं। सत्य को साधने के लिए जिस लगन, निष्ठा और धैर्य की दरकार होती है वह मृदुलजी के पास है। कवि-आलोचक डॉ. केदारनाथ सिंह इनकी कविताओं में धरती के बीजों को ही 'अक्षर बीज' रूप में अंकुरित होते देखते हैं। मृदुल के 'आस-पास' कविता-संग्रह के 'आरम्भिक' में वे ठीक लिखते हैं कि- ''मरुधर मृदुल के पास वह भावदृष्टि है, जो उसे लम्बे कलात्मक अनुभव के भीतर से प्राप्त हुई और जिसे उसने अपनी 'पीढ़ी की धरती में पड़े बीज' की तरह सींचा और सँजोया है। ऐसे ही कवि को यह हक हासिल होता है कि वह अपनी कला को 'अक्षर बीज' का नाम दे सके। कहने की जरूरत नहीं कि 'अक्षर बीज' जैसी स्मृतिगर्भा बिम्ब को जन्म देने की शक्ति उस रचनाकार में ही हो सकती है, जो अपनी सांस्कृतिक ऊर्जा के मूल स्रोतों से कहीं गहरे जुड़ा हो।'' मृदुल जी की कविताएँ इस सृजनात्मक जुड़ाव की साक्षी कविताएँ हैं।

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मृदुलजी अपना सांस्कृतिक कर्म अत्यंत सहज शैली में करते हैं। वे बिम्बवादी कवि नहीं हैं। इनकी कविताओं में बिम्ब अर्थग्रहण में सहायक बनकर आते हैं। गहरी पारदर्शिता लिए हुए। उनका भाषा-रचाव भी रोजमर्रा की बोलीबानी से बना है। बिम्ब, प्रतीक, मिथक, अलंकार आदि का प्रवेश वहाँ अनायास और स्वाभाविक तौर पर होता है। यह सहजता आज विरल होती जा रही है। मरुधर इस सहजता को इसलिए साध पाते हैं, क्योंकि यह कवि सृष्टि के साथ दृष्टि को समुचित महत्व देता है। चीजें अपनी जगह हैं- उन्हें देखने का नजरिया अपनी जगह। चीजों को देखने का कोण महत्वपूर्ण होता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'दृष्टि' और यह 'सोच' ही मिलकर मृदुल को 'चिंतक कवि' का दर्जा प्रदान करते हैं। स्वस्थ चिंतन ही मनुष्य को कर्म की राह दिखलाता है। दुनिया में बदलाव सिर्फ शब्दों से नहीं आता। उसके लिए कर्म-पथ पर आगे बढ़ना होता है। मृदुलजी की कविताएँ शब्द को कर्म से जोड़ती हैं। कर्म से जो बचेगा वह बेहतर दुनिया कैसे रचेगा? सच को सच कहने वाले विरले होते हैं और सच के हक में संघर्ष करने वाले तो और भी कम। अपनी उम्र के अस्सी पार के पड़ाव पर मृदुलजी की ये काव्य-पंक्तियाँ सच प्रमाणित होती हैं-

हर आने वाली पीढ़ी/मेरी अंगुली पकड़कर/खड़ी होती है/और मुझसे बड़ी होती है।

और यह लिखकर मृदुलजी गर्व का अनुभव करते हैं। उनका ऐसा अनुभव बहुत हद तक वाजिब भी है।

'संकेत-विला'
ब्रह्मपुरी-प्रतापमंडल, जोधपुर (राज.) 342 001

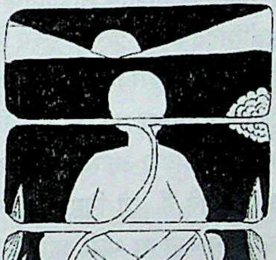

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक मुख्यमंत्री की प्रशंसा में बयान

● गोविन्द माथुर

पिछले दिनों हिन्दी के विख्यात आलोचक एवं प्रगतिशील लेखक संघ के अध्यक्ष डॉ. नामवर सिंह बीकानेर में किसी साहित्यिक कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में आए थे। अपनी बीकानेर यात्रा में डॉ. नामवर सिंह ने एक हिन्दी साप्ताहिक पत्र को साक्षात्कार देते हुए राजस्थान के मुख्यमंत्री अशोक गहलोत की मुक्त कंठ से प्रशंसा की, उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा कि- ''राजस्थान के मुख्यमंत्री अशोक गहलोत जोधपुर में मेरे विद्यार्थी रहे हैं। वे साहित्य, संस्कृति, कला के प्रति समर्पित व्यक्तित्व हैं। राजस्थान के लिए यह सुखद बात है कि उन्हें ऐसा मुख्यमंत्री मिला, जो साहित्य, कला के प्रति अनुराग रखते हुए, इन क्षेत्रों से संवर्धन के लिए सदैव सजग तथा सक्रिय रूप से प्रयासरत है।''

डॉ. नामवर सिंह के वक्तव्य को उक्त साप्ताहिक समाचार पत्र ने तो प्रमुखता से प्रकाशित किया ही, राज्य से प्रकाशित कपितय साप्ताहिक, पाक्षिक पत्रों ने भी महत्व के साथ प्रकाशित किया। यह सर्वविदित है कि प्रत्येक राज्य में ऐसे साप्ताहिक, पाक्षिक एवं दैनिक समाचार पत्रों की बाढ़ है, जो सरकारी विज्ञापनों के बूते पर सीमित प्रतियाँ प्रकाशित कर, रोजी-रोटी कमा रहे हैं। ऐसे समाचार पत्र किसी न किसी राजनेता पर आश्रित होते हैं। अपने आकाओं का गुणगान कर अपना आस्तित्व बनाए रखते हैं। सरकार बदलने के साथ ऐसे कुछ समाचार पत्र भी होते हैं, जो निष्ठा नहीं बदलते, ऐसे समाचार पत्रों के सम्पादकों को मनचाही सरकार बन जाने पर भारी आर्थिक लाभ के साथ राजनैतिक लाभ भी प्राप्त हो जाते हैं। ऐसे ही समाचार पत्रों ने डॉ. नामवर सिंह का वक्तव्य प्रमुखता के साथ इस टिप्पणी सहित प्रकाशित किया कि किसी साहित्यकार द्वारा संभवत: अशोक गहलोत के इस अछूते पक्ष को पहली बार सामने लाया गया है।

डॉ. नामवर सिंह के द्वारा दिए इस वक्तव्य के क्या निहितार्थ हैं। क्या यह उनका एक पूर्व विद्यार्थी के प्रति अनुराग है या उनका मंतव्य कुछ और है? प्रगतिशील लेखक संघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष को एक मुख्यमंत्री की प्रशंसा में कसीदे काढ़ने की क्या आवश्यकता पड़ गई, या वास्तव में अशोक गहलोत साहित्य एवं कला अनुरागी हैं? इन क्षेत्रों के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
संवर्धन के लिए प्रयासरत हैं? राज्य के साहित्यकार, कलाकार इस गुत्थी को सुलझाने में लगे हैं।

मुख्यमंत्री अशोक गहलोत की छवि एक संवेदनशील व्यक्ति की रही है, किंतु साहित्य एवं कला के प्रति उनका अनुराग कितना है, इन क्षेत्रों के संवर्धन के लिए कितने सजग, सक्रिय एवं प्रयासरत हैं? राज्य के साहित्य एवं कला-संस्कृति से जुड़े लोग भली-भाँति जानते हैं। पौने दो वर्ष पूर्व अशोक गहलोत ने राज्य के मुख्यमंत्री के रूप में दूसरी बार गद्दी संभालते ही राज्य की तमाम साहित्य, कला, संगीत-नाटक, संस्कृति एवं भाषा अकादमियों के अध्यक्षों से त्याग-पत्र माँग लिए, क्योंकि ये सारी नियुक्तियाँ पूर्व भाजपा सरकार द्वारा की गई थीं। तब से अब तक सभी अकादमियाँ अध्यक्ष एवं सदस्य विहीन पड़ी हैं।

इन अकादमियों पर प्रशासनिक अधिकारी काबिज हैं। राज्य के साहित्यकारों एवं कलाकारों की सहभागिता अकादमियों में नहीं है। प्रकाशन सहायता, पुरस्कार आदि दो वर्ष से नहीं मिल रहे हैं। अकादमियों से सम्बन्धित निर्णय प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा लिए जा रहे हैं। प्रशासनिक अधिकारी एवं कर्मचारी यह तय कर रहे हैं कि कहाँ, कैसा, किसकी सहभागिता में कार्यक्रम होगा। वे ये भी तय कर रहे हैं कि राज्य में कौन साहित्यकार हैं? कौन कलाकार हैं? राजस्थान साहित्य अकादमी की पत्रिका 'मधुमती' के सम्पादक भी प्रशासनिक अधिकारी/कर्मचारी हैं। वे तय करते हैं कि कौन-सी रचना प्रकाशन योग्य है और कौनसी नहीं है? ऐसे में छुटभैये, चापलूस और यशकामी लोगों की चवन्नी चल रही है। अकादमियों में नियुक्त प्रशासनिक अधिकारी/कर्मचारी यह मानने लगे हैं कि राज्य की साहित्य, कला एवं संस्कृति को उनसे बेहतर कौन समझता है, वे यह भी मानने लगे हैं कि जब अकादमियों का काम पिछले पौने दो वर्ष से सुचारु रूप से चल रहा है और इसका कोई विरोध नहीं है तो आगे भी ऐसे ही चलता रहेगा, ऐसे में अध्यक्षों एवं सदस्यों की नियुक्ति की आवश्यकता ही क्या है? लेकिन क्या इन अधिकारियों का साहित्य/कला विवेक इतना उन्नत है कि वाकई अब अध्यक्ष आदि के मनोनयन की आवश्यकता ही नहीं है? 'मधुमती' के ताजा अंक में विभिन्न कार्यक्रमों की एक सूची भी छापी गयी है, जिससे ध्वनि यही निकलती है कि सब कुछ ठीक चल रहा है। नये अध्यक्ष और सरस्वती सभा की जरूरत ही कहाँ है?

डॉ. नामवर सिंह राज्य की साहित्य, कला, संस्कृति अकादमियों की स्थिति से भली-भाँति परिचित रहे होंगे, फिर उन्हें मुख्यमंत्री की आलोचना करने के बजाय प्रशंसा करने की क्या जरूरत पड़ गई? अच्छा लगता अगर वे अपने विद्यार्थी को अकादमियों की स्थिति सुधारने के लिए प्रेरित करके जाते।

जब एक लेखक संघ का राष्ट्रीय अध्यक्ष मुख्यमंत्री की प्रशंसा कर रहा हो तो उस लेखक संघ की प्रान्तीय इकाई मुख्यमंत्री की आलोचना कैसे कर सकती है। प्रगतिशील

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लेखक संघ एवं जनवादी लेखक संघ की राज्य इकाइयों ने पिछले पौने दो वर्ष में साहित्य एवं कला के संवर्धन के पक्ष में तथा साहित्यकारों के हित में न तो कोई ज्ञापन ही दिया और न ही कोई विज्ञप्ति जारी की है। उन्हें भय है कि विरोध करने पर कहीं अकादमियों से मिलने वाले लाभ से वंचित न रह जाएं। यह भी किसी से छिपा नहीं कि कुछ साहित्यकार एवं कलाकार मुख्यमंत्री से राजनैतिक लाभ की आशा में सम्पर्क बैठाने में लगे हुए हैं। अध्यक्ष के पदों पर राजनैतिक नियुक्तियों की सम्भावना के कारण अनेक वरिष्ठ साहित्यकारों एवं कलाकारों सहित लेखक संघों की राज्य इकाइयाँ टकटकी लगाए राज्य सरकार की ओर इस उम्मीद के साथ देख रही हैं कि पता नहीं किसकी गोद में अध्यक्ष पद गिर जाए और वे उसकी कृपा से महरूम न हो जाएँ। अत: लेखक संघ एवं वरिष्ठ साहित्यकार न तो सरकार से अति शीघ्र अध्यक्षों की नियुक्ति की मांग कर रहे हैं और न ही कोई प्रतिरोध कर रहे हैं। सरकार की प्राथमिकता में जो कहीं साहित्य, कला एवं संस्कृति है ही नहीं। ऐसे में अकादमियों का होना न होना कोई मायने नहीं रखता।

डॉ. नामवर सिंह चाहे किसी भी मंतव्य से अपने विद्यार्थी की प्रशंसा कर गए हों, पर विद्यार्थी ने अभी तक अपने गुरु की प्रशंसा के अनुकूल सिद्ध नहीं किया है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पुस्तक-समीक्षा

असहमतियों के जोखिम से जूझती कविता की लयकारी

● रमेश खत्री

शब्दों की सवारी करते भावों के विलक्षण रूपों का समुच्चय है कविता। मानव जीवन के अन्तरतम के समस्त प्रवाहों का मुँह शब्दों में उलीचकर अनुभव का सारतत्व निथारकर जब हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है कवि, तब जाकर एक अच्छी कविता का जन्म होता है। कविता व्यक्ति से लेकर, आत्मा से परमात्मा और व्यष्टि से लेकर समष्टि तक की यात्रा करते हुए वर्तमान समय की चुनौती और मानव जीवन के खतरों को जब उठाती है तो वह धारदार होती है। ऐसी ही धारदार कविताओं का संग्रह 'कवि ने कहा' सीरीज से विगत दिनों किताबघर, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इसमें ऋतुराज की कुल जमा 72 कविताएँ संग्रहीत हैं, जो पाँच दशकों के कालखंड को हमारे सामने रेज़ा-रेज़ा करती नजर आती हैं। इस संग्रह में संग्रहीत ऋतुराज की कविताओं ने समाज में व्याप्त विषमताओं को न केवल रेखांकित किया है, अपितु वे उनके खिलाफ सीना तानकर खड़ी हो गईं हैं और अपने विद्रोही तेवर से समय की आँच को लगातार चुनौती दे रही हैं और समाज में व्याप्त समस्याओं, विषमताओं, चिन्ताओं, सवालों और अनीतियों के बीच हाशिये पर धकेल दिये गये सामान्य आदमी की ढाल बनने का ख्वाब देखती हैं।

ऋतुराज खामोश रहकर वर्तमान परिस्थिति के पनीले समय को पकड़ते हैं और उसको अपनी कविता में बखूबी इस्तेमाल करते हैं हथियार की तरह। उनके हथियार हैं, हाशिये पर धकेले गये उस आम आदमी की चिंताएँ, विवेक, बुद्धि, सोच और उसकी लड़ने की जिजीविषा एक परिपक्व चित्र उछाल देती है उदाहरणार्थ-

''केवल आँख से क्या होता है?
सबूत के लिए राख भी होगी
और वे उसे जला हुआ धोखा कहेंगे
हड्डियों का चूरा और बच्चों के कोमल माँस के टुकड़े
इस शताब्दी के महाभोज के व्यंजन होंगे।''

एक कवि के रूप में ऋतुराज जिन वस्तुओं, लोगों और संवेदनाओं को पकड़ते हैं, वे व्यक्ति की स्वाधीनता और संवेदना के धरातल पर पसरते बहुराष्ट्रीय निगमों के जाल और साम्राज्यवादी लालसा के फलीभूत उत्पन्न त्रासद समय की विडम्बना है, जो व्यक्ति और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
व्यक्ति-जनित समस्त भावनाओं को बौना कर रहा है। आज की युवा पीढ़ी 'संतोषम् परम सुखम' को भूलकर मदमाते बाजार में भौतिकता के बीच प्रसन्नता और सुख को तलाश रही है और खरीद लेना चाहती है सुख=शांति के समस्त हथियार, जबकि इससे इतर शहर की चकाचौंध से दूर ठेठ जंगलों में निवास करते 'आदिवासी' की पीड़ा घनीभूत होकर इसी धुंध से निकालती है भविष्य की पगडंडी। ऋतुराज उसी पगडंडी पर लगातार चल रहे हैं और अपनी कविता में रेखांकित कर रहे हैं उनकी ताकत।

''चिंता का विषय है कि धरती पर अच्छे आदमी कम होते जा रहे हैं/वो जो कुछ समय पहले दयालु और धैर्यवान थे/वो जो अदृश्य रहकर सहयोग देते थे/सामाजिक कार्यों में/किसी की मृत्यु की खबर सुनते ही/उसके घर के बाहर/उकडू बैठे प्रतीक्षा करते थे अर्थी उठाने की...न कोई जाति पूछता था/न धर्म, न मित्रता, न मतवाद/सिर्फ वृहत् मनुष्यता के पड़ोस में धरती पर रहने का दाम चुकाते थे।''

समीक्ष्य कविता संकलन की अधिकांश कविताओं में हम पाते हैं आम जीवन की वो विद्रूपताएँ जिस ओर हमारा ध्यान समय रहते नहीं जा पाया और वे कविताओं का विषय बन गईं हैं। ऋतुराज की पैनी नजर से गुजरकर सहज सरल शब्दावली नये और मार्मिक रूपकों में साकार हुई तथा संवेदना के नये धरातल को तलाशता वर्तमान समय की आर्त पुकार के खिलाफ एक प्रति संसार रचती है और कविताओं के प्रचलित, स्वीकृत और तयशुदा मुहावरों को तोड़ी चली जाती है। उनकी कविताओं में प्रयुक्त शब्दावली इतनी सरल होती है, किन्तु दिखने में कैसी सीधी-सरल लगती है ऋतुराज की कविताएँ, उनकी जड़ें उतनी ही ज्यादा गहरी और मजबूत होती हैं। एक बार पढ़कर उनमें गुम्फित अर्थों को पकड़ना इतना आसान भी नहीं है। कहने का तात्पर्य है उनकी कविताएँ अपने लक्ष्य और फलक दोनों ही स्तर पर विराट व्यापकता लिये हुए है ठीक बिहारी के दोहों की तरह 'देखन में छोटे लगे घाव करे गंभीर'।

ऋतुराज की कविताएँ जिन बिंबों का चित्रण करती हैं वे बिंब खाँटी हैं और उन लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनके पक्ष में कोई नहीं खड़ा है। शायद वे स्वयं भी नहीं। इस मायने में अधिकांश कविताएँ वर्गांतरित होने के संघर्ष की कविताएँ हैं और इसीलिए क्रियात्मक कम और प्रतिक्रियात्मक ज्यादा है। लुभावनी भाषा के कसीदों में आदिवासी जीवन, प्रकृति, मौसम, धरती, स्त्रियाँ, पर्वत, जीव-जंतु, नदियाँ हथियार के रूप में आते हैं और वर्तमान समय की जड़ता, हठधर्मिता और आलस्य के शांत जल में कंपन पैदा करके चले जाते हैं। हमारे सम्मुख बच जाती हैं सिर्फ कविताएँ-

''गरीब औरत के पेट में सारे संसार के पाप/और पुण्य का रहस्य छिपा है/उसके खुरदरे हाथों की सुंदरता में/फलों से लदे वृक्षों की उदारता है/गरीब लोग अपनी औरतों को कई नामों से पुकारते हैं...सारे गरीब लोग कवि होते हैं...मैं नहीं हूँ गरीब- मैंने काटकर फटी बाँहें अपनी, कमीज का बुशर्ट/बनियान की पट्टी को नीचे से उधेड़ डाला है कच्छे में नाड़ा/रबड़ की चप्पल में अटकाई है पिन/मेरे पास चुभोने के लिए यह पिन है/मैं नहीं हूँ गरीब।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इसी परिप्रेक्ष्य में एक बानगी और देखी जा सकती है-

"कैसे युवाओं को कहें देश के विपन्न लोगों के लिए कुछ करो, जबकि धकेल दिया गया है गाँवों को/आदिम अँधेरे की तरफ/अँधेरे में लगी है आग/वन्य जीवों और आदमियों के उजाड़ डेरों में/मोबाइल लिए घूमता है सूचना तांत्रिक/एक बदहवास अभिनेता शास्त्रों का भाष्यकार होने का दंभ भरता है...हम तुम्हारे सुख की उड़ान में शिकार किए खरगोश हैं/जाओ लेकिन पहले हमें पूरा खा डालो।"

काल के प्रवाह से इतर जो कवि अपनी कविताओं में मानवीय सरोकारों और संवेदनाओं का गुम्फन करते नये मुहावरों की खोज करता है, वही समय को फलांगता हुआ पाठकों की स्मृति में बस जाता है और रचनाएँ कालातीत होकर अनाहूत भविष्य के प्रति विश्वास पैदा करती हैं। ऋतुराज की कविताएँ इसी तरह के अक्स उकेरती है और बगैर किसी लाग-लपेट के सहजता के साथ भावनाओं और मन:स्थितियों को व्यक्त करने में सफल होती हैं। वर्तमान का गिरेबान पकड़कर आधुनिक शहराती सभ्यता में घर कर चुकी अमानुषिकता, अश्लीलता और विसंगतियों के खिलाफ लामबंदी का नारा बुलंद करते हुए एक ऐसे संसार का निर्माण करती है, जहाँ सहजता और सरलता का अकूत साम्राज्य हो। चालाकियों और बेईमानियों से दूर स्निग्ध जल के स्रोत लगातार फूटते हैं और उससे निर्मित होता है एक प्रति संसार जो आदिवासी के बाण की तरह सीधा निशाने पर वार करता है। देखें-

"एक हल्की पीली आभा है/उसके गालों पर झुके/कपाल के नीचे दो धँसी आँखें कहती हैं/वह खुद एक मुरझाया फूल है गुडहल का/जिसे चींटियों ने खा लिया है...फूलवाली फूल की तरह मुझसे कहती है- 'ले चलो मुझे'/जहाँ होऊँगी वहीं खिलखिलाऊँगी/फूल की तरह नष्ट हो जाऊँगी।"

'कवि ने कहा' ऋतुराज की चुनी हुई कविताओं का यह संकलन एक ऐसा गुलदस्ता है तो उर्ध्वमुखी होकर साहित्यिक इतिहास को भेदने की ताकत अपने अन्दर समाहित किये हुए हैं। इन कविताओं को पढ़ना ऐसे अनुभव से गुजरना है, जिसमें पहाड़ों-सा स्थायित्व, झीलों-सी स्निग्धता और नदियों-सा बनैलापन जिसमें आतुरता छिपी हो समन्दर से मिलने की और फिर उससे मिलकर समन्दर-समन्दर हो जाना जहाँ लहरों की पछाट पत्थरों को नये आकार में गढ़ रहीं होती है।

पुस्तक : कवि ने कहा-ऋतुराज की चुनी हुई कविताएँ
प्रकाशक : किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली
मूल्य : 150 रुपए

संपादक नेट मैग्जीन साहित्य दर्शन डॉट कॉम
53/17, प्रतापनगर, जयपुर-302033

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जटिल संरचना और विशिष्ट भावबोध की कहानियाँ

● प्रेम शशांक

भालचन्द्र जोशी की उनकी कहानियों की संरचना के प्रारम्भिक लक्षण कुछ इस तरह के होते हैं जैसे कोई अपने मित्र को यूँ ही घूमने के लिए कहे और जब वे दोनों घूमने निकलें तो मित्र को महसूस हो, यह यूँ ही मटरगश्ती वाला घूमना नहीं है। जैसा कि शुरू में लगा था, बल्कि इसके पीछे एक मकसद छिपा हुआ था, जो यात्रा के दौरान धीरे-धीरे समझ में आने लगता है। दरअसल उनकी कहानियों का शुरुआती पाठ भ्रमित करने लगता है कि कथाकार के पास कुछ कहने को है भी? या नहीं? लेकिन जब तक पाठक का धैर्य घटे, वह कहानी की संरचनागत गिरफ्त में आ चुका होता है और अंत में चमत्कृत हुए बिना नहीं रहता। जो कथ्य और शिल्प में भिन्नता लाने के लिए हर कहानी को एक अलग ट्रीटमेंट देते हैं, उनकी कहानी कला के संदर्भ में चिंतक रैल्फ फाक्स की यह टिप्पणी माकूल नजर आती है। उपन्यासकार व्यक्ति के भाग्य की कहानी उस समय तक नहीं लिख सकता जब तक कि वह सम्पूर्ण वास्तविकता के इस सुस्पष्ट-सुस्थिर दर्शन (मार्क्सवादी) से भी लैस न हो। उसमें यह समझ होनी चाहिए कि उसके पात्रों व्यक्तिगत द्वंद्वों से किस प्रकार उसका अंतिम निष्कर्ष प्रकट होता है, साथ ही उसे यह भी समझना चाहिए कि जीवन की वे विविध परिस्थितियाँ कौन-सी हैं, जिनकी बदौलत उन व्यक्तियों में से प्रत्येक वैसा बना है जैसा कि वह है। संरचना और भावबोध के नजरिये से कहानी विधा के विकास के लिए 'चरसा' की चर्चा बेहद स्वाभाविक और जरूरी कही जा सकती है।

यह साधारण सी प्रेम कहानी दलित विमर्श के इस चिंतन के समक्ष एक रचनात्मक चुनौती पेश करती है कि दलित ही दलित की वेदना को पूरे सच के साथ रच सकता है अर्थात् दलित साहित्य वह है जिसे दलित लेखक लिखना है। वह श्रेष्ठ और कम श्रेष्ठ साहित्य लिख सकता है, लेकिन शर्त यह है कि गैर दलित लेखता कैसा भी दलित साहित्य नहीं लिख सकता। कहानी के नायक और नायिका वर्णभेद का प्रतिनिधित्व करते हुए जिस तरह से एक-दूसरे के नजदीक आते हैं, एक नजर में सब-कुछ खासा नाटकीय लग सकता है, लेकिन तर्क इतने स्वाभाविक और व्यावहारिक हैं कि स्वप्न और यथार्थ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
की सीमा का अतिक्रमण भी कोई अर्थ नहीं रखता। नायक किशन अपने वर्ग (वर्ण) के प्रति इतना असहज है कि वह कोर्ट में एफिडेविट लगाकर उससे येन-केन प्रकारेण मुक्त होना चाहता है, लेकिन इसके बावजूद वह अपने को मन से नहीं बदल पाता है। एक चोर उसके भीतर लगातार सक्रिय रहता है कि कहीं उसका सच पकड़ा न जाये। दैनिक जीवन की छोटी-छोटी घटनाएँ भी कुछ भूलने नहीं देतीं जैसे, यह मकान महज उसे इसलिए मिला था कि उसने अपना नाम किशन शर्मा बताया था। हालांकि वह गाँव से जब चला था तो उसे 'मायनी' (पिताजी) ने कहा था कि मकान हरिजन मोहल्ले में लेना। दु:ख-सुख में अपने लोग काम आते हैं। इसमें जहाँ एक ओर उपनाम का दंश झेलना विवशता है तो उससे मुक्ति के प्रयास का भी एक अलग दंश है। नायक जहाँ एक ओर परिवार का विरोध झेलता है वहीं दूसरी ओर पोल खुलने का भय भी बराबर बना रहता है। कहा जा सकता है कि दोनों ही प्रयास कहीं न कहीं वर्ण व्यवस्था को ही मजबूत कर रहे होते हैं। स्वीकार के रूप में उसके पिता का सोच भी द्रष्टव्य है, जब वह उसे समझाते हैं- ''मुझे तो ज़िंदगी भर का काम करना है। मरे हुए ढोरों की खाल ही खींचना है।'' मैं तो अड़नाम नहीं बदलूँगा। फिर इस तरह तो तू हमको भी बदल देगा। कोरट देगी तेरे को बामण, रजपूत माँ-बाप?

दरअसल किशन और उसके पिता का संघर्ष स्थितियों-परिस्थितियों और परिवेश के संदर्भ में एकदम जुड़ा है। किशन का संघर्ष उसके स्वप्नों से फूटता है जो बचपन से उसका पीछा करते हैं, उन जाती हुई लड़कियों के पीछे तमाशाई बच्चों के झुंड में वह भी शामिल था। अचानक जाने क्या हुआ कि एक लड़की उसकी तरफ देखकर मुस्काई तो वह मंत्रमुग्ध-सा उसके पीछे लगभग हाथ भर की दूरी पर चलने लगा। चलते हुए जैसे उसने सैकड़ों फूलों के भीतर अपनी नाक उतार दी हो। पूरे शरीर को पार करती वह बेकाबू इच्छा उसके हाथ में उतर आई कि वह उसे छू दे और उसने हाथ भर का फासला तेजी से पूरा करते हुए उसके हाथ को छू दिया। बस छूना भर था कि वह चीखी और फिर तो बबाल मच गया। उसके साथ ही की लड़की ने इतनी बेकदरी से दुत्कारा, जैसे कि लोग कुत्तों को दुत्कारते हैं। उसके बाद दूसरे दिन स्कूल में ब्राह्मण लड़कों ने उसको जमकर पीटा था। उस दिन की पिटाई ही थी कि उसने उसके भीतर ऐसा भय कर दिया था कि वह ब्राह्मण लड़की की तो छोड़िये, उसके घर की दीवार की छाँह तक को छूने में डरने लगा था, लेकिन सपने तो सपने होते हैं, ये मरते नहीं, बल्कि बढ़ती उम्र के साथ बढ़ने और कहीं ज्यादा साफ होकर उभरने लगते हैं। सविता के साथ उसकी दोस्ती को उसके बचपन के सपनों को जवान होते देखा जा सकता है। समय की रफ्तार के साथ हम ही जवान नहीं होते, सपने भी होते हैं और एक सच यह भी है कि संघर्ष की इच्छाशक्ति के साथ पूरे भी होते हैं, जैसे

''उसने सोचा, सचमुच ब्राह्मण-त्वचा ही असली त्वचा है। अकल्पनीय और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अलौकिक, परंपरा से रक्षित और वर्जित देह उसकी देह में पिघल रहा है। उसे लगा, वह एक पवित्रता को कुचलते हुए अपनी कई पीढ़ियों को पवित्र कर रहा है। सार रहा है।''

नि:संदेह यह स्वप्न स्रोत कहीं न कहीं वर्ण-व्यवस्था की परंपरा और उसके कठोर नियमों के पालन में छिपा है। कहानीकार ने भारतीय वर्ण व्यवस्था के संदर्भ में वर्गीय भिन्नता का जो उदाहरण इस कहानी के माध्यम से प्रस्तुत किया है, वह कई तरह की बहस को आगे बढ़ाता है। मसलन इसका कथ्य जिस स्वाभाविकता और सांस्कारिक जड़ों से होकर गुजरता है, वह व्यावहारिक कसौटी पर एकदम खरा है। दूसरे यह कहानी सवर्ण कहानीकार द्वारा लिखी गई है तो दलित कहानी के रूप में कहाँ कमजोर रह जाती है। यह कहानी सचमुच उस दलित चिंतन को मजबूत चुनौती देती है कि एक दलित रचनाकार ही दलित के दर्द को समझ सकता है और रच सकता है अथवा दलित कहानीकार ही दलित कहानी लिख सकता है। ऐसी अधकचरी अवधारणाएं निश्चय ही दलित चिंतन और आंदोलन की राह रोकती हैं।

''सपने में होने के बावजूद मैंने महसूस कर लिया कि सपने में भूख नहीं लगती है और न प्यास। यह भी मुमकिन है कि लड़कियों के सपनों में भी भूख और प्यास के लिए जगह नहीं हो। वर्ना मैं तो भूख के सपने में पैदा हुआ और रोटी के सपनों में बड़ा हो गया'' (कहीं भी अंधेरा)

भालचन्द्र जोशी की कहानियों में सपने बड़े समृद्ध हैं। चाहे वे यथार्थवाद की आँच में पके हों अथवा नहीं। ये सपने बहुत जरूरी अभावों से उत्सर्जित होते हैं। जैसे भूख-प्यास से लेकर सामाजिक स्पेस तक, इतिहास और विचार से लेकर मौजूदा लोकतांत्रिक व्यवस्था की खामियाँ भी इन्हीं सपनों में विचरती हैं। सपने हमेशा जिंदा रहेंगे, यह विश्वास ही संघर्ष को शक्ति देता है और इसी प्रेरकता से रचनात्मकता अपना खाद-पानी पाती है। श्री जोशी की अन्य कहानियाँ (यथा-जंगल, कहीं भी अंधेरा, पहाड़ों पर रात, कोई एक धुन) सपनों से बेतरह जुड़ी हुई हैं। दरअसल सपने भूख-प्यास जैसी जरूरतों के लिए ही तैयार नहीं करते, जीवन-विवेक को भी जाग्रत करते हैं। जैसे अब मुझे राजनीति और सपनों का संबंध समझ में आया। हर बार ये राजनेता नए सपने बुनकर हमारे लिए फैला देते हैं। मेरे पिता भी इसी तरह का सपना देखते रहे थे। जमीन के एक छोटे से टुकड़े को खेत की खुशफहमी में जोतते रहे और किसान होने का सपना देखते रहे। एक दिन बैंक के कर्जे की वसूली में ही खेत चला गया। उस कर्जे के लिए जो खेत के लिए मिला था। शायद बैंक ने भी खेत का सपना देखा होगा। श्री जोशी की कहानियों के छोटे-छोटे उदाहरणों से ही कथा-भाषा की ताकत को जाना जा सकता है। वह इन कहानियों में आम आदमी की जरूरतों और मुश्किलात को बेहद संवेदनात्मक ढंग से उठाते हैं। एक-एक वाक्य से कई-कई अर्थ खुलते हैं, बल्कि कोई एक वाक्य पूरे विषय की हकीकत को खोलकर रख देता है। उपर्युक्त उदाहरण में एक ही वाक्य में बैंकों की भूमिका और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
किसान की बदहाली के लिए जिम्मेदार की कलई एकदम सामने होती है। बैंक ही नहीं अन्य सरकारी महकमे जिन पर इलाके के वंचित लोगों के विकास अथवा जीवनयापन में मदद के लिए संचालित विभिन्न योजनाओं का जमीनी स्तर पर किस तरह दुरुपयोग हो रहा है, इसके प्रति भी कहानीकार सजग हैं।

जब भी चुनाव नजदीक आते हैं, लोकतंत्र, नेता, भ्रष्टाचार, आचार संहिता के उलंघन के किस्से तथा आय से अधिक सम्पत्ति के चर्चे अखबार की सुर्खियों में होते हैं। आम आदमी को लगता है कि बस इस चुनाव के बाद बदलाव होकर रहेगा, लेकिन चुनाव के बाद सब कुछ फिर उसी पुराने ढर्रे पर चलने लगता है। समूची सरकारी मशीनरी कुछेक बदलावों के साथ लोकतांत्रिक ढंग से घिसटने लगती है। ये मंत्री और राजनेता उस आम आदमी के लिए कितने दुर्लभ हो जाते हैं, इस दंश को 'राजा गया दिल्ली' कहानी-पाठ के साथ झेला जा सकता है। कहानी का यह किस्सा एक उदाहरण भर है, लेकिन आम आदमी की पीड़ा को एक संवेदनात्मक आवाज मिलती है। रचनात्मकता के लिहाज से यह 'चरसा' की तरह एक सशक्त कहानी है, जो लोकतांत्रिक व्यवस्था के चरमराने की बेआवाज आहट देती है। स्वार्थ और यथार्थ की लुकाछिपी से समृद्ध कथा भाषा में जीवन की धड़कनों से गुजरना एक अद्‌भुत अनुभव है।

चरसा : भालचन्द्र जोशी
प्रकाशक : मेधा बुक्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली
मूल्य : 150/- रु.

किसान सहकारी चीनी मिल्स लि.
सेमी खेड़ा, बरेली-243203 (उ.प्र.)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नूरागी बाग से गुजरते हुए

● क्षितिज

'नूरागी बाग' युवा कवि राजकिशोर राजन का दूसरा काव्य-संग्रह है। किसी काव्य-संग्रह का नाम किसी स्थान विशेष पर होना, ऐसा आभास देता है कि संग्रह की कविताएँ एक स्थान को केन्द्र में रखकर लिखी गई हों। किंतु ऐसा नहीं है, संग्रह किसी एक स्थान को ही लेकर नहीं है, पर हाँ, पूरे संग्रह में स्थानीयता मौजूद है। राजकिशोर राजन की कविताओं में अपना शहर पटना हर कहीं जीवंतता के साथ उपस्थित है।

राजकिशोर राजन समकालीन हिन्दी कविता के किसी मुहावरे से आक्रांत दिखाई नहीं देते। किसी दौड़ या किसी प्रतिस्पर्धा में भी अपने को उलझाते नहीं हैं। अपने परिवेश को शिद्दत से महसूसते, सहजता से अभिव्यक्त करते हैं। वरिष्ठ आलोचक नन्दकिशोर नवल ने सही कहा है कि राजकिशोर राजन की आत्माभिव्यक्ति प्रामाणिक है, वह सीमित या वैविध्यरहित नहीं है। 'नूरागी बाग' ही नहीं संग्रह में ऐसी अनेक कविताएँ हैं, जिनमें पटना शहर की धड़कनें मौजूद हैं। 'नालन्दा से लौटकर', 'फाउन्टेन ऑफ ज्वॉय', 'इमरती गली', 'अगम कुआँ', 'गाँधी सेतु' आदि।

नालन्दा से लौटते हुए कवि एक पुड़िया में कुछ मिट्टी और कंकड़ लेकर लौटता है। नालन्दा जो अब नष्ट हो चुका है, सिर्फ अवशेष बाकी है। जहाँ अब भी देशी-विदेशी पर्यटक आते हैं और गौरवमय अतीत को कंकड़, मिट्टी के रूप में देखते हैं। कवि को नालन्दा की मिट्टी एवं कंकड़ भी गौरव से भर देते हैं, वह नालन्दा की स्मृतियों को अपने अंदर सहेज लेना चाहता है।

राजकिशोर राजन स्थानीयता और निजता के कवि हैं। वे प्रेमिका की अंगुलियों में उलझी अपनी अंगुलियों को छुड़ाकर, धरती पर बरस रहे फाउन्टेन ऑफ ज्वॉय से विरक्त अपनी दुनिया में प्रवेश कर जाते हैं। कवि खाली कॉपी लेकर रफ ज़िंदगी को फेयर करने में लग जाता है।

ऐसा नहीं है कि कवि निजता में ही डूबा रहता है, वह अपने से बाहर निकलकर इमरती वाली गली में भी जाता है। जहाँ जब बबलू हलवाई इमरती की कड़ाही चढ़ाता है तो गली का मुँह मीठा हो जाता है। इस गली से तरह-तरह का सामान लिए खोमचे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
वाले गुजरते हैं, मजनू छाप लड़के गुजरते हैं तथा लड़कियाँ हँसती हुई लोट-पोट होती रहती हैं। इमरती वाली गली शहर के सीने में जीवन बनकर धड़कती है।

अगम कुआँ के लोग दुनिया से बाखबर होते हुए भी अपनी खुमारी में मस्त रहते हैं। यहाँ के लोगों के मुँह में जब मगहिया पान घुलता है तो दर्शन, तर्क, उपदेश सब पानी माँगते हैं।

राजन की निजता अन्य सामाजिक सरोकारों से विमुख नहीं है। ट्रेन के डिब्बों में झाड़ू लगाता बड़ा हो रहा लड़का बम्बइया फिल्म के हीरो-सा बिन्दास प्लेटफार्म पर मस्ती से टहलता है। एक बूढ़ा व्यक्ति बाजार से लौटता हुआ महसूस करता है कि बाजारवाद ने उसे घेर लिया है। पूरा शहर बाजार में बदल गया है और वह अपने को ठगा-सा महसूस करता है।

बारह-तेरह बरस की लड़की प्रकृति की सुन्दरता को अपनी आँखों में समा लेना चाहती है, पर वह मासूम लड़की अपने यथार्थ से आतंकित भी है।

'निर्मला : मेरी बहन', 'लादी', 'बकरी', 'खिलाफ', 'बगल में बैठी औरत' आदि अनेक कविताएँ सामाजिक यथार्थ को उजागर करती हैं।

राजकिशोर राजन की कविताओं में स्थानीयता, निजता और सामाजिकता है। एक आत्मीयता है अपने शहर के प्रति किंतु बिहार का वह हिंसक, राजनैतिक परिदृश्य कहीं नहीं है, जो यथार्थ के अंदर एक और यथार्थ है।

समीक्षित कृति : नूरागी बाग (कविता संग्रह)
कवि : राजकिशोर राजन
प्रकाशक : प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली
मूल्य : 250/-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पत्र-संवाद

मरुधर मृदुल, जोधपुर

'अक्सर' का अंक पढ़कर बहुत अच्छा लगा। कई नयी सूचनाओं व जो गुजरा है उसका पता लगा। श्री विजय वर्मा का आलेख बहुत ही अच्छा है। वैसे अन्य आलेख भी। '1857 का सच' सच्चाइयों को खोलकर रखता है।

रणजीत, बैंगलुरू

तुम्हारा 'अक्सर' पाकर प्रसन्नता हुई। आवरण नयनाभिराम, छपाई साफ-सुथरी और सामग्री अत्यंत प्रासंगिक और पठनीय। सबसे पहले जयपुर के साहित्योत्सव पर तुम्हारा सम्पादकीय और दुर्गाप्रसाद अग्रवाल का लेख पढ़ा। दोनों ही जानकारी और उससे ली जाने वाली सीख से परिपूर्ण। भक्ति आंदोलन के संबंध में क्रांति, आंदोलन और सुधार को डॉ. कुन्तमेघ ने भली-भाँति परिभाषित किया है और आश्विनी पाराशर ने विश्वंभर जी के काव्य का संवेदनशीलता से विवेचन किया है, पर अंक का सर्वाधिक और पठनीय विचारणीय लेख है रमणिका गुप्ता का '1857 का सच'। सचमुच दृष्टि बदलनी चाहिए, पर उनका यह कथन सही नहीं है कि भारत की राष्ट्रीयता का कोई बोध तब तक विकसित नहीं हो पाया था। उस समय तक जितना संभव था, उतना तो वह मुगलकाल में भी 'सरज़मीने हिन्दोस्तान' के रूप में मौजूद था। डॉ. दया दीक्षित का 'सम्पादकीयों के सरोकार' इस घटाटोप अंधेरे में जहाँ-तहाँ जलते हुये दीयों पर नजर डालता है, इसलिए महत्वपूर्ण है।

पर इस अंक की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि है लक्ष्मी शर्मा की कहानी 'ख़ते मुतवाज़ी'। पिछले अनेक वर्षों से हिन्दी कथा लेखन में मुस्लिम पात्रों की अनुपस्थिति अनेक गंभीर अध्येताओं को अखरती रही है। यह अकेली कहानी न केवल उस कमी की भरपूर आपूर्ति करती है, अपने आप में रूमानी-रूहानी प्रेम की एक सुंदर और प्रभावशाली कहानी है। भाषा और शिल्प की दृष्टि से भी बेदाग। यह कहानी रांगेय राघव की 'गदल' की तरह अपने पाठकों को लम्बे समय तक याद रहेगी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बृज श्रीवास्तव, विदिशा

'अक्सर' का अंक बारह प्राप्त हुआ। इसकी प्रतीक्षा रहने लगी है। इतने सुविस्तृत और लरजती भाषा में लिखे संपादकीय अन्यत्र कदाचित ही कहीं होते हों। अन्य लेख और कविताएँ भावनात्मकता के साथ-साथ वैचारिक वातावरण निर्मित करते हैं। कभी अशोक वाजपेयी को तो इस बार हुसैन की गड़बड़ियों को पकड़कर, उनकी विनम्रता से खिंचाई करने का कठिन कार्य हेतु भारद्वाज ही कर सकते हैं। इस अंक में नेहरू की एक तहरीर, रामशरण जोशी का संस्मरण मुक्तिबोध के संदर्भ में, देवताले और हरिराम मीणा की कविताएँ, नीरज के स्वभाव की प्रेमकुमार की कलम से बयानगी सभी सामग्री, पठनीय एवं दुर्लभ लगी। उपकथन में गोविन्द माथुर ने भी सरकार की बदमाशियों की खबर ली है।

वीरेन्द्र सिंह, रावतभाटा

'अक्सर' का बारहवा अंक अपने एक मित्र से पढ़ने को मिला, पूरी तरह रस में डूब हुआ पढ़कर मन को तर गया।

तारीफ क्या करूँ अपने यहाँ एक कहावत है कि घर का आँगन देखने भर से ही उस घर की रसोई का अंदाजा हो जाता है, ठीक उसी समान आपका सम्पादकीय पन्ना पढ़कर ही लगा कि अंदर क्या-क्या पकवान थाली में परोसे हुए मिलेंगे।

सुरजीत जी के 'पत्थर', डॉ. रणजीत जी के 'कितना अच्छा है', नेवल जीद की माँ, कबिरा मन को बहुत भाई, साथ ही पोकरा जी के लड्डू, रामशरण जी संग रमणिका जी का संवाद, 'आदिवासी...' मुस्लिम समाज में स्त्री और पूरे छप्पन भोग की थाली में चाँदी के वर्क में लिपटा पान नीरज जी के कुछ पन्ने, मानो मधुमास में सावन। कहीं भी कुछ भी अधूरा नहीं। इतना कुछ एक पत्रिका में देने के लिए साधुवाद।

सच्चिदानंद विशाख, पटना

'अक्सर' का जून-2010 अंक पढ़ा। स्पेन की कवयित्री विक्टोरिया स्तगवुस्की की कविताएँ बहुत ही अच्छी लगीं। डॉ. रणजीत, प्रीता भार्गव, देवांशु पाल, रेणु दीक्षित की कविताएँ भी अच्छी लगीं।

सम्पादकीय आलेख पढ़ा तथा इसके तर्कों को नोट किया। रमणिका गुप्ता का साक्षात्कार अच्छा लगा। क्षितिज का आलेख पढ़ा। इससे सुरेश चंद्र सर्वहारा, डॉ. वीरबाला भवसार, रमा तिवारी के कविता-संग्रहों की जानकारी मिली। एक आलेख में मित्रसेन मीत के उपन्यास 'रामराज्य' की जानकारी मिली।

दस्तावेज़ शीर्षक के अन्तर्गत जवाहरलाल नेहरू का आलेख पढ़ा। नेहरू जी ने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साहित्य और कला पर अपने विचार दिए थे। यद्यपि इस आलेख में एक आलोचक की भावना नहीं है, एक राजनेता की दृष्टि से ही साहित्य को देखा गया है। फिर भी नेहरू जी ने जो साहित्य से तागख था।

पल्लव, दिल्ली

आप न बूढ़े लगते हैं न श्रद्धेय कोटि के विभागाध्यक्ष। जब मेरे सर हाड़ा साहब हेतु जी कहते हैं तो लगता है हम किसी अपने समवयस्क मित्र की ही चर्चा कर रहे हैं।

'अक्सर' का नया अंक। रामशरण जोशीजी ने अज्ञेय पर बेहद आत्मीयता से लिखा है...कि उन पर श्रद्धा उमड़ती है। तमाम असहमतियों के बावजूद वे मुख्य धारा के बड़े हिंदी सम्पादक थे। अंक में आपने जवाहरलाल नेहरू का व्याख्यान छापकर बढ़िया काम किया है...फिर से इस तरह की बहस चाहिए। लेखक संघ निष्प्राण हो रहे हों, तब यह भाषण नयी ऊर्जा देता है।

गोविन्द जी ने अकादमी पर ठीक बात कही।

नरेश चन्द्रकर, बड़ौदा

आपकी पत्रिका 'अक्सर' प्राप्त हुई। उसमें चन्द्रकान्त देवताले जी की कविता 'प्राक्तन बावड़ी' और हरिराम मीणा की उसी बावड़ी के पास बैठकर लिखी कविता पसंद आई। दोनों कवियों के अपने मिजाज, उनके अपने ढंग चीजों को देखने के, उनके परसेप्शन भी कितने भिन्न हैं, यह वे कविताएं प्रकट कर गईं। देवताले जी की बारीकियां पसंद आईं। विशेषकर कविता में विवरण देते हुए देवताले जी ने गोल-गोल चक्कर खाती नीचे उतरती सीढ़ियों को जो चूड़ियों की तरह देखा, यह बिम्ब दिल को छू गया।

इस तरह ही रामशरण जोशी की अज्ञेय से मुलाकात 'इसे भी पंक्ति दे दो' पढ़कर अच्छा लगा। ये साक्षात्कार पूरे समय को उभार देता है। साक्षात्कार का विषय भी प्रिय लगा, अज्ञेय की कविता और उनके व्यक्तित्व के विशेष पहलू को ये शीर्षक इंगित करता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

किताबों की दुनिया रचेगी इतिहास

बोधि पुस्तक पर्व

साहित्य जन-जन के लिए

बोधि प्रकाशन की अनूठी पहल

बोधि प्रकाशन, एफ-77, सेक्टर-9, रोड नं.-11
करतारपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, बाईस गोदाम, जयपुर-302006, मो. : 98290-18087

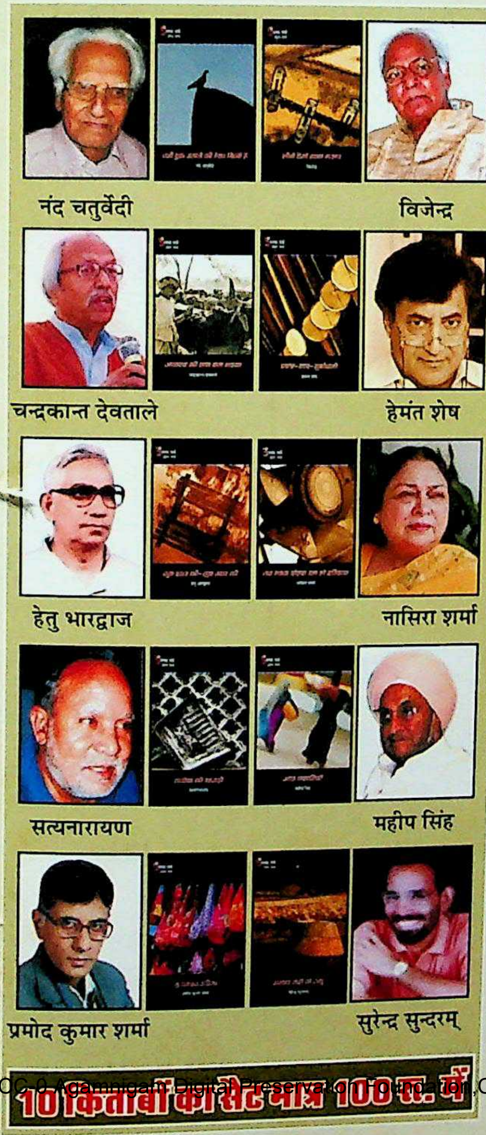

बोधि प्रकाशन का सदैव यह प्रयास रहा है कि पाठकों को श्रेष्ठ साहित्यिक पुस्तकें उचित मूल्य पर उपलब्ध कराई जाएं। मौजूदा हालात में जबकि पुस्तकों की जरूरत पहले से कहीं ज्यादा है, पाठक संख्या सिमटती जा रही है। हमारा मानना है कि अन्य अनेकानेक कारणों के साथ पुस्तकों का स्तरीय न होना और उनका मूल्य अत्यधिक होना भी पाठकों को साहित्य से दूर कर रहा है। अन्य कारणों को तत्काल बदल पाना भले ही हमारे वश में न हो लेकिन स्तर और मूल्य संबंधी पाठकों की शिकायत दूर करने का प्रयास तो हम कर ही सकते हैं। एक ऐसे ही प्रयास की शुरुआत है बोधि पुस्तक-पर्व। इस योजना के तहत देश-प्रदेश के चुनिंदा साहित्यकारों की पुस्तकें पेपरबैक कलेवर में पाठकों को उपलब्ध कराई जाएंगी। दस-दस पुस्तकों के 10 सैट यानी कुल सौ पुस्तकें इस योजना के अन्तर्गत प्रकाशित की जानी हैं। प्रत्येक पुस्तक अनुमानतः 80 से 96 पृष्ठ की होगी और उसका मूल्य होगा मात्र दस रुपये। इस तरह एक सैट की कुल कीमत 100 रुपये मात्र होगी। पहला सैट मई, 2010 के अंतिम सप्ताह से बिक्री के लिए उपलब्ध होगा। प्रकाशन का मानना है कि पुस्तक पर कमीशन देने की परंपरा अच्छी नहीं है, इसलिए इन पुस्तकों की बिक्री पर किसी प्रकार की छूट/कमीशन नहीं दिया जाएगा। पुस्तक की बिक्री छपे मूल्य पर ही की जाएगी। हमें विश्वास है कि आप इस पर्व में हमारे सहभागी होंगे। आपके स्नेह और सहयोग की आकांक्षा है।

सधन्यवाद...

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

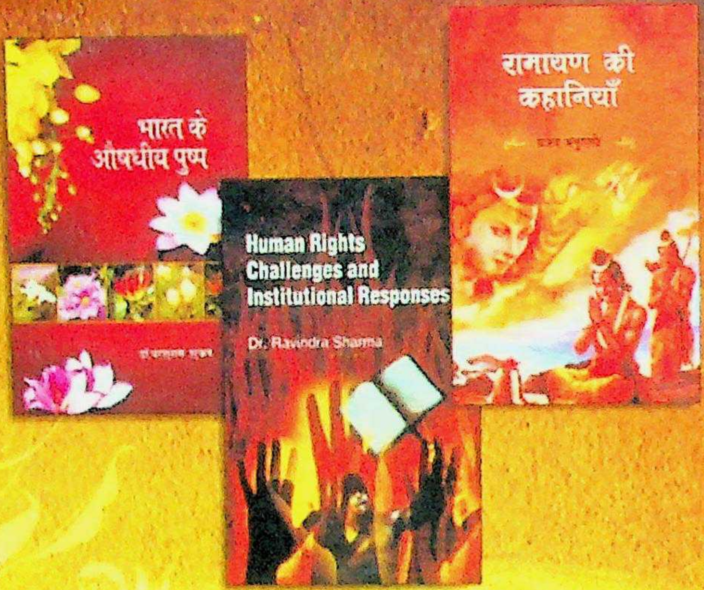

भारत का सम्पूर्ण राजनीतिक इतिहास - प्रारम्भ से 1950 ई. तक

प्रख्यात इतिहासविदों द्वारा लिखित भारत के सम्पूर्ण इतिहास का प्रामाणिक तथा शोधपरक विवेचन

इतिहासवेत्ताओं, शोधार्थियों, विद्यार्थियों तथा इतिहास के गम्भीर पाठकों के लिए पंचशील प्रकाशन, जयपुर का गौरवशाली प्रकाशन।

सम्पादक : डॉ. शिवकुमार गुप्त

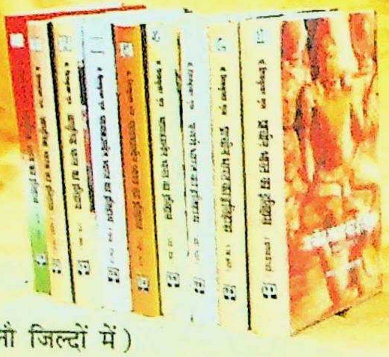

(नौ जिल्दों में)

पंचशील प्रकाशन

फिल्म कॉलोनी, चौड़ा रास्ता, जयपुर- 302 003

फोन : 0141-2315072 फैक्स : 0141-5113854

email : panchsheel_j@sify.com

website : www.panchsheelprakashan.com

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant